अर्वाचीन-इतिहास-माला,

(प्रथम पुष्प)

भारतवर्ष का अर्वाचीन इतिहास,

बृटिश-काल,

पूर्वार्ध, भाग पहला।

श्रीयुक्त गोविन्द सखाराम सरदेसाई, बी० ए०,
कृत मराठी पुस्तक का हिंदी अनुवाद।

अनुवादक,
पण्डित जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल।

हिन्दी-ग्रंथ-प्रसारक मण्डली,
प्रयाग व खंडवा (म० प्र०)

प्रथम वार, १००० प्रति] सं० १९६८, सन् १९११ [मूल्य १)

MODERN HISTORY SERIES, No. 1.

A HISTORY OF MODERN INDIA,

BRITISH PERIOD,

Part I, Vol. 1.

BY

GOVIND SAKHARAM SARDESAI, B.A.,

PRINCESS' SCHOOL, BARODA.

TRANSLATED INTO HINDI

BY

PANDIT JAGGANATH PRASAD SHUKLA.

HINDI GRANTHA PRASARAK MANDALI,

ALLAHABAD AND KHANDWA, (C. P.)

First Edition, 1,000 Copies.] [PRICE, Re. 1.

1911

समर्पण

श्रीमंत श्री बड़ौदा-नरेश,

हिज़ हाइनेस महाराजा सयाजीराव गायकवाड़,

के

करकमलों में

श्रीमान् की विद्या-परायणता, प्रजा-प्रीति तथा हिन्दी-भाषा
के प्रति असीम प्रेम के उपलक्ष में

यह अनुवाद

अत्यंत नम्रता-पूर्वक

सादर समर्पित ।

(१) नामावली उन पुस्तकों की जिनके आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है :

1. William Robertson's Historical Disquisition of Ancient Indian Trade.
2. Danvers' History of the Portuguese in India.
3. Birdwood's Report on the Records of India-Office.
4. Birdwood's First Letter-book of the East India Co.
5. Birdwood and Forster's East India Co.'s Letters, Vols. I—VI.
6. Sir W. W. Hunter's History of British India, Vols. I and II.
7. Beckles Willson's Ledger and Sword.
8. Forster's Embassy of Sir Thomas Roe.
9. Vincent Smith's Early History of India.
10. Logan's Malabar, Vol. I, 1887.
11. Gerson Da Conha's Origin of Bombay.
12. Rulers of India Series,—Albuquerque.
13. Sir Alfred Lyall's British Dominion in India.
14. Malleson's History of the French in India.
15. Malleson's Lord Clive. (Founders of the Indian Empire.)
16. Hill's Records of Bengal, 1757, Vols. I—III.
17. Wilson's Early Annals of Bengal.
18. Stewart's History of Bengal.
19. W. Bolt's Considerations on Indian Affairs.
20. Verelst's English Government in Bengal.
21. Plassy, by A. K. Mittra. (Modern Review, July 1907.)
22. Orme's War of the Coromandel.
23. Anderson's History of the English in Western India.

—:0:—

(२) कारण-परत्व से उपयोग में लाई हुई पुस्तकों की नामावली :

1. Grant Duff's History of the Marathas.
2. Cunningham's Growth of English Industry and Commerce.
3. Thornton's History of the East India Company.
4. Thornton's History of India.
5. Macpherson's History and Management of the East India Company.
6. Kaye's Administration of the East India Co.
7. Wheeler's Early Records of British India.
8. Wheeler's Short History of India.
9. Meadows Taylors' Students' History of India.
10. Early Annals of the British in Bengal.
11. Sir Alfred Lyall's Colonies and Chartered Companies, (*Times of India*, June 9, 1898.)
12. Caraccioli's Life of Clive, Vols. I—IV.
13. Private Diary of Ananda Ranga Pillai, Dupliex' Dubhash Duplix.
14. Vincent's Ancients in the Indian Ocean.
15. Peter Auber's Rise and Progress of British Power in India.
16. Synge's Story of the World, Vols. I to V.
17. Bruce's Annals of British Commerce in Bengal.
18. Mahon's Influence of Sea-power in History.
19. Memoirs of the Revolution in Bengal, (Anonymous).
20. Brigg's Nizam.
21. Mr. Rajwade's Historical Publications in Marathi.
22. Mr. Vasudeo Shastri Khare's Publications in Marathi.

—:o:—

सूचीपत्र ।

प्रथम प्रकरण ।

दूसरा प्रकरण ।

तीसरा प्रकरण।

चौथा प्रकरण।

पाँचवां प्रकरण ।

पोर्तगीज़-शासन, (सन् १५१०–१६१२), २२७—२५६

छठवां प्रकरण ।

पोर्तगीज़ राज्य की [illegible], २५७—३१८

निवेदन

देश की उन्नति के लिये देश के इतिहास का ज्ञान लाभदायक ही नहीं, बल्कि आवश्यक है। इस देश का प्राचीन तो क्या अर्वाचीन इतिहास तक किस प्रकार घोर अंधकार में पड़ा हुआ है—यह बताने की आवश्यकता नहीं। अन्य देशी भाषाओं में तो इस विषय की कुछ पुस्तकें देखने में भी आती हैं, परन्तु हिन्दी भाषा में इस विषय की एक भी उत्तम पुस्तक नहीं है। यदि 'स्वदेश का इतिहास तैयार करना एक सार्वजनिक कार्य है' तो स्वदेश का इतिहास सार्वजनिक भाषा में तैयार करना आवश्यक सार्वजनिक कार्य है। इस ऊँचे अभिप्राय को सामने रख कर ही मण्डली ने इस पुस्तक को प्रकाशित किया है। यदि इस पुस्तक के पठन से पाठकों के अपने स्वदेश के इतिहास के ज्ञान में कुछ भी वृद्धि होगी तो मण्डली अपना परिश्रम सफल समझेगी।

इधर कुछ दिनों से हिन्दी भाषा के पाठकों का ध्यान इतिहासिक पुस्तकों की ओर अधिक झुका हुआ दिखलाई पड़ता है। इसी झुकाव के सहारे की आशा

से मण्डली ने इस पुस्तक को प्रकाशित किया है। मण्डली आशा करती है कि जो लोग हिन्दी भाषा में हिन्दुस्थान का पूरा २ इतिहास प्रस्तुत करने के प्रयास में लगे हुए हैं उन्हें इस पुस्तक से सहायता अवश्य मिलेगी।

क्याही अच्छा होता यदि कोई विद्वान् हिन्दी-रसिक स्वयं खोज करके इस प्रकार का मूल ग्रंथ हिन्दी-भाषा में लिखकर मण्डली को प्रकाशित करने के लिये देता। ऐसा न होने ही से मण्डली को एक मराठी ग्रंथ का यह अनुवाद प्रकाशित करना पड़ा। मूल ग्रंथ के लेखक, बड़ौदा-राजपुत्र-विद्यालय के शिक्षक, श्रीयुक्त गोविंद सखाराम सरदेसाई, बी० ए०, मराठी भाषा के एक प्रसिद्ध लेखक तथा इतिहास-वेत्ता हैं। मूल पुस्तक आपने 'भारतवर्ष का अर्वाचीन इतिहास', इस नाम से तीन भागों में लिखी है। पहले भाग में मुसलमान-शासन, दूसरे में मराठा-शासन और तीसरे में ब्रिटिश-शासन का इतिहास दिया गया है। पुस्तक के तैयार होने में कोई पन्द्रह सोलह वर्ष का समय व्यतीत हो चुका है। अभी कुछ भाग प्रकाशित करना रह भी गया है। इसी पर से पुस्तक की उत्तमता का

अनुमान किया जा सकता है। मूल ग्रंथकार ने बृटिश-काल के इतिहास को पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध इस प्रकार दो भागों में विभाजित किया है। उनमें से पूर्वार्ध के अनुमान चौथे हिस्से का यह पुस्तक अनुवाद है। इसलिये इसका नाम 'पूर्वार्ध, भाग पहला' रक्खा गया है। चार भागों में पूर्वार्ध समाप्त हो सकेगा। इस पहले भाग में पोर्तगीज़ों के भारत में शासन का वर्णन दिया गया है। बाकी तीन भागों में डच, फँरासीसी तथा इस्ट इंडिया कंपनी का इतिहास दिया जायगा। तब पूर्वार्ध समाप्त होगा। बाद में सन् १७७२ के बाद से वर्तमान समय तक का इतिहास उत्तरार्ध में रहेगा। श्रीयुक्त सरदेसाई की सम्मति में बृटिश-काल के आरम्भ का इतिहास विशेष बोधप्रद है। अतएव हमने भी क्रम-भंग कर पहले उसे ही प्रकाशित करना उचित समझा। यदि हिन्दी के हितैषियों की सहायता मिली तो बृटिश-काल के पूर्वार्ध के बाकी तीन भागों का, तथा उत्तरार्ध का व मुसलमान-काल और मराठा-काल का अनुवाद भी प्रकाशित करने की मण्डली की इच्छा है। यदि मण्डली की यह इच्छा पूर्ण हुई तो उससे हिन्दी-साहित्य की एक कमी कहां तक पूर्ण होगी इसका अनुमान पाठक ही करलें॥

के लिये जितनी जानकारी की आवश्यकता है केवल उतनीही इसमें दी जावे, परन्तु प्रत्यक्ष काम शुरू करने पर वह बढ़ताही गया। मराठा रियासत का इतिहास एक भाग में सम्पूर्ण न हो सका। नित नई बातें मालूम होती रहने के कारण तथा अनेक वाद-ग्रस्त विषयों की चर्चा होकर उनका निश्चय न होने के कारण मराठा इतिहास के उत्तरार्ध भाग का लिखना मौकूफ़ करके ब्रिटिश रियासत का इतिहास हाथ में लेना पड़ा। इसके अलावा मराठा-काल का इतिहास सब कोई थोड़ा बहुत जानते हैं, परन्तु ब्रिटिश काल का जो यह पूर्वार्ध भाग प्रकाशित किया जाता है इसमें की अनेक बातें पाठकों को मालूम नहीं हैं। यूरोपियन लोग पहले पहल हिन्दुस्थान में क्यों व किस प्रकार आये, यह देश अपने कब्ज़े में करने की योग्यता उन्हें किस प्रकार प्राप्त हुई, यानी राज्यों की उथलपथल किन सिद्धान्तों पर अकसर होती रहती है—इन महत्व के प्रश्नों का विचार इस पुस्तक में किया गया है, और इसीलिये इस समय में ऐसी पुस्तकों की बहुत बड़ी आवश्यकता है॥

इस पुस्तक के विषय—मेरे विचार में ब्रिटिश काल के आरम्भ का यह इतिहास विशेष बोधप्रद है। व्यापार

करने के इरादे से यूरोपियन लोगों ने हिन्दुस्थान में आना शुरू किया उस समय से लेकर सन् १७७३ ई० में ब्रिटिश पार्लमेंट ने रेग्युलेटिंग एक्ट पास करके गवर्नर-जनरल नियुक्त करना आरम्भ किया उस समय तक का सविस्तर हाल इस पुस्तक में आ गया है। यानी, यह पुस्तक जिन पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है उन पुस्तकों में से ख़ास २ सिद्धान्तों तथा विवेचनों को चुनकर, उनका संग्रह सरल व सुसंबद्ध रूप से इस पुस्तक में किया गया है। अर्थात्—यद्यपि विषय-क्रम सर्वथा मेरा निज का है, तथापि उनकी जो हक़ीक़त दी गई है और उनपर जो चर्चा व टीका की गई है उसमें मेरा निजी भाग बहुत ही कम है। अँगरेज़ी की प्रत्येक पुस्तक भिन्न २ उद्देश का अनुकरण करके लिखी गई है। उनमें से कुछ पुस्तकों में घटनाओं का वर्णन मात्र दिया गया है, और कुछ पुस्तकों में केवल टीका ही दी गई है। इसलिये दोनों प्रकार की पुस्तकों में से उपयुक्त भाग लेकर जीते हुए देश के साथ सहृदयत्व पूर्वक स्वतन्त्र रचना के द्वारा इस पुस्तक में उसका अवतरण किया गया है। पुस्तक में दी हुई हर-एक बात के सबूत में मूल अँगरेज़ी ग्रंथ का आधार देने से पुस्तक के पढ़ने में रस-भंग होता है, इसलिये

सब आधारभूत ग्रंथों की एक सूची अलग दे दी गई है ॥

तथापि अनेक ग्रंथों में से नाना प्रकार की बातें इकट्ठी करके उन्हें एक कहानी के रूप में सुसंबद्ध रीति से लिखना यह भी बड़े परिश्रम व जोखिम का काम है। अपने इस श्रेष्ठ भारतवर्ष के स्वामित्व का पश्चिम के लोगों के हाथों में जाना संसार के इतिहास में एक बहुत बड़े महत्व की घटना है। उसे अच्छी तरह समझ कर औरों को उसे समझाने के लिये पश्चिम के लोगों की तरक्की को ध्यान में रखना तथा एशिया व यूरोप के प्राचीन सम्बन्ध का शोध करना आवश्यक है। मनुष्य की धन-तृष्णा यही एक राज्यों की उथलपथल का मूल कारण है, और धनोत्पादन का राष्ट्रीय साधन व्यापार है। इस व्यापार ही के कारण इस देश को 'सुवर्ण भूमि' यह नाम प्राप्त हुआ था। यह व्यापार पश्चिम के लोगों के हाथ में कैसे गया, और उसके द्वारा यहां अपना राज्य किस प्रकार उन्होंने स्थापित किया, इस बात का पूर्ण विवेचन इस पुस्तक में किया गया है।

विचार-स्वतन्त्रता के योग से यूरोप में नवीन जागृति किस प्रकार हुई इस बात का विवेचन प्रकरण १, २, ४, ८ इत्यादि में किया गया है। पोर्तगीज़, फ्रेंच व

अँङ्गरेज़ इत्यादिकों की गुण-दोष-चर्चा यथा स्थान दी गई है, (उ० प्रकरण ६, १८, १९ ई०), उस पर से मनुष्य-स्वभाव की परीक्षा करने में सहायता मिलेगी, क्योंकि इस प्रकार की परीक्षा करना यह इतिहास का एक प्रधान अङ्ग है। धार्मिक, सामाजिक, व नैतिक बातों में राष्ट्र पर निरर्थक बंधन रखने से कितना नुक़सान होता है यह भी अनेक स्थानों पर दिखलाया गया है, (उ० प्रकरण १९, सं० ६)। सांपत्तिक प्रश्नों से तो समग्र पुस्तक ही भरी हुई है। व्यापार का महत्व, पश्चिम के लोगों की खटपट, अङ्गरेज़ों का उद्योग तथा उनकी किफ़ायत, साहस व दिक्क़तें, इसी प्रकार राज्य-स्थापन के विषय में उनका उद्योग व इङ्गलैण्ड के झगड़े (प्रकरण १२, १३), और इसी तरह उनका निजी व्यापार व राज्यकारबार की गड़बड़ (प्रकरण २२, २३, २४) ये सब बातें सांपत्तिक स्थिति समझने के लिये उपयोग में आवेंगीं। इसी प्रकार राष्ट्रीय अभ्युदय के प्रधान अङ्गों पर भी प्रसंगानुसार बहुत कुछ विचार इस पुस्तक में किया गया है। उसपर से यह जान पड़ेगा कि अपना भावी उदय यदि होने वाला है तो पहले सांपत्तिक व नैतिक कारणों ही से, अर्थात्, व्यापार-युद्ध से ही, वह होना चाहिये॥

विषयों का क्रम--पुस्तक के सूचीपत्र में प्रकरणों के जो नाम दिये गये हैं उनपर से यह समझ में आ सकेगा कि विषयों का क्रम किस प्रकार किया गया है। प्रत्येक प्रकरण में वे सब बातें तो दी ही गई हैं जो उसके विषय से संबन्ध रखती हैं, किन्तु उनके अलावा और भी कुछ निराले विषय का प्रतिपादन किया गया है। प्रत्येक प्रकरण में जो क्रम से उप-प्रकरण दिये गये हैं उनमें से किसी भी उप-प्रकरण को निकाल कर यदि योंही पढ़ा जाय तो जान पड़ेगा कि उस उप-प्रकरण में जिस विषय का वर्णन दिया गया है उसके सम्बन्ध की सारी हक़ीक़त उसमें दी गई है। जहां तक हो सका है इस बात का प्रयत्न किया गया है कि जी को उकताने वाले वर्णन न आने पावें, और किसी भी घटना का वर्णन व उसपर टीकात्मक चर्चा इन दोनों का उचित मेल करके पुस्तक को भरसक मनोरंजक बनाने का प्रयत्न किया गया है। आलबुकर्क, चाइल्ड, डुप्ले, क्लाइव, सिराजुद्दौला इत्यादि पुरुषों के चमत्कारिक जीवन-वृतान्त व उनके स्वभावों की नाना प्रकार की छायायें इस पुस्तक में पाठकों के देखने में आवेंगीं। इसी तरह अंबोयना की क़त्ल, सर टॉमस रो की वक़ालत, डुप्ले की हिकमतें, कलकत्ते की काल कोठरी, प्लासी की लड़ाई,

क्लाइव का उद्योग व पार्लमेंट में खटपट इत्यादि अनेक प्रकरण पढ़ने में उपन्यास के समान मनोरंजक जान पड़ेंगे। कई विषयों के सम्बन्ध में आज कल जो मामूली तौर पर ग़लत ख़यालात फैल रहे हैं उन्हें दूर करने के इरादे से हर एक विषय के बारे में जितनी जानकारी अबतक इकट्ठी व प्रकट हुई है वह सब इस पुस्तक में दे दी गई है। इसी प्रकार पाठकों को चाहे उस विषय का संबन्ध फ़ौरन निकालने में सुगमता हो इस उद्देश से पुस्तक के अंत में पुरुषों की, स्थलों की, लोगों की व विषयों की—इस प्रकार की चार सूचियां भरपूर दे दी गई हैं॥

पुस्तक के दोष–मिहनत करने पर भी पुस्तक में अनेक दोष रह गये हैं यह मैं स्वीकार करता हूं। एक सच्चे इतिहासकार की योग्यता मुझ में न होने के कारण बहुविध जानकारी व भिन्न २ ग्रंथकारों की की हुई चर्चा को इकट्ठी पाठकों के भेंट करने के सिवाय और अधिक मैंने कुछ नहीं किया है। अधिक विद्वान व अधिक कुशल लेखक इसकी अपेक्षा उत्तम पुस्तक पाठकों को भेंट कर सकेगा–इसमें संदेह नहीं। इस बारे में मेरी प्रथम दो पुस्तकों पर से कईएकों ने अपनी

ग़लत समझ करली है, ऐसा जान पड़ता है। पहले ही से, मैं एक 'इतिहासकार' हूं, इस प्रकार की कल्पना करके, बाद में, इतिहासकार के गुण मेरी पुस्तक में नहीं हैं, इसलिये, वे मुझे दोष देते हैं। यह केवल वस्तु-विपर्यास है। 'मुसलमानी रियासत' में मैंने साफ़ तौर से लिख दिया है कि इतिहासकार की योग्यता मुझ में नहीं है। मैंने यह उद्योग केवल अपने काल-क्रमण के लिये किया है। मराठी भाषा में इस देश के इतिहास की एक भी पुस्तक नहीं है। जब तक कोई योग्य पुरुष उस तरह की योग्य पुस्तक तैयार न करे तब तक मेरे इस प्रयत्न का थोड़ा बहुत उपयोग सब को व ख़ासकर अध्यापकों को होगा केवल इसी उद्देश से मैं यह काम कर रहा हूं। मेरे लिये यह काफ़ी है कि मिहनत करने में मैंने किसी तरह की कमी नहीं की है। तथापि इस पुस्तक में जिस किसी को जो कोई दोष दिखलाई पड़ें वे यदि ख़ास पत्र द्वारा या समाचारपत्र द्वारा मुझे सूचित करें तो मैं उनका उपकार मानूंगा। स्वदेश का इतिहास तैयार करना एक सार्वजनिक कर्तव्य है। इस बात को ध्यान में रखकर, दोष दिखलाने के कार्य में पाठक संकोच अथवा आलस्य न करें यही मेरी सविनय प्रार्थना है॥

धन्यवाद—जिन पुस्तकों के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है उनकी नामावली पुस्तक में दे दी गई है। उन पुस्तकों के लेखकों का मैं सर्वथा आभारी हूं। इसी तरह अनेक विद्वानों ने समय २ पर अमूल्य सूचनायें करके व अन्य प्रकार से मुझे सहायता दी है—यह उनका मुझ पर एक बड़ा भारी उपकार है। इस उपकार के पलटे में उन्हें धन्यवाद देता हूं॥

जिस देश-हितैषी नरेश की सेवा में मैं आयुष्य व्यतीत कर रहा हूं उसी के कृपा-प्रसाद का यह पुस्तक फल है। तथापि पुस्तक में जो कुछ विवेचन किया गया है उसके साथ उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। उसके लिये मैं ही जवाबदार हूं॥

अब मराठा व ब्रिटिश रियासतों के उत्तरार्थ भाग प्रसिद्ध करने हैं। वे भी शीघ्र सम्पूर्ण करने की जगदीश मुझे शक्ति प्रदान करे यही केवल प्रार्थना है॥

राजपुत्र विद्यालय,
बड़ौदा,
नवम्बर, सन् १९०८ } गोविंद सखाराम सरदेसाई।

भारतवर्ष का अर्वाचीन इतिहास।

बृटिश काल

पूर्वार्ध भाग

प्रथम प्रकरण

पहले समय की व्यापारिक उथलापथल

पहले ज़माने में धनवान होने की कुञ्जी।

ईश्वर की इच्छा से यूरोप और एशिया खण्डों का सम्बन्ध इधर कई सदियों से क्रमशः अधिक अधिक

जुड़ता जा रहा है। इसलिये राजनीति-विशारदों का इस ओर ध्यान आकर्षित होरहा है कि, आगे चलकर इस सम्बन्ध का अन्त कहां पर होगा। ऐसे मौक़े पर इस बात का समझना ज़रूरी है कि इस प्रश्न का पूर्व-स्वरूप अर्थात् एशिया और यूरोप का पूर्व सम्बन्ध कैसा था। हिन्दुस्थान में अङ्गरेज़ी राज्य स्थापित होने का इतिहास भी इसी विषय के भीतर आजाता है।

यूरोप और एशिया खण्डों में बहुत पुराने ज़माने से व्यवहार जारी था। एशिया खण्ड पुराने समय में सब तरह की सभ्यता का आदि-स्थान था। विद्या, कला, व्यापार, तत्वज्ञान आदि प्रत्येक प्रकार का ज्ञान एशिया खण्ड से ही यूरोप को प्राप्त होता था। तिस पर भी यदि व्यापार के विषय में देखा जाय तो एशिया के बिना यूरोप की आवश्यकताएं क़दम क़दम पर रुकी रहती थीं। क्योंकि मनुष्य को अपने जीवन-निर्वाह के लिये जिन वस्तुओं की आवश्यकता हुआ करती है वे प्रायः एशिया से ही यूरोप को जाती थीं। हिन्दुस्थान, चीन आदि एशिया खण्ड के पुराने राज्य खूब भरे पूरे (समृद्धशाली) थे, इसलिये अन्य देशों को अपने निर्वाह की चीज़ें यहीं से प्राप्त हुआ करती थीं।

पश्चिमी देशों के अर्वाचीन इतिहास का यदि सूक्ष्म-दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो, यह बात दिखाई पड़ेगी कि स्पेनिश, पोर्तगीज़, डच, फ्रेंच, ब्रिटिश, जर्मन आदि अर्वाचीन देश व्यापार के द्वारा ही धनवान हुए हैं, और धनवान होने से ही उनकी राज्य-सत्ता की वृद्धि हुई। कहने का मतलब यह कि संसार के व्यापार में उथल पथल करने की शक्ति जिस राष्ट्र में जितनी अधिक होगी वह राष्ट्र उतनाही अधिक धनवान होगा और जो राष्ट्र जितना अधिक धनवान होगा उसकी राज्य-सत्ता भी उतनी ही अधिक ज़बरदस्त होगी। ऐसी दशा जिस प्रकार इस समय के इतिहास में दिखाई पड़ती है वैसीही,—किन्तु इससे भी अधिक, पुराने इतिहास में भी दिखाई पड़ती है। इस नियम का साफ़ और उत्तम अनुभव यदि हमें नहीं होता हो तो, उसका यही कारण है कि, पुराने इतिहास का ज्ञान हमें विशेष रूप से नहीं है। देश के लोगों का उपयोगी माल देश में ही उत्पन्न होना चाहिये, और उससे तरह तरह की सर्वसाधारण की आवश्यकता की वस्तुएं बनाने की कला देशवासियों को आनी चाहिये। यदि ये दोनों बातें हों तो किसी देश को अपने निर्वाह के लिये दूसरे देश पर अवलम्बित नहीं रहना पड़े। यही

नीति प्राचीन काल के देशों के लिये भी लागू थी। हिन्दुस्थान, चीन आदि देश प्राचीन समय में धनवान थे इसका भी यही कारण था। हिन्दुस्थान एक ऐसा विचित्र देश है जहाँ सभी देशों की हवा पाई जाती है। साथही ज़मीन ऐसी उपजाऊ है कि पृथ्वी के किसी भी देश के उत्पन्न होने वाले पदार्थ प्रायः यहाँ उत्पन्न हो सकते हैं। इससे यहाँ के लोगोँ को अपने निर्वाह के लिये दूसरोँ का मुंह कभी नहीं देखना पड़ता था। हमारे प्राचीन ग्रन्थों से अनेक विद्वानों ने सिद्ध किया है कि उत्तम कारीगरी और कलाकौशल का बहुत प्राचीन समय में उदय भी इसी देश में हुआ था। अर्थात् जब पृथ्वी के अन्य देश गिरी हुई दशा में थे तब यह देश बहुत उन्नत था। यहां की पैदावार से हमारा तो निर्वाह होता ही था; किन्तु पृथ्वी के अन्य कई देशों का निर्वाह भी यहां के माल पर अवलम्बित था। प्राचीन समय में पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण चारों दिशाओं की ओर बहुत दूर तक इस देश का बाहरी देशोँ से व्यवहार जारी था। प्राचीन समय में हिन्दुस्थान के अग्नेय-कोण के द्वीप-समूह तथा पूर्व के चीन, जापान आदि देशों से हिन्दुस्थान का व्यापार जारी था। बौद्धधर्म का प्रचार भी इसी कारण से अधिक हुआ

था। तथापि इस समय हम अति दूर पश्चिम के एक बलवान राष्ट्र के अधिकार में हैं और यह बात बतलाने का इस पुस्तक का मुख्य प्रयोजन है कि यह प्रचण्ड राज्यक्रान्ति किस प्रकार घटित हुई; इसलिये सब से पहले यह बात समझनी चाहिये कि हिन्दुस्थान से पश्चिम के देश और विशेष कर यूरोपीय देशों की स्थिति व्यापार के मामलों में पहले कैसी थी और इस देश से उनका सम्बन्धन किस किस प्रकार दृढ़ होता गया।

बहुत प्राचीन समय में हिन्दुस्थान और यूरोपीय देशों का परस्पर व्यापार बहुत करके खुश्की में और कुछ अंशों में किनारे किनारे प्रचलित था। यद्यपि उस समय के लोगों को नौका-प्रवास मालूम था तथापि उस समय के जहाज़ आजकल के समान किनारा छोड़कर बीच समुद्र में जाने की हिम्मत नहीं कर सकते थे। हिन्दुस्थान से बाहर होकर ख़ास यूरोप में जा पहुंचने के लिये इस व्यापार के रास्ते नियुक्त थे। उस समय उन रास्तों की बड़ी क़दर थी। उन रास्तों से ऊंट और अन्य जानवरों के बड़े बड़े क़ाफ़िले यहां से व्यापार का माल दूर देशों को ले जाते थे। इस व्यापार के आवा-गमन (दरआमद बरआमद) को अधिकार में रखने के

लिये उस समय के राष्ट्रों में बड़ी झटापटी हुआ करती थी। क्योंकि आजकल के समान ही उनकी भी विशेष आमदनी व्यापार पर अवलम्बित थी। यूरोप के समान बड़े भारी देश के लोगों की रोज़ रोज़ की ज़रूरतों और ऐशआराम का माल पूरा करना कोई छोटे मोटे फ़ायदे की बात न थी। इसी फ़ायदे के लिये ग्रीक, रोमन, मिसर, फिनिशियन, असीरियन, हिबरू आदि अनेक पराक्रमी राष्ट्र झगड़ा किया करते थे। इन झगड़ों का उल्लेख बाइबिल आदि पुस्तकों में भी पाया जाता है। व्यापार के मार्गों पर जिन राज्यों का अधिकार रहता था वे राष्ट्र उन्नत रहते थे। अर्वाचीन समय में भी चंगेज़खां, तैमूरलंग आदि पराक्रमी पुरुषों का ध्यान विशेषकर इस फ़ायदे ही की ओर था। सारांश, आज कल के समान प्राचीन समय में भी देश का धनी होना व्यापार की आमदनी पर अवलम्बित था।

२—प्राचीन व्यापार के मार्ग।

इंग्लैंड देश पृथ्वी के थल प्रदेश के बीचों बीच और सम-शीतोष्ण कटिबंध में है। उस देश को इन दोनों भूगोल सम्बन्धी कारणों का फ़ायदा बहुत होता है। वहां से दक्षिण

की ओर तथा पूर्व की ओर किनारे किनारे आने लगें तो ठेठ चीनसमुद्र तक आठ दश हज़ार मील का समुद्र किनारा बराबर मिलता है। इस किनारे पर व्यापार के बड़े बडे बन्दर हैं और इन सब बन्दरों से भिन्न भिन्न जलवायु में उत्पन्न होनेवाली अनेक उपयोगी चीज़ों का लाना लेजाना हुआ करता है। हिन्दुस्थान और पूर्व के द्वीपों की अपार सम्पत्ति की कथा बहुत प्राचीन समय से पश्चिम के देश वाले सुना करते थे। किन्तु पूर्व देशवालों को पश्चिम के राष्ट्रों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था। उस समय माल का लाना लेजाना भिन्न भिन्न देशों के हाथ में था। ख़ास ख़ास जगहों की ख़ास ख़ास चीज़ें नियमित स्थान में वे पहुंचाया करते थे, और किसी स्थान की चीज़ों के द्वारा ही वे उस स्थान के लोगों को जानते थे। उस समय आजकल के समान स्वेज़ की नहर नहीं थी, बल्कि वहां ज़मीन थी। जो सकरी ज़मीन दो देशों को मिलाती है उस संयोग-भूमि को स्थल डमरूमध्य कहते हैं। यह स्वेज़ का स्थल डमरू-मध्य भूमध्य समुद्र से पूर्व समुद्र को अलग करता था। इसलिये पूर्व समुद्र से भूमध्य समुद्र को माल पहुंचाने के लिये दो रास्ते थे। एक ईरान की खाड़ी से ऊपर जाकर ज़मीन द्वारा यूफ्रेटिस नदी के किनारे होकर एशिया

माइनर अर्थात एशियाई रूम से भूमध्य समुद्र में पहुंचने का, और दूसरा लाल समुद्र के उत्तर किनारे पर उतर कर खुश्की के रास्ते से मिसर देश होकर भूमध्य समुद्र में उतरने का। इन दोनों के सिवाय एकदम उत्तर की ओर से भी एक तीसरा मार्ग था। यह मार्ग हिन्दुस्थान के उत्तर की ओर मध्य एशिया से ऑक्सस अर्थात आमू नदी के किनारे से कास्पियन समुद्र होकर काले समुद्र में उतरने का था। कास्पियन समुद्र के उत्तर और दक्षिण की ओर को इस मार्ग की दो शाखायें थीं, वे दोनों शाखायें काले समुद्र में आकर मिलती थीं।

इनमें से एशियामाइनर होकर जाने वाला मार्ग बहुत प्राचीन था। हिन्दुस्थान के जहाज़ किनारे किनारे ईरान की खाड़ी के उत्तर सिरे से जाकर वहां के बन्दरों में यहां का माल बेचा करते थे। यूफ्रेटिस नदी के मुहाने के आसपास का प्रदेश पुराने ज़माने में खाल्डिया कहलाता था। खाल्डिया बन्दर में उस माल को लाद कर ऊंटों के क़ाफ़िले उत्तर की ओर जाते थे और फिर रेगिस्तान से पश्चिम की ओर झुक कर पालमीरा अर्थात् ताडमूर में आते थे। वहां से आगे नैऋत्य की ओर डमास्कस में उतरते थे। डमास्कस से उस रास्ते की दो शाखाएं फूटती थीं। एक सीधी पश्चिम की ओर समुद्र किनारे को जाती थी। उस पर टायर, सीडोन, एकर, आस्कलन,

आदि प्राचीन शहर पड़ते थे। दूसरी शाखा दक्षिण की ओर झुक कर पालेस्टाइन के किनारे से इडोम प्रान्त होकर मिसर देश में जा पहुंचती है, और वहां लाल समुद्र के रास्ते से इसका मिलाप होता था। प्राचीन काल के व्यापार का मुख्य रास्ता यही बीच का रास्ता था।

उत्तर की ओर का रास्ता हिमालय के पश्चिम से बाहर होकर मध्यएशिया में आँक्सस नदी पर जाता था। वहां हिन्दुस्थान की वस्तुओं की, और चीन से आये हुए रेशमी माल का सम्मिलन होता था। इस रेशमी कपड़े को चीन के पश्चिमी भाग से पैदल आँक्सस नदी तक पहुंचने में ८० से लेकर १०० दिन तक लगते थे। वहां से सब माल दो रास्ते से होकर काला समुद्र को जाता था। एक रास्ता कास्पियन समुद्र के दक्षिण की ओर से और दूसरा उत्तर की ओर से था। इसके सिवाय कास्पियन समुद्र से और कई नदियों से यह माल जहाज़ों की सहायता से भी आगे पहुंचाया जाता था। इस समय कास्पियन के पश्चिमी किनारे पर बाकू नाम का शहर है, वहां से काले समुद्र के पूर्व किनारे जो बाटूम शहर है वहां तक रूस की रेलगाड़ी का रास्ता है। कहा जा सकता है कि प्रायः पहले के व्यापार का यही रास्ता था। इस रास्ते पर टिफ़लिस शहर है।

इन रास्तों के सिवाय अफ़ग़ानिस्तान से ठीक पश्चिम से ईरान को जाकर बग़दाद में बीच वाले रास्ते से मिलने वाला भी एक मार्ग था। परन्तु इन रास्तों का महत्व भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न प्रकार का था। उत्तर की ओर मध्यएशिया से जो मार्ग जाता था वह बहुत फ़ासले का था, उसमें जाने से ख़र्च भी अधिक पड़ता था और जान माल का भी जोखिम था। वह मार्ग बड़े बड़े बालू के मैदानों से बर्फ़ से ढके हुए जङ्गल और पहाड़ों को पार करता हुआ जाता था। इसलिये थोड़े वज़न और भारी क़ीमत के चीनी रेशमी माल के सिवाय अन्य प्रकार का हलका माल इस मार्ग से अधिकतर जाता ही नहीं था। केवल चीन और यूरोप का व्यवहार सदा इसी मार्ग के द्वारा हुआ करता था। पीछे बीच के सीरिया का रास्ता बन्द होने पर इस उत्तर के रास्ते का महत्व बढ़ गया।

काले समुद्र से जो माल आता था उसका अधिकांश भाग कांस्टेंटिनोपल (कुस्तुंतुनिया) में उतरता था और वहां से तमाम यूरोप में फैलता था। कभी कभी कुस्तुंतुनिया में न उतर कर डेन्यूब आदि नदियों से बाहर ही बाहर यूरोप में पहुंचता था। क्रीमिया और डेन्यूब नदी के किनारे के प्रदेश इस व्यापार के कारण

सुधरने लगे। क्रीमिया के थियोडोसिया नामक स्थान में ग्रीक (यूनानी) लोगों के व्यापार का एक मुख्य अड्डा था। इसी तरह इस क्रीमियन प्रायद्वीप में आगे चल कर अनेक राष्ट्रों ने व्यापार के लिये अपने अपने अड्डे बनाये थे।

३–पूर्वीय वस्तुओं का यूरोप में प्रवेश।

कहा जाता है कि ऐतिहासिक काल के मनुष्यों का उदय पहले पहल एशिया महाद्वीप में हुआ। पहले भिन्न भिन्न राज्यों में सब प्रकार का व्यवहार खुश्की के रास्ते से ही होता था। इसके बाद ईश्वर ने मनुष्य को ऊँट जैसा बहुत ही उपयोगी पशु दिया जिससे मनुष्यों के लिये दूर का प्रवास सुखकारी हो गया। एशिया के पश्चिमी भाग में बालू के बड़े २ मैदान हैं, इसलिये वहां माल का लाना ले जाना केवल ऊँटों के द्वाराही हो सकता है। हज़ारों व्यापारियों का एक समूह अनेक पशुओं पर अपना माल लाद कर नियमित समय और बड़ी व्यवस्था के साथ हज़ारों मील का प्रवास किया करता था। समय पर समय, युग पर युग, बीतते गये, परन्तु इन व्यापारी क़ाफ़िलों की पद्धति ऐसीही जारी

रही। इसी पद्धति के कारण एशिया के पूर्वी किनारे के राष्ट्र पश्चिम किनारे और उसके भी आगे के राष्ट्रों को पहचानते थे।

उस समय यह पद्धति चाहे कितनी ही उपयोगी रही हो तौभी उसे अनेक बाधायें भी भोगनी पड़ती थीं। रास्ता बड़े धोखे का था, ख़र्च और परिश्रम भी हद से ज़्यादा करना पड़ता था। इसलिये मनुष्यों को इससे भी सुलभ मार्ग ढूंढ़ने की आवश्यकता हुई, और शीघ्रही ऐसा मार्ग ढूंढ़ भी लिया गया। पहले छोटी छोटी डोंगियों और नावों के द्वारा यद्यपि नदी, पुराने ज़माने में खाड़ी और किनारे की छोटी छोटी शाखाओं में प्रवास आरम्भ हो गया तथापि नौका-नयनशास्त्र (जहाज़ों के चलाने की विद्या) को आज कासा उन्नत स्वरूप प्राप्त होने को बहुत समय व्यतीत करना पड़ा। आज जो ऐतिहासिक बातें जानी जाती हैं उनसे मालूम पड़ता है कि पुराने ज़माने में भूमध्य समुद्र, अरब समुद्र, ईरान की खाड़ी आदि स्थानों में जहाज़ी व्यापार शुरू था। सीरिया के पश्चिमी किनारे पर फ़िनीशियन नाम का एक राज्य था। उसकी राजधानी टायर नामक नगर में थी। इस देश के लोग व्यापार के काम में बड़ेही साहसी थे, तथा मिसर देश

के लोग भी व्यापार में अग्रगण्य थे। पश्चिमी एशिया खण्ड में पुराने ज़माने में जिन राष्ट्रों ने उन्नति की थी उनकी उन्नति और नाश का कारण इस व्यापार के द्वारा ही हुआ था। जैसे दो देशों में लड़ाई होने से हारा हुआ देश नष्ट हो जाता है उसी तरह राष्ट्रों के अदल बदल का परिणाम शान्त समय की किसी क्षुद्र मालूम होने वाली बात से ही उत्पन्न होता है। सन १४९८ ईस्वी में जब वास्कोडिगामा ने आफ्रिका की परिक्रमा कर जल-मार्ग से पूर्व समुद्र में आने का मार्ग ढूंढ़ निकाला तभी से अनेक मध्यकालीन राष्ट्रों का झपाटे से अस्त हुआ।

यह बात निश्चय रूप से नहीं कही जा सकती कि प्राचीन समय में इस प्रकार व्यापार का लेनदेन कब से आरम्भ हुआ। यूरोप के कई पुराने ग्रंथों में ऐसी चीज़ों के नाम पाये जाते हैं जो केवल हिन्दुस्थान, चीन आदि पूर्व के देशों में ही होती हैं; और यह भी दिखाई पड़ता है कि कितने ही अलग मालूम होनेवाले नाम भी भाषा दृष्टि से एकही हैं। इससे स्पष्ट है कि बहुत प्राचीन समय में भी अर्थात यूनानियों के अभ्युदय के पहले भी पूर्व की वस्तुएं यूरोप में जाया करती थीं। केवल लोगों को यह नहीं मालूम था कि वे वस्तुएं कहां

से और किस प्रकार आती हैं। केशर, मलमल, सागौन, शीशम, नील, कपास, इमली, रत्न इत्यादि पदार्थ तथा हाथी, गदहे आदि जानवर सन ई० के १७०० वर्ष पहले ही यूरोप में पहुंचे थे। हाथीदांत, रांगा और कपड़े होमर के पहले (सन ई० के ८०० वर्ष पहले) यूरोप में गये थे। होमर के इलियड और ऑडिसे काव्य में मोतियों के कर्णफूल का वर्णन है। अवश्य ही वे कर्णफूल हिन्दुस्थान से वहां गये होंगे। संस्कृत का 'मरकत' शब्द ग्रीक भाषा में मोतियों का वाचक है। बाइबिल के पुराने भाग में कस्तूरी, अगर, चन्दन, दालचीनी, कपूर, ऊख, आबनूस, (एबनी) रुई के कपड़े, सोना, मोर, बन्दर आदि पशुओं का उल्लेख है। यूनानी इतिहास-लेखक हिराडोटस के (सन् ई० के ५०० वर्ष पहले) ग्रंथों में नील, तिल, एरण्डी, पटुआ का उल्लेख है। स्ट्रैबो के (सन ई० के ३०० वर्ष पहले) ग्रन्थ में चाँवल और हीरे का उल्लेख है। इसी समय के लगभग यूनानियों को कालीमिर्च, लालमिर्च, सौंठ, लौंग, शक्कर, वैडूर्य, घी, नारियल आदि वस्तुएं मालूम थीं। यथार्थ में इससे भी बहुत पहले ये वस्तुएं एशिया के पश्चिम वाले राष्ट्रों को मालूम रही होंगीं। यह बात ज़रूर है कि पुराने ज़माने में इन वस्तुओं को एक देश से दूसरे देश में

पहुंचने के लिये समय बहुत लगा करता था। सिकन्दर के पहले हीरा, और जूलियससीज़र के पहले बारीक रेशमी कपड़ा, यूरोप वालों को मालूम नहीं था। सन ई० के ५४५ वर्ष पहले कपूर यूरोप में नहीं गया था। अम्बर, इलायची जायत्रीं आदि वस्तुएं बहुत दिन बाद यूरोप वालों को मालूम हुईं। नारङ्गी, नीबू, आदि फल सन ई० के १००० वर्ष बाद के धर्मयुद्ध (क्रूसेड्स) के समय यूरोप में गये। रीठी का फल डच लोग वहाँ ले गये और कत्था सत्रहवीं सदी में यूरोप पहुंचा।

पूर्व और पश्चिम देश के इस व्यापार को भिन्न भिन्न समय में उत्तेजना भी मिलती गई। मिसर के राजा फारोसामेटिकस (सन् ई० के पहले ६७१ से ६७७ तक) और बाबिलोनिया के राजा नबूचन्द नज़र ने (ई० सन् के पहले ६०५ से ५६२ तक) अपने शासनकाल में पूर्व के इस व्यापार को बहुत सुविधाएं दीं। इससे दो हज़ार वर्ष तक यह व्यापार बहुत तरक्की पर रहा। इस समय में सम्पूर्ण सेमेटिक* राष्ट्रों से हिन्दुस्थान का बहुत ही निकट

*सन ई० के एक हज़ार वर्ष पहले से सन् ई० के एक हज़ार वर्ष व्यतीत होने तक पश्चिमी एशिया में जो राष्ट्र थे वे सेमेटिक कहलाते हैं। मिसर, सीरिया, पालेस्टाइन, एशिया माइनर, अरब, ईरान इत्यादि देशों में प्राचीन समय में जो जो राज्य प्रसिद्ध हुए उनके लिये यह सामान्य नाम दिया गया है।

सम्बन्ध था। इस सम्बन्ध के कारण उस समय के धार्मिक सिद्धान्तों में अनेक फेरफार घटित हुए। कितने ही शोधकों का कथन है कि हिन्दुस्थान की देवनागरी लिपि के अक्षर और कई यूरोपियन अक्षरों की सूरत मिसर देश के अक्षरों के रूपान्तर हैं। किन्तु कितने ही विद्वान इसका खण्डन करते हैं*। जो लोग ऊपर के कथन का प्रतिपादन करते हैं उनका कथन है कि फिनिशियन व्यापारी मिसर देश के अक्षर यूरोप को लेगये और अरब देश के लोग उन्हें हिन्दुस्थान में ले आये। सारांश धर्माचार, अक्षरलिपि, और सिक्कों के विषय में प्राचीन एशिया और अर्वाचीन यूरोप में केवल समानता ही नहीं है बल्कि पूर्ण रूप से ऐक्य भी है (बर्डकुड)। कार्न-वाल के किनारे से लेकर ब्रह्मदेश के किनारे तक केसर का उपयोग भोजनआदि में बहुत पहले समय से अन्य कामों में भी सर्वमान्य और प्रचलित है। ऊपर जिन वस्तुओं का नाम दिया गया है उनका उल्लेख यूनानी इतिहासकार एरियन के ग्रन्थ में भी पाया जाता है। सारांश, यह व्यापार बहुत पुराने ज़माने से होता आया था और उसी से इस समय के समान प्राचीन

---

*श्री युक्त वासुदेव गोविन्द आपटे महोदय ने भी इस मत का समर्थन नहीं किया।

राष्ट्र खूब धनवान हुए थे। उनमें जो झगड़े होते थे वे भी इस व्यापार के ही लिये होते थे। सिकन्दर ने अलकज़ेण्ड्रिया शहर को इसी व्यापार के लिये ही बसाया था। अरब वालों ने सन ६७५ में बसोरा और सन् ६७२ में बग़दाद शहर इसी लिये बसाये थे। ग्रीक, कार्थेजियन, रोमन, बायज़ेण्टाइन अर्थात पूर्व रोमन और अरब के देश इस हिन्दुस्थान के व्यापार के ही कारण भूमध्य समुद्र में एक के बाद दूसरे तरक्की और तनज्जुली पाते हुए ऊपर नीचे आते गये॥

४-मिसर और फ़िनिशियन राष्ट्रों का व्यापार

यूरोप और एशिया का व्यापार बहुत प्राचीन समय में अर्थात सन् ई० के दो हज़ार वर्ष पहले खाल्डियन लोगों के अधिकार में था। परन्तु उनका इतिहास उपलब्ध नहीं है इसके बाद अरब और फ़िनिशियन लोग व्यापार में आगे बढ़े। इनमें से अरब लोग लाल समुद्र और उसके पूर्व के भाग में घूमते फिरते थे और फ़िनिशियन लोग भूमध्यसमुद्र में व्यापार किया करते थे। इसके बाद फ़िनिशियन लोगों की ही एक

शाखा अफ़्रिक़ा के उत्तर किनारे पर कार्थेज में प्रकट हुई; उसने कार्थेज में अपना राज्य स्थापित किया। आरम्भ में कार्थेज का उदय व्यापार के कारण हुआ। तथापि प्राचीन व्यापार का विश्वासनीय पता मिसर और फ़िनिशियन देशों के इतिहास में विशेष पाया जाता है। इन दोनों देशों के व्यापारी जलमार्ग वाले थे और अरब समुद्र तथा भूमध्य समुद्र में प्रवास किया करते थे। पहले मिसर देश वालों को यह व्यापार पसन्द नहीं था। क्योंकि उनका देश उपजाऊ और धनवान था इसलिये अपने निर्वाह के लिये उन्हें दूसरों का मुंह ताकना नहीं पड़ता था। इससे विदेशी लोगों को वे अपने देश में नहीं आने देते थे। किन्तु कुछ दिनों के बाद सिसोस्ट्रीस नाम का उस देश में एक राजा हुआ। वह बहुत ही साहसी और चालाक था। उसने समझा कि परदेशों के साथ व्यवहार किये बिना हमें महत्व प्राप्त नहीं होगा, इसलिये उसने चारसौ जहाज़ों का एक बेड़ा तैयार कर हिन्दुस्थान के किनारे तक के सब देश अपने अधिकार में कर लिये। इस राजा के मरने के बाद मिसर-बासियों ने जल द्वारा पर्यटन करने का काम बन्द कर दिया, और बहुत दिनों तक वह बन्द ही रहा।

फ़िनिशियन लोगों के विषय में ऐतिहासिज्ञों को इस से अधिक जानकारी है। इन लोगों का राज्य सीरिया के किनारे भूमध्य समुद्र पर था। सन ईस्वी के एक हज़ार वर्ष पहले से सन ईस्वी के ५०० वर्ष पहले तक लग भग पाँच सौ वर्ष तक इन लोगों की अच्छी तरक्की रही। यह तरक्की पूर्ण रूप से व्यापार पर अवलम्बित थी। क्योंकि उनका देश बहुत ही रूखा था। इसलिये अपने निर्वाह की वस्तुएँ भी उन्हें परदेश से लानी पड़ती थी। इस समय जैसे इंग्लैंड अथवा हालेण्ड देश व्यापार से धनवान बने उसी तरह प्राचीन समय में फ़िनिशियन देश भी धनवान हुआ था। फ़िनिशियन खलासियों का जहाज़ी विद्या में बड़ा नाम था, और उनके विशेष फ़ायदे का व्यापार हिन्दुस्थान के ही साथ होता था। हिन्दुस्थान का माल जल-मार्ग से ईरान की खाड़ी से उधर पश्चिम हो कर स्थल के द्वारा भूमध्य समुद्र में जाता था। उनकी राजधानी टायर नगरी भूमध्य समुद्र में थी, परन्तु उस समय नौका चलाने की विद्या बहुत पीछे पड़ी हुई थी, इस लिये अपने जहाज़ लेकर वे खुद हिन्दुस्थान को नहीं आते थे। लाल समुद्र के उत्तरी भाग में दो छोटी छोटी खाड़ियां हैं। एक स्वेज़ की खाड़ी और दूसरी आकाब की

खाड़ी। इन खाड़ियों के बीच में इड्यूमियन नामक लोगों का एक राज्य था। फिनिशियन लोगों ने लाल समुद्र के किनारे के चार बढ़िया बन्दर उन लोगों से जीत लिये। इन्हीं बन्दरों के द्वारा वे लोग इधर हिंदुस्थान से और उधर अफ़्रिका के पूर्व और दक्षिण किनारों से व्यवहार रखते थे। तथापि लाल समुद्र से टायर नगर की दूरी बहुत थी, इसलिये लाल समुद्र से अपनी सीमा नज़दीक पड़ने के लिये भूमध्य समुद्र का ह्निनोकोल्युरा नाम का बन्दरगाह उन्हों ने प्राप्त किया। हिन्दुस्थान का सब माल वे उसी जगह लाया करते थे। वहां से टायर को माल पहुंचा कर यूरोप के भिन्न भिन्न स्थानों में उसे पहुंचाया करते थे। हिन्दुस्थान से व्यापार करने के लिये यही मार्ग उनके लिये विशेष सुबिधा-जनक था, क्योंकि अन्य रास्तों की अपेक्षा इस रास्ते में उन्हें परिश्रम और ख़र्च कम पड़ता था। इस मार्ग से जो व्यापार होता था उसके कारण फ़िनिशियन लोग इतने धनवान हो गये कि बाइबिल में उनके विषय में इस प्रकार का उद्गार पाया जाता है कि, 'टायर के व्यापारी मानो बिना मुकुट के राजा हैं, और पृथवी के सब लोगों में वे सब से अधिक इज्ज़तदार हैं'। सिकन्दर बादशाह ने फ़िनिशियन लोगों का टायर शहर नष्ट कर

दिया और सिडोन अधिकृत कर लिया। बस उसी समय से फ़िनिशियन लोग रसातल को पहुंचे॥

५—यहूदियों का व्यापार।

यहूदियों को ज्यू अथवा यहूदी कहते हैं। उनका राज्य भी फ़िनिशियन लोगों के राज्य से लगा हुआ था। टायर की सम्पत्ति देख कर उन्हों ने भी व्यापार का मार्ग स्वीकार किया। डेविड और सालोमन नाम के यहूदियों के दो बड़े पराक्रमी राजा हुए। इन में से डेविड ने सन् ईस्वी के पहिले १०४९ से १०१६ तक और उसके लड़के सालोमन ने सन् ईस्वी के पहिले १०१६ से ९७६ तक राज्य किया। बाइबिल के पुराने पत्रों में इन के शासन काल का वर्णन दिया हुआ है। डेविड ने जेरूसलेम शहर को अपनी राजधानी बनाई। यहां से व्यापार का मझला रास्ता अर्थात् सीरियन रास्ता उसने अपने अधिकार में कर लिया। उत्तर का डमास्कस शहर भी उसके अधिकार में था। जेरूसलेम के पूर्व की ओर राबा नामक एक व्यापार की मण्डी थी, जहां बाहर का आया हुआ माल उतरा करता था। इस स्थान को भी उसने

अपने अधिकार में कर लिया। दक्षिण की ओर मिसर की सीमा पर इड्यूमियन और मोआबाईट नामक छोटे छोटे राज्य थे उन्हें डेविड ने जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। सारांश, ऊपर डमास्कस से नीचे मिसर तक का सारा प्रदेश डेविड ने अपने कब्ज़े में कर लिया। ऐसा करने में उसका मुख्य उद्देश व्यापार बढ़ाना था। उसके इस उद्देश को उस के लड़के सालोमन ने पूरा किया।

डमास्कस के भी आगे पालमीरा नामक स्थान में क़ाफ़िलों के उतरने की एक जगह थी; उसे सालोमन ने अधिकृत कर वहां ताडमूर नाम का अड्डा बनाया। इस से यूफ्रेटिस नदी और भूमध्य समुद्र के बीच के व्यापार का मुख्य भाग उसके हाथ में आगया। उस समय टायर का फ़िनिशियन राजा हिराम नाम का था उससे सालोमन ने व्यापारिक सन्धि की। इस राजघराने के मूल पुरुष इब्राहीम को ईश्वर की ओर से बरदान मिला था, वह बरदान सालोमन के समय सच्चा हुआ। उत्तर की ओर व्यापार की व्यवस्था ठीक कर सालोमन ने दक्षिण की ओर की व्यवस्था ठीक की। उसने ईड्यूमियन लोगों से आकाब की खाड़ी के ईलाथ और जंजीबार नाम के दो शहर प्राप्त किये, और इन बन्दरों से उसने अपने

जहाज़ बाहर भेजे। उसने भेजे जाने वाले जहाज़ों के साथही उनके ख़लासी भी फ़िनिशियन राजा हिराम से मांग लिये। इस प्रकार इन दोनों राजाओं ने टार्शिश और ओफीर नामक दूर के बन्दरों से अपना व्यापार जारी किया। अनुमान है कि, ये दोनों बन्दर कहीं अफ़्रिका के किनारे पर रहे होंगे। सालोमन के जहाज़ बाबुलमण्डब मुहाने से नीचे अफ़्रिका के किनारे किनारे सोफाला नामक स्थान तक जाया करते थे, और सोफाला का सोना, चांदी, तथा दूसरे प्रकार का माल लेकर लौट आया करते थे। इतना होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यहूदी लोगों का हिन्दुस्थान से प्रत्यक्ष व्यवहार था। व्यापार के द्वारा सालोमन राजा ने जेरूसलेम शहर को अनेक बढ़िया चीज़ों से सुशोभित किया। किन्तु बाइबिल में सालोमन का जो स्तोत्र है उसमें केवल व्यापार की चीज़ों की फ़िहरिस्त है। और यह निश्चय है कि उनमें से कई चीजें हिन्दुस्थान की थीं जैसे उसके सिंहासन के हाथीदांत, सुन्दर जवाहिर, तीन सौ सोने की ढालें, मशालें और बगीचों में मोर तथा बन्दर। इसी तरह मन्दिर में जो चन्दन के दरवाज़े थे वे सब हिन्दुस्थान के थे। मिसर के राजा फारो की लड़की सालोमन से ब्याही गई थी। उस समय का जो 'विवाह-मङ्गल-स्तोत्र' मिलता है उसमें

भी व्यापार का गूढ़ार्थ भरा हुआ है। मिसर से सालोमन के पास घोड़े और कपड़े भी आये थे।

आगे चलकर थोड़े ही दिनों के बाद यहूदियों का राज्य नष्ट हुआ। सन् ईस्वी के ९७६ वें वर्ष में सालोमन मर गया और उसका राज्य बँट गया। फिर एक हज़ार वर्ष में मिसर, आसीरिया, बाबिलोनिया, पर्शिया (फ़ारस) ग्रीस (यूनान) और रोम राष्ट्र सीरिया में प्रबल हुए। जो राष्ट्र प्रबल होते थे वे दूसरे को जीतकर अपनी सत्ता बढ़ाते थे। आगे चलकर वे भी नष्ट हो जाते थे और किसी दूसरे राष्ट्र का ही प्रताप चमकता था। इस उदय और अस्त का बीज व्यापार था।

६—सिकन्दर की व्यापार संबंधी नीति

यूनान के बादशाह सिकन्दर ने सन् ईस्वी के ३२७ वें वर्ष में हिन्दुस्थान में चढ़ाई की। इस बादशाह को पूर्व की ओर के व्यापार का महत्व अच्छी तरह मालूम होगया था। इसलिये उसमें इस प्रकार की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई थी कि पृथ्वी पर अर्थात् स्थल और

समुद्र में भी अपना राज्य होना चाहिये। सिकन्दर ने देखा कि फ़िनिशियन लोग थोड़े से जहाज़ों की सहायता से अपने शत्रुओं से टक्कर झेलते हैं, और अपनी रक्षा करते हैं, इस प्रकार हिन्दुस्थान का सारा व्यापार जलमार्ग के द्वारा अपने अधिकार में रखने के कारण वे बहुत ही धनवान होगये हैं। इसलिये उनका राज्य छीन लेने के लिये उसने बहुत प्रयत्न किया। मिस्र देश की नील नदी के किनारे एक नया शहर बसाकर उस ने उसे अपने नाम से प्रसिद्ध किया। इस प्रकार फ़िनि-शियन लोगों के टायर शहर को उसने अच्छी दशा तक पहुंचा दी। इस अलेकज़ेण्ड्रिया शहर के बसाने में सिकन्दर की दूरदृष्टि और चालाकी अच्छी तरह मालूम पड़ती है। सैकड़ों राज्यक्रान्तियां हुईं तो भी लगभग अठारह सौ वर्ष तक यह शहर हिन्दुस्थान के व्यापार का मुख्य नाका बना रहा। ईरान देश जीतने पर सिकन्दर समरक़न्द में गया और वहां से हिन्दुस्थान की ओर झुका। रास्ते में उसने अनेक प्रदेश और लोगों को देखा। इससे उसे मालूम हुआ कि सम्पूर्ण उत्तम वस्तुओं का मूलस्थान हिन्दुस्थान है। इसलिये हिन्दुस्थान जीतने की उसकी लालसा बहुत ही बढ़ गई। इसके बाद वायव्य कोण के मार्ग से वह हिन्दुस्थान में आया। ख़ैबर की घाटी से

हिन्दुस्थान में आनेवाला ऐतिहासिक काल का यही पहला वीर पुरुष है। तक्षशिला अर्थात अटक में नावों के पुल से सिन्धु नदी उतर कर वह इस पार पहुंचा। झेलम नदी के किनारे पौरस राजा की उसकी लड़ाई हुई और उसके बाद वह दक्षिण की ओर झुका। पंजाब की उपजाऊ भूमि देखकर वह दङ्ग रह गया। इसके पहले उसने नील यूफ्रेटिस टैग्रिस आदि नदियों के किनारे की उपजाऊ भूमि देखी थी, तथापि पंजाब की भूमि ने उसे ऐसा मोहित किया कि उसे देखकर उसकी दृढ़ धारणा हुई कि परमेश्वर की कृपा-दृष्टि का वैभव और मनुष्य की बुद्धि यहां चरमसीमा को पहुंच गये हैं। लोगों ने उससे कहा कि सिन्धु नदी और पंजाब की भूमि तो किसी गिनती में नहीं है, इसके आगे गङ्गा नदी और उसके किनारे का प्रदेश इससे भी अधिक उपजाऊ और शोभायमान है। इसे सुनते ही उसने अपनी सेना जमा की और इधर कूच करने के लिये उसने उससे आग्रह किया। परन्तु इसके पहले उसकी सेना ने बहुत सी तकलीफें उठाई थीं, इसलिये आगे बढ़ने के लिये न तो उसकी हिम्मत पड़ती थी और न उसके पांव ही आगे पड़ते थे। इससे केवल सेना को प्रसन्न रखने के लिये सिकन्दर को पीछे

लौटना पड़ा। सिकन्दर व्यास नदी तक आया था। उसके किनारे उसने बारह बड़े बड़े स्तम्भ खड़े किये। सन् ४६ ई० में अपोलोनियस टायनियस नामक एक यूनानी विद्वान पंजाब में आया था; उस समय उसने उन स्तम्भों को देखा था। उसने सिकन्दर का एक चरित्र लिखा है, कि, उस समय उन स्तम्भों में लिखे हुए लेख पढ़े जा सकते थे। सिकन्दर अपने साथ बहुत से विद्वानों को भी लाया था पहले उनके द्वारा उसने हिन्दुस्थान की सारी हकीक़त जानी। पहले वह झेलम नदी को पार किया। उस समय उसने बहुत सी नावें बनाने का हुक्म दिया था। उसके हुक्म के अनुसार लौटती समय सब नावें अच्छी तरह तैयार मिलीं। उसकी चढ़ाई की सारी व्यवस्था नियार्कस (Nearchus) नामक एक होशियार अफ़सर के सुपुर्द थी। खुद सिकन्दर इन्हीं नावों में बैठकर सिन्धु नदी होकर नीचे दक्षिण की ओर चला। उसके साथ में एक लाख बीस हज़ार फ़ौज थी। दो सौ हाथी और छोटे मोटे दो हज़ार नौकायें थीं। अपनी फ़ौज के तीन हिस्से कर एक हिस्से को उसने नौकाओं के साथ लिया और दूसरे दो भागों को दोनों किनारों से साथ साथ चलाया। दोनों किनारों के राजाओं ने सिकन्दर को टैक्स दिया। कुछ राजाओं से लड़ाई कर उसने उन्हें परास्त किया,

जिससे वे शरण आये। इस नदी के प्रवास में उसे नौ महिने लगे; इन नौ महिनों में उसने एक हज़ार मील का सफ़र पूरा किया।

सिन्धु नदी से समुद्र में उतरने पर सिकन्दर को बहुत सन्तोष हुआ; और नौकाओं की व्यवस्था नियार्कस को सौंप कर आप समुद्र के किनारे किनारे ईरान को गया। बाक़ी फ़ौज समुद्र के किनारे किनारे स्थल के मार्ग से गई। उन सभों का मिलाप ईरान की खाड़ी के सिरे पर यूफ्रेटिस नदी पर हुआ। इस प्रवास में सात महिने व्यतीत हुए। हिन्दुस्थान की सच्ची और उपयोगी ख़बर इसी समय यूरोप को गई। सिकन्दर के उक्त प्रवास की कई छोटी मोटी बातें को तफ़सील विंसेंट स्मिथ की पुस्तक में दी हुई है; वह मनोरंजक और उपयोगी है, इसलिये उसे यहां देते हैं।

ईरान देश जीतने पर ईशान की ओर झुककर सिकन्दर मध्य एशिया में गया। वहां के समतल प्रदेश से आमूनदी बहती है; उस भाग का नाम पूर्वी बैक्ट्रिया है। उसकी राजधानी बलख शहर में थी। उस देश को जीतने पर सन ई० पू० के ३२७ वें वर्ष की बसन्त ऋतु आरम्भ हुई, और बर्फ़ घुलने लगी; इसी समय सिकन्दर ने हिन्दुस्थान की ओर कूच किया। उसके साथ यूरोप की पचास साठ

हज़ार फ़ौज थी । दश दिन में हिन्दुकुश पर्वत नांघकर वह कोहिदामन घाटी में आ पहुंचा । वहां पर अपना फ़ौजी अड्डा क़ायम कर वहां के बंदोबस्त के लिये निकेनोर (Nikanor) को मुक़र्रर किया । यहां पर पश्चिम उत्तर और दक्षिण तीनों दिशाओं के मार्ग का सङ्गम था । वहां से चलकर सिकन्दर निकेया (Nikaia) में आया । निकेया शहर जलालाबाद के पश्चिम की ओर था । यहां पर सिकन्दर ने अपनी फ़ौज के दो हिस्से किये । एक भाग काबुल नदी के किनारे का जीतता हुआ हिफेस्टियन और पर्डिकास इन दो सेनापतियों के साथ आगे भेजा । तक्षशिला का हिन्दू राजा पहले ही शरण में आ चुका था । वह इस फ़ौज के साथ प्रबन्ध करने के लिये कूच कर रहा था । तक्षशिला शहर सिन्धु नदी के पूर्व किनारे से तीन मंज़िल की दूरी पर था । रावलपिंडी के वायव्य और हसनअब्दुल के आग्नेय कोण की ओर कई मील तक जो पुराने खण्डहरों का भाग दीखता है यहीं पर वह शहर बसा हुआ था । तक्षशिला के राजा और पोरस के बीच शत्रुता थी । इससे हिन्दुस्थान के विषय में सब तरह की बातें बताकर व्यवस्था करने का भार इस राजा ने अपने ऊपर लिया । सिन्धु नदी के पश्चिम ओर के राजा

सिकन्दर की फ़ौज के शरण आये और उन सभों ने सिन्धु नदी से इस ओर आने के लिये नावों का पुल बंधवाया। फ़ौज के दूसरे भाग की अध्यक्षता स्वयम सिकन्दर ने स्वीकार की और सन ई० पूर्व के ३२७ वें वर्ष के सितम्बर में आगें बढ़ा। रास्ते में अनेक अड़चनें हुईं और उसे कई लड़ाइयां भी लड़नी पड़ीं। सिकन्दर की व्यवस्था और दिखलावट उत्तम होने के कारण प्रत्येक अवसर में उसे सफलता प्राप्त होती गई। जो राजा शरण आते थे उन्हें वह नौकर रख लेता था; किन्तु जो विरुद्धता करते थे उन्हें वह जानसे मरवा डालता था। इस प्रकार सन् ई० के पूर्व ३२६ वें बर्ष के जनवरी महिने में वह सिन्धु नदी के किनारे आ पहुंचा। वहां पर अपनी फ़ौज को उसने एक महिने तक आराम करने दिया, और उसे खुशी मनाने की इजाज़त दे दी।

उस समय पंजाब में अनेक छोटे मोटे राज्य थे। उसी समय तक्षशिला का राजा मर गया और उसका लड़का ओंफिस गद्दी पर बैठा। सिकन्दर के विषय में उसने भी अपने बाप का अनुकरण किया। उत्तर की ओर पहाड़ी प्रदेश में राजा का अभिसार नामक राज्य था। इसके सिवाय दूसरा राज्य पोरस का था। उसका विस्तार झेलम और चिनाब नदी के बीच में था अर्थात्

इस समय जहां झेलम, गुजरात व शाहपुर के जिले हैं उसी विस्तार में उक्त राज्य था। तक्षशिला के राजा ने सिन्धु नदी पर नावों का पुल तैयार कर दिया। यह पुल अटक से उत्तर १६ मील पर जहां आजकल ओहिन्द अर्थात् कन्द नाम का गांव है वहां बना था। सन् ई० के पूर्व ३२५ वें बर्ष के मार्च महिने में सिकन्दर अपनी सारी फ़ौज के साथ तक्षशिला में आया। उस समय यह शहर बहुत नामी था। वहां विद्वानों का अच्छा जमाव था। वहां पर सम्पूर्ण देश के विद्वान आया करते थे। सिकन्दर ने वहां के राजा को अनेक प्रकार से खुश कर अपने आगे के काम के लिये उन विद्वानों से बड़ी मदद ली। अभिसार के राजा और पोरस की मित्रता थी। इसलिये दोनों की सलाह थी कि दोनों मिलकर सिकन्दर से युद्ध करें। तथापि अभिसार के राजा ने तक्षशिला में सिकन्दर के पास अपना प्रतिनिधि भेजकर अधीनता स्वीकार करली। सिकन्दर ने पोरस को भी अपनी ओर करने का खूब प्रयत्न किया। सिकन्दर ने उसे अपनी मुलाक़ात के लिये बुलाया, परन्तु उस अभिमानी राजा ने उत्तर भेजा कि, "सीमा पर मैं आपकी मुलाक़ात करने के लिये तैयार हूं। परन्तु मेरा आना फ़ौज के साथ होगा"। इस

उत्तर के भेजने के बाद पोरस अपनी ५० हज़ार सेना के साथ झेलम नदी के किनारे सिकन्दर से मुक़ाबला करने के लिये आ पहुंचा। इधर सिकन्दर भी तक्षशिला से निकला, और १५ दिनों में झेलम नदी पर पोरस के सामने आ पहुंचा (मई ३२६)। सिन्धु नदी उतरने के लिये बिन नावों का पुल था उनके टुकड़े कर सिकन्दर उन्हें गाड़ियों में लाद लाया था। किन्तु पोरस की फ़ौज के सामने नदी नांघना सहज काम नहीं था। इसलिये सिकन्दर ने नदी के इधर और उस पार के प्रदेश का निरीक्षण कर सब तरह की ख़बरें प्राप्त कीं। उस समय गर्मी के दिन थे और बर्फ़ के गलने से नदी में बाढ़ आई हुई थी। इसलिये ऊपर की देख रेख के विषय में किसी को शक न होने देने के लिये धोखा देकर नदी पार करने का मौक़ा हाथ आने के लिये सिकन्दर ने अफ़वाह उड़ा दी कि जब तक नदी की बाढ़ उतर न जाय तब तक हम नदी पार नहीं करेंगे। इसके बाद पानी बरसने से नदी में और भी बाढ़ आगई। ऐसी बरसात में रात को गुपचुप उस जगह से कोई १६ मील ऊपर जाकर सिकन्दर चुनी हुई सेना के साथ नावों के द्वारा नदी पार हुआ। पोरस को ज्योंही इस बात की ख़बर लगी

ज्योंही वह अपनी सारी सेना के साथ सिकन्दर पर आ टूटा। पोरस की सेना में २०० हाथी और ३० हज़ार पैदल सिपाही थे, और दोनों ओर के मिलाकर चार हज़ार सवार और ३०० रथ थे। हर एक रथ में चार २ घोड़े जुते हुए थे, और उनके भीतर दो तीरन्दाज़, दो ढाल वाले और दो सारथी मिला कर छः छः मनुष्य थे। पैदल सेना के पास ढाल, तलवार, और धनुषबाण थे। यद्यपि पोरस की फ़ौजी तैयारी बहुत अच्छी थी तथापि उसकी सेना बहुत भारी थी। उधर सिकन्दर का सारा दारमदार घुड़सवारों पर था, इसलिये उसकी सेना में तेज़ी और चुस्ती अधिक थी। सिकन्दर की फ़ौज का दूसरा हिस्सा क्रेटिरास नामक उसके होशियार सेनापति के आधीन ठिकाने पर था। इधर सिकन्दर और पोरस का गुत्थमगुत्था होतेही क्रेटिरास ने एकदम नदी पार कर पोरस पर पीछे की ओर से हमला किया; इससे पोरस की सेना में बड़ी हलचल मच गई और इसी से उसका पराजय हुआ; और वह क्रेटिरास के हाथ क़ैद हो गया। पोरस बहुत ही सुन्दर, जवांमर्द और साढ़े छः फ़ुट ऊँचा जवान था। उसने जान को हथेली पर लेकर ख़ूब लड़ाई की, किन्तु शरीर पर नौ घाव हो जाने से लाचारी की हालत में पकड़ा गया। सिकन्दर ने उससे

बड़ी ख़ातिरदारी का बर्ताव किया, और उसका मुल्क उसे वापिस देकर और भी अधिक प्रदेश उसके राज्य में मिला दिया* । इस प्रकार सिकन्दर ने उसके साथ जो उदारता दिखाई उससे यह सिकन्दर का अच्छा दोस्त हो गया । इस विषय में भी सिकन्दर की धूर्तता साफ़ साफ़ मालूम होती है । पोरस के साथ यह लड़ाई सन् ईस्वी पूर्व के ३२६ वें वर्ष के जुलाई महिने के आरम्भ में हुई थी । इस लड़ाई के स्मरणार्थ सिकन्दर ने युद्ध-भूमि के पास दो नये शहर बसाये । उनमें से बूकिफल (Buoke-phà)al नाम का नगर बहुत प्रसिद्ध हुआ और इस समय भी झेलम शहर के पास है ।

इसके बाद क्रेटिरास को ठिकाने पर रख सिकन्दर ने आस पास के अनेक प्रान्तों को विजय किया । चिनाब नदी को पार कर रावी नदी के इधर भी वह सहजही आपहुंचा । रावी के इस ओर कथई लोगों का मुख्य स्थान सङ्कल नामक था, उसे भी उसने जीता । सन् ईस्वी पूर्व के ३२६ वें वर्ष के सितम्बर महिने में वह व्यास नदी के

*कहते हैं जिस वक़् पोरस कैद होकर सिकन्दर के पास आया उस समय सिकन्दर ने उससे पूछा कि 'हम तुमसे किस तरह पेश आवें ?' पोरस ने निधड़क होकर उत्तर दिया कि 'जैसे वीर लोग वीरों के साथ पेश आते हैं,' इस उत्तर से पोरस की अद्भुत वीरता का पता पाकर सिकन्दर ने उससे मेल करना ही अच्छा समझा । अनुवादक ।

किनारे आ पहुंचा। वहां से आगे बढ़ने के लिये उसकी सैना किसी तरह तैयार नहीं होती थी। सिकन्दर ने बारम्बार सैना को कई तरह से मनाया, परन्तु सब व्यर्थ गया। सिकन्दर का कोइनास नामक एक विश्वासनीय सरदार था। उसने हिम्मत कर सब लोगों का कहना सिकन्दर को सुनाया। इस बात को सुन कर सिकन्दर बहुत ही निराश हुआ। मारे ग्लानि के वह तीन दिनों तक अपने डेरे से बाहर नहीं निकला। अन्त में निराश होकर उसने फ़ौज को लौटने का हुक्म दिया। वहां से निकलने के पूर्व उसने व्यास नदी के उस पार बारह देवताओं के नाम से बारह चौकोन पत्थर के खम्भे बनवाये और बड़ा उत्सव किया। प्रत्येक खम्भे की ऊँचाई ५० फुट थी।

वहां से लौट कर सिकन्दर चिनाब नदी पर आया। उसे वहां पाँच हज़ार सवार और सात हज़ार पैदल सैना यूनान देश से आई हुई मिली। वहां से शीघ्रही वह झेलम नदी के किनारे आया। वहां अपनी फ़ौज के तीन टुकड़े कर एक नदी से नावों के द्वारा रवाना किया और दो को दोनों किनारों से पैदल भेजा। इस प्रकार चलते हुए वह समुद्र तक पहुँचा। रास्ते के सब प्रान्तों का वह निरीक्षण करता गया। नदी पर लोगों

की जो नावें फिरती दिखाई पड़तीं उन्हें वह अपने काम में लगा लेता था। बहुत सी नई नावें खुद उसने भी बनवाई थीं। भिन्न भिन्न देशों के बहुत से खलासी उस की सेना में थे; उन्हें नावों के चलाने में उसने नियुक्त किया। ८० ऐसी बड़ी नावें थीं जिनमें प्रत्येक में तीस तीस दांड़ लगते थे, और छोटी मोटी सब दो हज़ार नावें सामान और सवारी में थीं। दोनों किनारों में जो फ़ौजें चल रही थीं उनके सेनापति क्रेटिरास और हिफ़ेइस्टन थे। सिकन्दर नदी की सेना के साथ था। झेलम से चलने के पहले सिकन्दर ने एक बडा दरबार किया, और पोरस को उसके राज्य पर सदा के लिये अधिष्ठित किया। इसी तरह अभिसार के राजा को सिन्धु नदी के पूर्व का प्रदेश देकर वहां का क्षत्रप बनाया। अक्टूबर के अन्त में एक दिन अच्छे मुहूर्त में सबेरे देवपूजन कर और जल देवता को नैवेद्य आदि अर्पण कर रणसिंहा बजाते हुए फ़ौज को कूच करने का हुक्म दिया गया। बहुत से घोड़े नावों में सवार कराये गये थे। इस प्रकार का अनोखा दृश्य देख कर लोगों को बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ। आस पास के लोग यह देख कर बड़े चकित हो रहे थे कि इतना बड़ा क़ाफ़िला कैसे अदब क़ायदे के साथ सुव्यवस्थित रीति से चल रहा है। हज़ारों दांडों के चलने की एक

दम आवाज़ होती थी, जासूस लोग पुकार पुकार कर कूच का हुक्म छोड़ रहे थे और ख़लासी गाते हुए आनन्द से नावें चला रहे थे; इन सब की प्रतिध्वनि दोनों किनारों पर उठती थी जिस से बड़ा कोलाहल मच रहा था। आठवें दिन यह सेना झेलम और चिनाब नदी के सङ्गम पर आ पहुंची। वहां पर कुछ नावें डूब गईं और सिकन्दर की नाव भी डूबते ही डूबते बच गई। यह प्रवास करते समय आसपास के लोगों से सिकन्दर को कई युद्ध करने पड़े; किन्तु उन्हें शिकस्त देकर सिकन्दर ने वहां की भूमि अधिकृत करली। एक बार सिकन्दर को ज़बरदस्त घाव लगा और वह बेहोश हो गया; किन्तु घाव चीर कर भीतर का अस्त्र-खण्ड निकाल डालने से वह अच्छा हो गया। इसके बाद आगे बढ़ कर सब सेना सिन्धु और पञ्चनद के सङ्गम पर आई। यहां पर सिकन्दर ने एक शहर बसाया। यहां से सिकन्दर ने क्रेटिरास को ख़ुश्की के रास्ते ईरान को रवाना किया। सिकन्दर यहां से रवाना होकर उस डेल्टा (त्रिकोण भूमि) में पहुंचा जो सिन्धु की शाखाओं के फूटने से बन गई है। वहां पर पटल (पत्तल-ठट्ठा) नामक एक बड़ा शहर था। वह ठीक नाके पर था, इसलिये सिकन्दर को बड़े मौक़े का मालूम हुआ। वहां

से सिन्धु नदी के पूर्व-पश्चिम भाग के समुद्र तक सिकन्दर ने स्वयं प्रवास किया और युद्ध के लायक़ तथा व्यापार के लिये उपयोगी साधनों की पूरी पूरी आँच की। वहां नये जहाज़, बन्दरगाह और बन्दर तैयार कराकर पटल को लौट आया। इस तरह की देखरेख और जाँच ख़तम कर यूरोप जाने का रास्ता निश्चय करने के लिये उसने अपनी फ़ौज के दो भाग किये। उसने हुक्म दिया कि एक हिस्सा समुद्र से प्रवास करे और दूसरा समुद्र वाली सेना पर नज़र रखता हुआ किनारे से चले। झेलम से पटल नगर तक आने में दश महिने लगे। उसके सरदार नियार्कस ने इस कूच और नावों के काफ़िले की सारी शिद्धता और व्यवस्था बहुत अच्छी रखी थी। इसलिये उसे ही समुद्र से चलनेवाले काफ़िले का सेनापति बनाकर आप किनारे किनारे चला। ख़ुश्की का यह प्रवास बड़े कष्ट के साथ पार पड़ा। सिकन्दर को यह बात मालूम नहीं थी कि बीच में बड़े बड़े पर्वत और बालू के मैदान पड़ने से तकलीफ़ उठानी पड़ेगी। इस अड़चन से सामना होने पर उसके बहुत से मनुष्य मर गये; और शत्रुओं से लड़ने पर बड़ा परिश्रम पड़ा। समुद्र से जानेवाली फ़ौज को ख़ुश्की की फ़ौज से अथवा ख़ुश्की की फ़ौज से समुद्र की फ़ौज को कोई

मदद नहीं मिली, बल्कि बड़े ही प्रयास के पश्चात् दोनों शाखाओं की भेट आर्मेज़ के पास हो सकी। दोनों शाखाओं का प्रवास सन् ई० पू० के ३२५ वें वर्ष के अक्टूबर महिने में आरम्भ हुआ। नियार्कस को भी बहुत सी अड़चनों से सामना करना पड़ा। आर्मेज़ में पांच मञ्ज़िल की दूरी पर सिकन्दर ठहरा था; वहां जाकर नियार्कस को सिकन्दर की मुलाक़ात करनी पड़ी। फिर पहले के समान मुसाफ़री शुरू की गई और सब फ़ौज ईरान की खाड़ी के सिरे पर सूझा में सन् ई० पू० के ३२४ वें वर्ष के अप्रेल महिने के अन्त में जा पहुंची। इसके एक वर्ष बाद सन् ई० के पू० ३२३ वें वर्ष के जून महिने में यह पराक्रमी पुरुष बाबिलोन में परलोक-वासी हुआ।

इस वृतांत से यह बात अच्छी तरह मालूम पड़ती है कि इस पराक्रमी पुरुष की चाल और चतुराई कैसी थी। उसकी महत्वाकांक्षा थी कि उस का राज्य यूनान से लगाकर हिन्दुस्थान की पूर्व सीमा तक सब देशों में रहे। उसकी खोज करने की ताक़त, कल्पनाशक्ति और व्यवस्था को देखते हुए यह बात साफ़ मालूम पड़ती है कि यदि वह जीता रहता तो अपनी यह इच्छा पूर्ण करने में उसे बाधा न पड़ती। उसने पश्चिम एशिया खण्ड के

सभी राज्यों में एक नया आन्दोलन उत्पन्न किया। दूर दूर के लोगों की एक दूसरे से पहचान हुई; भिन्न भिन्न स्थानों के उपयोगी और आवश्यकीय पदार्थों की एक दूसरे को जानकारी हुई; व्यापार के नये २ मार्ग और बाज़ार उत्पन्न हुए जिससे उद्योग और व्यापार को एक नये प्रकार का झुकाव प्राप्त हुआ। तब से हिन्दुस्थान का कपास और चावल तथा तिब्बत की ऊन आदि नितान्त उपयोगी पदार्थ पश्चिम की ओर खपने लगे। उन्हें इस बात का पक्का विश्वास होगया कि हिन्दुस्थान सारी सम्पत्ति का भण्डार है। यह बात स्पष्ट है कि सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसकी इच्छा को पूर्ण करने का किसी ने प्रयत्न नहीं किया। इसका यही सबब है कि उसके बाद उसका राज्य कई हिस्सों में बंट गया; उस बटवारे में हिन्दुस्थान देश का कुछ भी उल्लेख नहीं है। सिकन्दर ने जिन अफ़सरों को नियुक्त किया था वे उसके मरने के पांच छः वर्ष बाद तक अपने काम पर थे। सिन्धु नदी में पहुंचने की अवधि से ईरान की खाड़ी तक लौटने में तीन वर्ष का समय व्यतीत हुआ। इनमें से करीब १९ महिने सिन्धु नदी के पूर्व के प्रदेश में व्यतीत हुए। यदि वीरता के नाते देखा जाय तो भी इन तीन वर्षों की घटनाएँ सिकन्दर का ऊँचा महत्व बता रही

हैं। फ़ौज की व्यवस्था, टीमटाम का प्रबन्ध और युद्ध कला की बातें सिकन्दर में लासानी थीं। अनेक मौक़ों पर सिकन्दर स्वयं जीवन की कुछ परवाह न कर संकट में कूद पड़ा। कितनेही समालोचक कहेंगे कि सेनापति के लिये ऐसा करना उचित नहीं है, तथापि यह बात भी उसकी प्रशंसा ही करने योग्य है। झेलम नदी के जहाज़ी बेड़े का प्रवास, नियार्कस की समुद्र-यात्रा और सिकन्दर का खुश्की का प्रवास—ये तीनों बातें प्रशंसा करने योग्य हैं। दूसरी एक बात यह मालूम होती है कि उस समय भी हिन्दुस्थान की फ़ौज यूरोपियनों की फ़ौज की अपेक्षा नीचे दर्जे की थी। यूनानी सवारों के सामने पञ्जाब के हाथी निरुपयोगी सिद्ध हुए। तथापि इस हमले का हिन्दुस्थान पर कुछ अधिक प्रभाव नहीं हुआ। इस समय के समान उस समय के सयाने लोगों के ध्यान में यह बात न आई कि सिकन्दर सरीखे मनुष्य इतना आडम्बर कर के अपने देश में क्यों आते हैं और इन परदेशी यूरोपियन लोगों से हमें क्या सीखना चाहिये। उनकी राज्य-पद्धति व्यवस्था और सुधार का प्रश्न किसी के दिमाग़ में न समाया। यही सबब है कि थोड़ेही दिनों में लोगों को मानो इस बात की भी याद न रही कि हिन्दुस्थान पर यूनानियों का हमला

हुआ था अथवा नहीं। किन्तु यूरोप पर इस चढ़ाई का परिणाम उलटा हुआ। यहां के व्यापार, सम्पत्ति, विद्या, शास्त्र और कलाकौशल इत्यादि की एक एक बातें ढूँढ कर यूनानियों ने जान लीं और उन्हें यूरोप ले गये। यूरोप के इतिहास की दशा दूसरे ढङ्ग की हो गई, इसलिये सिकन्दर ने जो काम किया था वह डेढ़ हज़ार वर्ष तक योंही पड़ा रहा।

उस समय हिन्दुस्थान में एकछत्र राज्य नहीं था। कितनेही छोटे मोटे राज्य थे और उनकी दशा भी अच्छी थी; लोग भी सुखी थे। सिकन्दर के ज़माने में हिन्दुस्थानी लोगों की जो चाल रीति थी, जो पहनाव और कलाकौशल की स्थिति थी वह अभी सौ पचास वर्ष की स्थिति से ऐसी मिलती है कि लोगों का यह समझना भी सम्भव है कि इन दोनों समयों में कुछ अधिक फ़रक नहीं पड़ा। हिन्दुस्थान की ऋतु, यहां का निश्चित वर्षाकाल, नदियों का बढ़ना और घटना, उनमें बाढ़ का आना और उससे होने वाली हानि आदि सब बातों का दृश्य आज की स्थिति और दृश्य से बहुत अच्छी तरह मिलान खाता है। यूनान से हिन्दुस्थान तक का सारा सुविस्तृत देश एक मनुष्य के अधिकार में रहना सम्भव नहीं था, तथापि

सिकन्दर यह बात जानता था कि सब जाति के लोगों को अपने अपनें कारबार में पूरी २ स्वतन्त्रता देनी चाहिये; और उत्तम प्रकार से राज्य करने का वही मार्ग है जिसमें सब को सुख हो। इस विषय में उसके मन्त्रियों में और उसमें ज़बरदस्त विरोध उपस्थित हुआ। उसके गुरु अरिस्टॉटल (अरिस्तू) ने उससे कहा कि, "केवल यूनानी लोगों के साथ प्रजा के नाते बराबरी का वर्ताव करना चाहिये; परन्तु अन्य लोगों को निकृष्ट दर्जे का मानना चाहिये।" परन्तु सिकन्दर को यह कथन पसन्द नहीं हुआ। कहना पड़ता है कि गुरु की अपेक्षा शिष्य में ही मनुष्यों का मन पहचानने की बुद्धि अधिक थी। इसलिये घर पर बैठ कर तत्वशास्त्र पर ग्रन्थ लिखने वाले गुरु का उपदेश उसने नहीं माना। आर-बेला में विजय के पश्चात् उसने स्वयं ईरानी पोशाक पहनना स्वीकार किया और पास के सरदारों को भी वही पोशाक पहनने में राज़ी किया। इसी तरह ईरानी लोगों से उसने आग्रह किया कि हमारे यूनानी लोगों से तुम अच्छी अच्छी बातें सीखो। उसने खुद ईरान के बादशाह दरायस की लड़की के साथ ब्याह किया, और सौ सरदारों का ब्याह अन्य सौ ईरानी लड़कियों के साथ कराया। ये सभी ब्याह बड़े ठाठ बाठ के साथ

हुए। वह इतने ही से सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने राज्य के बन्दोबस्त के लिये क़िले आदि बनवाये और इस बात की तजवीज़ की कि जिसमें हिन्दुस्थान का व्यापार अपने अधिकार में रहे। इसीलिये उसने सिन्धु नदी का प्रवास और ईरान की खाड़ी से व्यापार का मार्ग निश्चित किया। सिन्धु नदी के समान ही युफ्रेटिस और टैग्रिस नदी का भी उसने निरीक्षण किया। इस समय उसकी उमर भी कुछ अधिक नहीं केवल तीस वर्ष की थी।

सिकन्दर के मर जाने के पश्चात् उसके राज्य के टुकड़े हो गये और हिन्दुस्थान से लगा कर मध्य-एशिया का सारा मुल्क सेनापति सेल्युकस के अधिकार में आ गया। सेल्युकस ने सिकन्दर के साथ रह कर शिक्षा पाई थी अतएव सिकन्दर की सब चालें उसे मालूम थीं। उसने हिन्दुस्थान पर चढ़ाई कर चन्द्रगुप्त से युद्ध किया। इसके बाद दोनों में सुलहनामा होगया और दोनों आपस में एक दूसरे के मित्र होगये। सिकन्दर के बाद ४२ वर्ष तक सेल्युकस ने राज्य किया। उसने अपने शासन-काल में मेगास्थेनीज़ नामक एक होशियार एलची पाटलीपुत्र (पटना) में चन्द्रगुप्त के पास भेजा था। यह मेगास्थेनीज़ सिकन्दर की चढ़ाई

के समय उसके साथ में पहले भी हिन्दुस्थान आचुका था। मालूम पड़ता है यही पहला यूरोपियन है जिसने भागीरथी और उसके आसपास का उपजाऊ देश देखा था। यही मेगास्थेनीज़ उत्तर हिन्दुस्थान की असली हक़ीक़त पहले पहल यूरोप में लेगया। हिन्दुस्थान का ऐश्वर्य देखकर वह दङ्ग रहगया। स्ट्रेबो, एरियन (ई॰ सन् ९० और १८०) आदि यूनानी ग्रन्थकर्ताओं ने जो हिन्दुस्थान की हक़ीक़त लिखी है वह बहुत करके उन्होंने मेगास्थेनीज़ से ही पाई होगी। परन्तु मेगास्थेनीज़ के वर्णन में बहुत सी बातें कल्पित और असम्भवित हैं इसलिये वे सर्वथा विश्वासनीय नहीं हैं। वह लिखता है कि, "पाटलीपुत्र शहर की लम्बाई दस मील और चौड़ाई दस मील थी। परकोट के चारों ओर ५७० बुर्ज और ५४ दरवाज़े थे।" चन्द्रगुप्त के लड़के के पास भी डाइमेकस नामक यूनानी एलची आया था।

७—मिसर के राजाओं का प्रयत्न।

हिन्दुस्थान आने के पहले सिकन्दर ने एशिया माइनर अपने कब्ज़े में करके सीरिया देश को जीत लिया था। फ़िनिशियन लोगों का टायर शहर उसके हाथ में आया।

उस समय वह समुद्री विद्यापारङ्गत राज्य नष्ट हो गया। इसके बाद सिकन्दर एशिया से नील नदी होकर मिसर के देश में जा पहुंचा। मिसर देश सहज ही उसके अधिकार में आगया। उसकी पुरानी राजधानी मेंफिस में सिकन्दर का बड़े ठाठ के साथ राज्याभिषेक हुआ, और बड़ा जलसा किया गया। मेंफिस से नील नदी के नीचे वह समुद्र किनारे आया, और वहां एक नया शहर बसाया। वह अब तक अलकज़ेण्ड्रिया के नाम से प्रसिद्ध है। इस शहर की जगह सिकन्दर ने खुद पसन्द की थी, इससे उसकी व्यापारी चाल का अच्छा पता लगता है। इसके सिवाय सिकन्दर ने यह बात भी जानली कि देश की रक्षा के लिये समुद्र पर अधिकार रखना आवश्यक है। सिकन्दर बादशाह ने मिसर देश पर अधिकार तो करलिया था परन्तु उसके मरने के पीछे टॉलेमी नामक एक चतुर मनुष्य ने उसे अपने अधिकार में कर लिया, और अलकज़ेण्ड्रिया को अपनी राजधानी बनाई। उसने उस बन्दर में साफ़ आइने कैसे पत्थर का चार सौ फुट ऊँचा एक सुन्दर सुविशाल दीप-स्तम्भ बनवाया। वह अब तक संसार की सात आश्चर्य-जनक वस्तुओं में गिना जाता है। इस राजा ने नौकाविद्या और व्यापार में बड़ा सुधार

किया। इस टॉलेमी के लड़के टॉलेमी फिलाडेलफस (सन् ई० पू० २८५ से २४७) ने टायर शहर का व्यापार अलकज़ेण्ड्रिया में लेआने के लिये स्वेज़ डमरूमध्य को काट कर आजकल की स्वेज़ की नहर के समान १०० हाथ चौड़ी और ३० हाथ गहरी एक नहर खुदवानी आरम्भ की। इस समय की नहर स्वेज़ से भूमध्य समुद्र में मिलाई गई है, परन्तु उस नहर को आर्सिना बन्दर से नील की पूर्वी शाखा से लाकर मिलाने की तजवीज़ हुई थी। वह प्रयत्न सिद्ध नहीं हुआ। तथापि इस समय की नहर उस पुरानी नहर की ही थोड़ी बहुत पुनरावृत्ति है। यद्यपि नहर का प्रयत्न सिद्ध नहीं हुआ तथापि लाल समुद्र के पश्चिमी किनारे पर उसने बर्निस नामक बन्दर बनवाया। उस बन्दर पर हिन्दुस्थान का माल जाता था और वहां से खुश्की के रास्ते कॉप्टॉस शहर होकर अलेकज़ेण्ड्रिया में पहुँचता था। यह कॉप्टॉस शहर नील नदी के किनारे था। बर्निस और कॉप्टॉस के बीच २५० मील का अन्तर था। इसी बीच में उक्त राजा ने मुसाफिरों के आराम के लिये सड़क बनवाकर जगह जगह उतरने के लिये मुसाफिरखाने अथवा पड़ाव बनवा दिये। आगे २५० वर्ष तक इस रास्ते का उपयोग होता रहा। बर्निस बन्दर से

निकले हुए जहाज़ अरब और ईरान के किनारे किनारे सिन्धु नदी के मुखपर ठट्ठा नामक शहर के पास आते थे। ठट्ठा का प्राचीन नाम पत्तल था। उस समय इस व्यापार के ज़ोर से मिसर के राजा बड़े धनवान होगये थे। टॉलेमी फिलाडेलफस का एलची डायोनिसियस मौर्यनरेश के दरबार में आया था। इसी तरह अशोक का एलची मिसर के दरबार में गया था। सन् ई० के आरम्भ में मिसर और सीरिया देश रोमन लोगों के कब्ज़े में आगये। यह घटना सन् ई० ४० की है। पाटलीपुत्र के पराक्रमी राजा दूसरे चन्द्रगुप्त ने (ई० सन् ३७५-४१३) हिन्दुस्थान और यूरोप का व्यापार मिसर होकर आरम्भ किया इसलिये परस्पर का व्यवहार बहुत बढ़ गया।

८—रोमन लोगों का प्रयत्न।

अब यह बात कहनी है कि यह व्यापार रोमन लोगों के हाथ में किस प्रकार चला गया। इस व्यापार के उलट पलट की जड़ 'प्यूनिक वॉर्स' में है। रोम और कार्थेज़ के बीच जो युद्ध हुए उन्हें प्यूनिक वॉर्स कहते हैं।

कार्थेज उस समय के फ़िनिशियन लोगों का उपनिवेश था। भूमध्य समुद्र के व्यापार से वहां के लोग अच्छे धनवान होगये थे। वे एक प्रकार से समुद्र-बहादुर जीव थे; इसके सिवाय व्यापार में कुशल थे, इसलिये उनकी सत्ता अच्छी तरह से बढ़ गई थी। सिसली द्वीप के पास आफ़्रिका की एक नोक भूमध्य समुद्र में चली गई है। इसी जगह पर यह कार्थेज नगरी थी। माल्टा, कार्सिका, सार्डिनिया और स्पेन के आस पास के द्वीप तथा स्पेन का दक्षिणी भाग कार्थेज राज्य के शासनाधीन था। जिब्राल्टर के पास भूमध्य समुद्र से अटलाण्टिक महासागर में उतरने के लिये चिञ्चोला जलमार्ग है, उसके दोनों ओर दो बड़ी पहाड़ियां हैं। उन्हें हरक्यूलीज़ के खम्भे कहते हैं। इन खम्भों को पारकर पहले कार्थेज के खलासी उसपार गये; और हानो नामक एक कार्थेज के मनुष्य ने आफ़्रिका के पश्चिमी किनारे बहुत से प्रदेश का पता लगाया। इस तरह कार्थेज की सम्पत्ति बहुत बढ़ गई; और कुछ समय में रोमन राज्य से टक्कर झेलने में उसने कमी नहीं की। कार्थेज का अधिकांश व्यापार पूर्व की ओर के माल पर निर्भर था। कार्थेज की धनसम्पत्ति देखकर रोमन लोगों के मुँह में पानी छूटने लगा। उन्होंने जहाज़ वग़ैरह

बनवाकर भूमध्य समुद्र में व्यापार आरम्भ किया। इससे शीघ्रही इस व्यापार का मुनाफ़ा उन्हें मालूम होने लगा। हिन्दुस्थान के ऊँचे माल को वे बहुत पसंद करने लगे, इसलिये उन्होंने और भी नये जहाज़ बनवाये; और सब बातों में कार्थेज का अनुकरण किया। धीरे धीरे कार्थेज का संहार कर वहां रोमन शासन आरम्भ किया। पहले पहल रोमन लोगों ने ही उस प्रदेश का नाम आफ्रिका रक्खा; धीरे धीरे सारे महादेश का नाम आफ्रिका होगया। इसके बाद रोमन लोगों ने यूनान देश को भी फ़तह किया। और एशिया खण्ड में भी अपना राज्य बढ़ाया। दक्षिण हिन्दुस्थान के मदूरा के पाण्ड्य राजा ने अपना एलची रोम में ऑगस्टस सीज़र के पास भेजा। मदूरा राज्य में मोती निकालने का कारखाना था और यूरोप में उनकी खूब बिक्री होती थी। रोमन इतिहास-लेखक प्लिनी ने मदूरा के राज्य का अपने ग्रन्थ में वर्णन किया है। मदूरा की सीमा में रोमन लोगों के कीमती सोने के सिक्के और अन्य हलके सिक्के इतने मिले हैं कि अनुमान होता है कि वहां कहीं रोमन लोगों का निवास अवश्य था। ये सिक्के सन् ई० के आरम्भ से सन् ४०० ई० तक के बने हुये हैं। सोने के रोमन सिक्के तो मदूरा के राज्य

में वैसे ही चलते थे जैसे आज कल सावरिन चलता है। इससे मालूम होता है कि रोमन बादशाहों से मलाबार किनारे का खासा व्यापार चल रहा था। उस व्यापार में ख़ास कर मोती की गिनती अधिक थी। (विनसेण्ट स्मिथ)। रोम के धनवान लोग हिन्दुस्थान का क़ीमती माल बहुत पसन्द करते थे। पहले पहल यह माल विशेष कर ऊपर लिखी हुई हक़ीक़त के अनुसार मिसर देश के मार्ग से ही होता था; किन्तु इसके बाद यूफ्रे-टिस नदी के पाट से सीरिया प्रान्त होकर भूमध्य समुद्र में माल पहुँचाने का लग्गा लगा। इस रास्ते से खुश्की की मुसाफ़री क़रीब २०० मील करनी पड़ती थी। इस रास्ते के क़रीब ही पालमीरा अर्थात ताडपूर का शहर था। यह शहर क्या था मानो व्यापार के फ़ायदे से बढ़ा हुआ एक छोटा सा प्रजासत्तात्मक राज्य ही था। कुछ वर्षों तक आसपास के राज्यों पर इस राज्य की धाक भी ज़बरदस्त बैठी हुई थी।

लाल समुद्र के इस बीच के मार्ग के विषय में यों कहना चाहिये कि पहले यूनान और मिसर के ख़लासी किनारे किनारे हिन्दुस्थान आते थे। उन ख़लासियों के ध्यान में यह बात आगई थी कि अरब समुद्र में साल भर वर्षा ऋतु का वायु नियमित रूप से दो भिन्न

दिशाओं में बहा करता है जिसे मानसून (मौसिम) कहते हैं। सन् ई० की दूसरी सदी में हिप्पालस नामक एक नाविक ने इसका उपयोग करके लाभ उठाया। प्लिनी नामक रोमन इतिहास-कार ने इसका वर्णन किया है। वह लिखता है कि, अलक्ज़ेंड्रिया से २ मील पर जुलियोपोलिस में हिन्दुस्थान में जानेवाला माल नील नदी पर जहाज़ों में लादा जाता था। वहां से ३०३ मील पर कॉप्टॉस में वह माल जाता था। नील नदी के इस प्रवास में १२ दिन लगते थे। कॉप्टॉस से २५८ मील खुश्की के मार्ग से जाकर बर्निस में लाल समुद्र के जहाज़ों में लदता था। यह खुश्की का रास्ता १२ दिनों में समाप्त होता था। गर्मी के कारण ऊँटों का क़ाफ़िला रात भर चलता था और दिन को आराम करता था। बर्निस से अरब के किनारे पर गेला नामक स्थान में पहुँचने के लिये थोड़े दिन लगते थे। वहां से वर्षा ऋतु के वायु की सहायता से वे लोग ४० दिन में सीधे मार्ग से मलाबार के किनारे पर आ पहुँचते थे। यहां पर माल की बिक्री कर और नया माल लाद कर वे दिसम्बर महिने के लगभग मिसर देश को वापस जाने के लिये रवाना हो जाते थे। इस प्रकार आने जाने के प्रवास में उन्हें क़रीब क़रीब एक

वर्ष लगता था। इस मानसून नामक बरसाती हवा की सहायता से समुद्र में उस पार जाने का मार्ग रोमन लोगों को मालूम था। जब रोमन लोगों ने मिसर देश को जीत लिया तब पूर्व की ओर का व्यापार उनके अधिकार में चला गया।

ख़ासकर तीन प्रकार का माल, अर्थात् मसाला, जवाहिर और रेशमी सूती आदि ऊँचे दर्जे का कपड़ा, रोमन लोग हिन्दुस्थान से यूरोप को ले जाते थे। रोमन लोगों में मुर्दे जलाने की रीति थी। इसलिये उस कार्य में वे हिन्दुस्थान की सुगन्धित वस्तुओं का उपयोग किया करते थे। सिला नामक राजा की चिता में २१० बोझ हिन्दुस्थानी सुगन्धित पदार्थ लगे थे। पाम्पे की अन्त्येष्टिक्रिया में नीरो बादशाह ने जितनी सुगन्धित चीज़ें जलाईं उतनी एक वर्ष में सारे हिन्दु-स्थान में नहीं उत्पन्न होती थीं। इनमें से कुछ चीज़ें अरब से भी जाती थीं। सारांश, सब तरह के मसाले और सुगन्धी द्रव्य एशिया के पूर्व किनारे से ठेठ यूरोप तक जाते थे। ऑगस्टस बादशाह के समय रोम के बाज़ार का एक हिस्सा केवल मसाले और सुगन्धित पदार्थों से भरा रहता था। दूसरे प्रकार का माल जवा-हिर था जिसमें मोती और रत्न आदि होते थे। प्लिनी

ने भिन्न भिन्न रत्नों और उनके गुणों तथा मूल्य की फ़ेहरिस्त दी है, वह इतनी सूक्ष्म और सम्पूर्ण है कि उसे देखकर आश्चर्य मालूम होता है। रोमन लोगों का ऐश आराम व थाट केवल हिन्दुस्थान के रत्नों व मोतियों आदि पर अवलंबित था। ब्रूटस की सर्विलिया नामक माता थी, उसे जुलियस सीज़र ने एक मोती नज़र किया था। उस एक मोती की क़ीमत क़रीब क़रीब पाँच लाख रुपये थी। क्लियोपेट्रा के पास मोतियों के कर्णफूल की एक जोड़ी थी, उसकी क़ीमत १५ लाख रुपये थी। ये मोती और रत्न पूर्व के सब देशों से यूरोप में जाते थे; तौ भी हिन्दुस्थान के माल की ख्याति औरों से अधिक थी। तीसरा माल रेशमी कपड़े थे। रोमन स्त्रियों को ख़ासकर इस बारीक कपड़े का बड़ा शौक़ था। रेशमी कपड़े की क़ीमत वज़न में क़रीब क़रीब सोने की तौल के बराबर थी। बहुतसा रेशम चीन से भी जाता था। युरोपवालों को यह मालूम नहीं था कि वह किस प्रकार तैयार किया जाता है। यह कपड़ा कम बनता और मिलता था, इसलिये उसकी क़ीमत भी अधिक रहा करती थी। एरियन लिखता है कि ऊन का पतला कपड़ा, रुई के रङ्ग बिरङ्गी कपड़े, कुछ जवाहिर और कुछ ऐसी सुगन्धित

वस्तुएं जो हिन्दुस्थान में प्रसिद्ध नहीं थीं, मूँगे, काँच के बर्तन, चाँदी की ढाली हुई चीज़ें, सिक्के और शराब आदि वस्तुएं भरकर मिसर के जहाज़ ठट्ठा में आते और उन वस्तुओं के बदले हिन्दुस्थान से मसाले, जवाहिर, रेशमी कपड़े, रुइ के कपड़े, और काली मिर्च यूरोप को लेजाते थे। मिसर के जहाज़ ठट्ठा के समान भड़ौच में भी आते थे। भड़ौच का सम्बन्ध तगर शहर से था। तगर का माल भड़ौच में आता था। रोमन क़ायदों में हिन्दुस्थान से आई हुई चीज़ों पर महसूल देने की फ़िहरिस्त लिखी हुई है, उससे भी इस व्यापार का अन्दाज़ा लग सकता है। यह बात स्मरण रखना चाहिये कि उस समय हिन्दुस्थान से यूरोप को कच्चा माल अधिक नहीं जाता था। रोमन लोगों को हिन्दुस्थान के पूर्वी किनारे के बन्दरों के विषय में अधिक कुछ मालूम नहीं था। तथापि उन बन्दरों का तथा अन्य जगह का माल खुश्की के रास्ते पश्चिम किनारे पर आकर यूरोप को जाता था। ऑगस्टस बादशाह के शासनकाल में लिखा हुआ स्ट्रैबो का ग्रंथ देखा जाय तो मालूम होगा कि उसे पूर्व हिन्दुस्थान के बन्दरों की जानकारी नहीं थी। उसके पचास वर्ष बाद प्लिनी नाम का लेखक हुआ। उसे

भी पूर्व के बन्दरों का हाल मालूम नहीं था। उसके ८० वर्ष के बाद टॉलेमी की लिखी हुई बातें मिलती हैं, वे भूगोल शास्त्र के विषय में बहुत महत्व की हैं। पश्चिम की ओर पहला प्रसिद्ध ज्योतिषी टॉलेमी ही हुआ है॥

९—ईरान।

पहले ईरान देश पर ईरानी राजा का राज्य था। वहां दारायस नाम का एक बहुत ही पराक्रमी राजा होगया है। उसके समय में ईरान बहुत ही तरक्क़ी पर था। उसने राज्य के तथा आसपास के सब भागों की अच्छी जाँच की थी, और हिन्दुस्थान का हाल जानने के लिये भी बहुत परिश्रम किया था। सायलॅक्स नामक सरदार को फ़ौज के साथ भेजकर उसने इस बात की जाँच कराई कि सिन्धु नदी में कहां तक जहाज़ जा सकेंगे। इस सरदार ने दारायस को जाकर समझाया कि हिन्दुस्थान बहुत ही उपजाऊ देश है, वहां की खेती उत्तम दशा में है और लोग शान्त तथा धनवान हैं। इसलिये उसे हिन्दुस्थान देश को जीतने की बड़ीही उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। उत्कण्ठा ही नहीं हुई, बल्कि सिन्धु नदी के उसपार का सारा देश उसने

जीतकर अपने अधिकार में कर भी लिया। उस समय दारायस के राज्य में जो आमदनी वसूल होती थी उसका तीसरा हिस्सा इस नये जीते हुए मुल्क से उसे मिलता था। इसीसे हिन्दुस्थान के वैभव की कल्पना हो सकती है, क्योंकि हिन्दुस्थान का बहुत थोड़ा हिस्सा उसके अधिकार में था।

इसके बाद सिकन्दर बादशाह ने ईरान को जीता और उसके अनुयाइयों ने ईरान में नया राजघराना स्थापित किया। किन्तु वह राजघराना बहुत दिनों तक नहीं टिक सका। ईरान के पूर्व की ओर पार्थिया नाम का एक प्रदेश था, वहां के लोगों ने ईरान का राज्य हस्त-गत कर लिया। तब से वहां पार्थियन राज-वंश का शासन स्थापित हुआ। यह घराना छः सौ वर्ष तक राज्य करता रहा। इसके बाद सन् ई० की तीसरी सदी में आर्देशीर और शापुरी नाम के दो ईरानी राजा बहुत पराक्रमी हुए। उन्होंने फिर ईरानी वंश का राज्य स्थापित किया। आर्देशीर का (सन् २२६-२४०) आर्टोक्ज़र्ज़िस और शापुरी का (सन् २४०-२७१) सापोर नाम यूरोपियन इतिहास कारों ने लिखा है। इन दो राजाओं के शासन में अर्थात् सन् ई० की तीसरी सदी में ईरान और चीन का व्यवहार बहुत ही बढ़ गया। ईरान में मानी

नामका एक धर्म-सुधारक होगया है। उसने चीन देश से कलाकौशल और कारीगरी के काम लाकर ईरान में उनका प्रचार किया (ईरान-राष्ट्रकथामाला में ऐसा लिखा हुआ है)। उस समय से ईरानी लोग व्यापार के काम में आगे बढ़े। इसके पहले जलका प्रवास उन्हें हौआ सा मालूम पड़ता था। अन्त में वह डर जाता रहा और वे जलमार्ग से हिन्दुस्थान के साथ व्यापार करने लगे। इसी तरह उत्तर की ओर से खुश्की के रास्ते हिन्दुस्थान और चीन के साथ कास्पियन समुद्र और यूफ्रेटिस नदी के दर्रों के द्वारा यूरोप का जो व्यापार होता था उसके दोनों मार्ग भी ईरानी लोगों ने हस्तगत कर लिये। पहले ग्रीक लोगों से ईरानी बादशाह का झगड़ा सौ दो सौ वर्ष तक बड़ी सरगर्मी से चलता रहा। इस झगड़े की जड़ भी यही व्यापार था। रोमन लोग बड़े ही आराम-तलब थे, इसलिये उन्हें इधर की चीज़ों की बड़ी ज़रूरत पड़ा करती थी। इधर उन चीज़ों की ज़रूरत रफ़ा करने का काम ईरानी लोगों के हाथ में आगया इससे वे धनवान हो गये और अपने लाये हुए माल की कीमत मुँहमाँगी माँगने लगे। रोमन बादशाह ऑरेलियन के शासन-काल में (सन् २७०-२७५) रोमनगरी में एक पौंड (४०

तोले) वज़न का रेशमी कपड़ा इतने अधिक दामों में मिलता था जितने में बारह औंस अर्थात ३० तोला सोना मिलता था। (Smith's Student's Gibbon, p. 300.) जस्टिनियन बादशाह को (सन् ५२७-५६५) यह जान कर बड़ा खेद हो रहा था कि, 'हमें रेशमी कपड़े की तो बड़ी ज़रूरत है किन्तु इस ज़रूरी चीज़ के लाने का भार पार्थियन व्यापारियों के हाथ में है; क्या जल-मार्ग और स्थल-मार्ग दोनों में वे ही प्रबल हैं? इस व्यापार में अपने देश की सम्पत्ति ये पर-धर्मी व्यापारी ढोये लिये जा रहे हैं।' यह मामला सौ दो सौ वर्ष तक ऐसा ही चलता रहा। जस्टिनियन बादशाह बड़ा पराक्रमी था; इसलिये ईरानी लोगों का व्यापार डुबाने के लिये उसने अनेक युक्तियां कीं।

हिन्दुस्थान के मलाबार किनारे पर सेंट टामस में ईसाइ लोगों का गिर्जा था। इसी तरह ईरान के दो ईसाइ पादरी चीन देश के नांकिन में बहुत दिनों से रहते थे। उस समय सीलोन (लङ्का) और चीन के बीच व्यवहार जारी था। चीनी लोगों के रेशमी कपड़े देख कर उन पादरियों ने यह बात सीखली कि रेशम की उत्पत्ति किस प्रकार कीड़े से होती है। इसके बाद धर्म

के प्रचार के लिये हो अथवा धन की लालच से हो, उन पादरियों ने यूरोप में जाकर जस्टिनियन बादशाह से मुलाक़ात की। बादशाह ने उन्हें रुपये पैसे से खूब मदद पहुँचाई, और उनसे कह दिया कि यदि ये कीड़े हमारे राज्य में ले आओगे तो तुम्हें बहुत इनाम मिलेगा। इससे वे पादरी फिर चीन में गये और वहां रेशम के कीड़े की सब विद्या सीखली। यही नहीं, बाँस की नलियों में से बहुत से कीड़े चुराकर वे यूरोप लेगये, और उन्हें बादशाह को समर्पित किया। वहां पर कीड़ों के लिये मलबेरी अर्थात् शहतूत के पेड़ों की खेती की गई। इस प्रकार इन पेड़ों और रेशमी कीड़ों की खेती ग्रीस देश में और विशेष कर पेलापोनेसस प्रान्त में खूब फैल गई। यूनान देश से फिर इस व्यवसाय का फैलाव सिसली द्वीप में हुआ और वहां से वह इटली देश में फैला। तबसे चीन के रेशम का व्यापार बहुत पीछे पड़ गया, और यूरोपियन व्यापारी रेशम के रोज़गार में आगे आये॥

१०—अरबी मुसलमानों का उद्योग।

ऊपर इस बात का विवेचन हो चुका कि किस प्रकार फ़िनिशियन, यूनानी, रोमन, मिस्र और अन्त में

ईरानी राष्ट्र के अधिकार में पूर्व के व्यापार की बाग-डोर पहुँची। अब यह जानना चाहिए कि इस काम में अरबी मुसलमानों का प्रवेश कैसे हुआ।

अरबी लोग बहुत पुराने ज़माने से अरबस्थान के बाशिन्दे हैं। उन्हीं में पैग़म्बर मुहम्मद का जन्म हुआ। मुहम्मद के जन्म के पहले उन्हें अरब से बाहर जाने की सुविधा नहीं थी। मुहम्मद के समान चतुर अगुआ मिलने से उन लोगों का एक उत्तम राष्ट्र बन गया; और नये धर्म की छत्र-छाया में उनके देश की खूब उन्नति हुई। देशही की उन्नति कर वे सन्तुष्ट नहीं हुए, बल्कि आस पास के बहुत से देश भी उन्होंने जीते। दरियाई काम में भी वे अगुआ बने, जिससे पूर्व की ओर का व्यापार शीघ्रही उनके अधिकार में चला गया। अपने धर्म को फैलाने और देशों के जीतने में वे बहुत ही सख़्त और चुस्त थे; इसी तरह व्यापार के काम में भी कुशल थे; गरज़ यह कि किसी बात में कम नहीं थे। जहां जहां मुसलमानों का शासन फैला वहां वहां ज़मीन का प्रवास बढ़ गया, इससे व्यापार भी बढ़ गया। मक्के की यात्रा करने के लिये सब मुसलमानों को मुहम्मद की ताक़ीद थी। ऐसे यात्रियों के साथ बहुत से व्यापारी भी रहा करते थे। मक्के की यात्रा के समान

संसार में और कोई बड़ी यात्रा नहीं थी। उस यात्रा में करोड़ों रुपयों का लेन देन हुआ करता था। इस प्रकार मुसलमानों का ध्यान व्यापार की ओर खिंचता गया। ख़लीफ़ा उमर ने ईरान देश जीत लिया और वहां का व्यापार अपने हाथों में रखने के लिये बसोरा नाम का शहर बसाया। अन्त में वह शहर बहुत प्रसिद्ध होगया। मिसर के व्यापारी भी सीलोन के उस तरफ़ बहुत करके नहीं गये थे; परन्तु ये मुसलमान खलासी ठेठ चीन तक खुद जाकर वहां का माल लाया करते थे। ईरान में मुसलमानी शासन होजाने के दो सौ वर्ष बाद का एक अरबी प्रवासी का लिखा हुआ ग्रन्थ पाया जाता है, उससे उस समय की बहुत सी बातें जानी जाती हैं। उस प्रवासी ने अपना प्रवास सन् ८५१ ई० में किया था। एक दूसरे अरबी यात्री ने भी उस वर्णन को पुष्ट किया है। इससे दोनों के प्रत्यन्तर मिलने से वह वर्णन विश्वासनीय हो गया है। अरब खलासियों को नाविक-विद्या मालूम नहीं थी, इसलिये वे भी ग्रीक और रोमन लोगों के समान किनारे किनारे ही सफ़र किया करते थे। अरबी व्यापारी शाम, सुमात्रा तथा पूर्व के द्वीप-समूहों में होकर चीन के कांतान नगर में जाते थे, और वहां का

माल ईरान की खाड़ी में लाते थे। बहुत से अरबी लोग हिन्दुस्थान और पूर्व के देशों में बस गये थे। कांतान में उनकी इतनी बस्ती हो गई थी कि चीन के बादशाह ने उनके लिये एक मुसलमान काज़ी नियुक्त करदिया था जो उनका न्याय किया करता था। बहुत से स्थानों में वे लोगों को मुसलमानी धर्म की दीक्षा दिया करते थे। बहुत से बड़े बड़े बन्दरों में अरबी भाषा प्रचलित थी। चीनी मिट्टी के बर्तनों का हाल पहले पहल हिन्दुस्थानियों को अरबी लोगों से ही मालूम हुआ। नौमी सदी में समस्त चीन देश में चाय और उसका व्यवहार प्रचलित था; उसकी जानकारी अरबी व्यापारियों ने बाहर के देशों को भी करा दी। हिन्दुस्थान की जगहों और चीज़ों का हाल इन अरबी व्यापारियों ने अच्छी तरह प्राप्त किया। उस समय हिन्दुओं का ज्योतिष-शास्त्र विशेष प्रौढ़ था और उस शास्त्र में हिन्दुओं को बराबरी करनेवाला कोई नहीं था। अरबी लोगों ने यह शास्त्र तथा गणित-शास्त्र बाहर के देशों में पहुँचाया।

ईरान के मुसलमान जैसे व्यापार में बढ़े चढ़े थे उसी तरह वहां के ईसाई लोग भी किसी से कम नहीं

थे। ईरान में नेस्टोरियन नाम की ईसाइ सम्प्रदाय बहुत उन्नत हो चुकी थी। उसकी शाखाएं हिन्दुस्थान के दक्षिण भाग में और सीलोन में भी फैली हुई थीं। अरबी खलाफियों की सहायता से यह ईसाइ मज़हब और भी बढ़ता जारहा था। चीन में भी ईसाइयों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। परन्तु उन सब का नेस्टोरियन धर्म-गुरु ईरान में ही था, इसलिये भिन्न भिन्न स्थानों में ईरान से ही पादरी भेजे जाते थे। किन्तु अरबी लोगों के समय में इन यूरोपियनों को इधर आने की एकदम मनादी हो गई। मिसर देश भी मुसलमानों के अधिकार में चला गया, इसलिये अलेक-ज़ेंड्रिया बन्दर में यूनानी आदि यूरोपियनों का प्रवेश नहीं होने पाता था और न उन्हें पूर्व की ओर का माल मिल सकता था। इसलिये कास्पियन समुद्र तक चीन के उत्तर के मार्ग से माल जाने का रास्ता अधिक प्रचलित हुआ। तथापि यह रास्ता कठिन और दूरी का होने के कारण बहुत थोड़ा और क़ीमती माल ही उधर से जा सकता था। उधर से वह माल काला समुद्र होकर कांस्टेंटिनोपल में जा उतरता था।

इस प्रकार मुसलमानों के द्वारा ईसाइ राज्य यूरोप में ही रोक रक्खे गये। इस का परिणाम बुरा हुआ।

मुसलमानों ने भूमध्य समुद्र में पर्यटन कर आफ्रिका का उत्तरी किनारा अपने अधिकार में कर लिया; पश्चिम की ओर यूरोप के स्पेन और पोर्टगाल देश भी उन्होंने हस्तगत किये। यूरोप के पूर्व सिसली द्वीप तक वे पहुँचे। यद्यपि यह बात सच है कि इस सारी हलचल का मुख्य कारण धर्म-द्वेष और राज्य-तृष्णा थी, तथापि इसकी जड़ व्यापार का फ़ायदा ही था। इस व्यापार के ही द्वारा धनवान होकर वे लड़ने में तैयार हुए थे। अवश्य ही यूरोप के देशों के लिये यह बात सहन करने योग्य नहीं थी। इसलिये उन सबों ने सलाह कर मुसलमानों से युद्ध किया। इन युद्धों को क्रूज़ेड्स् अर्थात धर्मयुद्ध कहते हैं। ये युद्ध सन् १०९५ से १२७२ ई० तक हुए। इस अवसर में सात बड़े बड़े युद्ध हुए, किन्तु अन्त में मुसलमान ही विजयी हुए। ईसाइ राष्ट्रों का विचार था कि पूर्व की ओर व्यापार के जो मुख्य अड्डे एशिया के पश्चिमी भाग अर्थात् सीरिया आदि में हैं उन्हें हस्तगत कर लें। इस प्रकार वे पर्याय से चाहते थे कि संसार का व्यापार हमारे हाथ में रहे। इन युद्धों से वह अभिप्राय सिद्ध नहीं हुआ। किन्तु इतना लाभ अवश्य हुआ कि ईसाइ राष्ट्रों को पूर्व के रीति रिवाज़, पैदावार और

व्यापारी माल की प्रत्यक्ष जानकारी और पहचान हो गई। इतना होने पर भी जबतक कांस्टेंटिनोपल मुसलमानों के हाथ नहीं आया तबतक उत्तर के रास्ते से बहुत सा व्यापार यूरोप के साथ होता रहा। यदि किसी को यह देखना हो कि धर्म-प्रचार के समान कोई भारी काम जब लोग अपने हाथ में लेते हैं तब उसके साथ ही पैसे की किफ़ायत का भीतरी उद्देश कैसा रहता है तो उनके लिये इन धर्मयुद्धों का उदाहरण बहुत बढ़िया है। मक्के को जो यात्री जाते थे वे भी व्यापार करते थे। ईसाइ मुसलमानों के धर्मयुद्ध में पहले आरम्भ में ईसाइयों को बड़ी सफलता प्राप्त हुई। क़रीब दो सौ वर्ष तक जेरूसलेम उनके अधिकार में था; और कांस्टेंटिनोपल भी पचास वर्ष तक अधिकार में था। इस बीच में राष्ट्रों के व्यवहार, उलटफेर और सम्पत्ति की उत्पत्ति का मूल कारण देखने का उन्हें बहुत मौक़ा मिला। अँटिओक, टायर, आदि तरक्की पाये हुए शहर उनके हाथ आगये। वहां के धनवान व लखपती व्यापारी उन्हें दिखाई पड़े। पूर्व की ओर के ऊँचे माल के अड्डों और बाज़ारों को देखकर उनकी धन-तृष्णा और भी प्रदीप्त हुई। कितने ही ईसाइयों ने उस तृष्णा के अनुसार अपना उद्देश भी सिद्ध कर लिया, क्योंकि जो

फ़ौजें दो सौ वर्ष तक इन युद्धों में लड़ती थीं उनके साथ दल्लाल, व्यापारी आदि लोग देश देखने, व्यापार करने अथवा अनुभव और ज्ञान प्राप्त करने के लिये बहुत आया जाया करते थे। ऐसे लोगों को युद्ध से कोई गरज़ नहीं थी, व्यापार करना और पैसे पैदा करना ही उनका मुख्य उद्देश था॥

दूसरा प्रकरण ।

यूरोपियनों की पहली खटपट ।

१—इटली के प्रजातन्त्र राज्य ।

ग्यारहवीं सदी से पन्द्रहवीं सदी तक इटली में कई नगर तरक्की पा चुके थे। उनकी राज्यरचना प्रजातन्त्र होने के तथा व्यापार के कारण रुपये पैसे के देन लेन से दो चार सौ वर्ष तक उन्हें अच्छा महत्व प्राप्त रहा। इन नगरों में जिनोआ, फ्लॉरेंस और वेनिस मुख्य थे। इटली के दक्षिण किनारे पर आमलफ़ी (Amalphi) नाम का शहर है, वही सब से पहले प्रसिद्ध हुआ। वहां बड़े बड़े व्यापारी जहाज़ थे, और वे माल लादने के लिये मिसर आदि देशों को जाया करते थे। भूमध्य समुद्र में जो व्यापारी जहाज़ घूमते थे उनके व्यवहार

के नियम सबसे पहले आमल्फ़ी के विद्वान् पण्डितों ने बना दिये। इन नियमों का आरम्भ सन् १०१० ई० में हुआ। किन्तु सन् १२०० ई० के लगभग जिनोआ और पीसा नगरों ने आमल्फ़ी की सत्ता को नष्ट करदिया।

दूसरा तरक़्क़ी पाया हुआ शहर पीसा था। अठवीं सदी में मुसलमानों ने सार्डिनिया का द्वीप जीता तब वहां के व्यापारियों ने पीसा में जाकर अपनी बस्ती जमाई। इसके बाद ये व्यापारी स्पेन, आफ्रिका, और एशिया में व्यापार कर ज़बरदस्त बन गये। ईसाइ मुसलमानों के धर्मयुद्ध में शामिल होकर पीसा के व्यापारियों ने अपनी व्यापार-सम्पत्ति खूब बढ़ाई। किन्तु सन् १२८४ से सन् १४०६ ई० के भीतर जिनोआ और फ्लारेंस ने मिलकर पीसा का नाश किया।

तीसरा तरक़्क़ी वाला शहर फ्लारेंस था। यह शहर सन् १२५४ ई० के लगभग व्यापारियों के द्वारा बहुत ही प्रसिद्ध होगया। यहां के जुलाहे और सुनार बहुत ही प्रसिद्ध थे। सन् १४३४ ई० में मेडिसाय नामक घराने के हाथ में फ्लारेंस का राज्याधिकार गया, तबसे वह शहर भी प्रसिद्ध होगया। इस घराने का आदि पुरुष गिओवन्नी (Giovanni) बहुत ही धनवान साहूकार

था। उसके पुत्र कास्मो ने भी बड़ी नामवरी पैदा की। फ्लारेंस के राज्यकारबार में इसका बड़ा प्रभाव था। कास्मो का लड़का लोरेंज़ो (सन् १४४८-९२) भी बहुत प्रसिद्ध हुआ। विद्वत्ता, उद्योग, उदारता आदि सब गुणों के कारण उसका नाम यूरोप में अजर अमर होगया है। इस व्यापारी ने अच्छे अच्छे ग्रंथकार, नामी कवि और कारीगरों का अच्छा संग्रह किया था। उसका एक लड़का आगे दशवां लिओ नाम का पोप हुआ (सन् १५१३)। पोप सातवां क्लेमेंट भी इसी घराने का था (सन् १५२३)। आगे कितने ही वर्षों तक फ्लारेंस का राज्यकारबार इसी घराने के द्वारा चलता रहा। उदारता और धर्म के कामों में फ्लारेंस के व्यापारियों की बराबरी बड़े बड़े राजा भी नहीं कर सकते थे।

इस प्रकार फ्लारेंस की भी तरक्क़ी व्यापार के ही कारण हुई। यह व्यापार विशेष कर रुपये के लेन देन का था। इसके सिवाय रेशमी आदि बढ़िया कपड़ों का भी वहां व्यवसाय होता था। फ्लारेंस शहर इटली के मध्य भाग में है, उसके पास समुद्र किनारा नहीं है। इसलिये जहाज़ों के द्वारा जो दूसरे देशों का माल आता था उसके लाने लेजाने का काम फ्लारेंस

के हाथों में नहीं आया। किन्तु कलाकौशल की वृद्धि वहां खूब हुई। सारे यूरोप के रुपये पैसों का लेन देन फ्लारेंस शहर में होता था। कितने ही राज्यों की वसूली फ्लारेंस के व्यापारी जमा कर देते थे। जैसे हमारे यहां भिन्न भिन्न व्यवसाय वालों की भिन्न भिन्न जातियां हैं उसी तरह फ्लारेंस शहर में और उस समय के कई यूरोपियन राष्ट्रों में भी प्रत्येक व्यवसाय की जाति अर्थात् समुदाय थे। प्रत्येक समुदाय के निश्चित नियम थे, इसलिये एक व्यवसाय में दूसरे समुदाय वालों का प्रवेश नहीं हो सकता था। इन समुदायों के कारण हर एक हुनर बहुत अच्छी दशा को पहुँच गया, और उन्हें परकीय लोगों की प्रतिद्वन्द्विता सहन नहीं करनी पड़ती थी। सुप्रसिद्ध कवि डांटी जाति का वैद्य था। फ्रांस के समान ऊन और रेशम के कपड़े बुनने वाले जुलाहे तथा सुनार और जौहरी लोगों की बराबरी के कारीगर और कहीं नहीं थे। उनका तैयार किया हुआ माल फ्लारेंस से तमाम यूरोप को मिलता था। तथापि फ्लारेंस का मुख्य व्यापार देन लेन का था। यूरोप के सब राजाओं को फ्लारेंस के व्यापारियों से क़र्ज़ मिलता था। इङ्गलैण्ड के तीसरे एडवर्ड राजा ने फ्रांस से युद्ध छेड़ दिया; उसके ख़र्च के लिये

राजा ने फ्लारेंस से क़र्ज़ लिया। फ्लारेंस में बार्डी नामका एक व्यापारी था। उस एक व्यापारी से ही राजा एडवर्ड ने तीस लाख रुपये का क़र्ज़ लिया था। इसी तरह एक दूसरे व्यापारी से भी २० लाख रुपये लिये थे। बार्डी का क़र्ज़ राजा एडवर्ड ने नहीं चुकाया, इसलिये उसका दिवाला निकल गया। इस दिवाले में उसे पाँच लाख का घाटा सहना पड़ा (सन् १३४५)। व्यापार के साथही फ्लारेंस में विद्या और कला की भी उन्नति हुई। इससे वहां बड़े बड़े नामवर कवि, ग्रंथ-कार और मूर्तिकारों का उदय हुआ। इसके बाद पीसा बन्दर फ्लारेंस के हाथ आया इसलिये कुछ दिनों तक समुद्र का व्यापार भी फ्लारेंस के अधिकार में रहा।

इसी तरह वेनिस का नाम भी प्रसिद्ध था। इटली देश पर उत्तर की ओर के जङ्गली लोगों ने चढ़ाई की; उस समय पूर्वी किनारे के कितने ही लोग अपने अपने घर द्वार छोड़ कर आड्रियाटिक समुद्र के छोर पर के द्वीपों में जाबसे। वहां पर क़रीब सत्रह ऊसर और उजाड़ द्वीप थे, उन्हीं में उन लोगों ने अपनी बस्ती बसाई। इस जगह पर नमक और मछली का व्यापार उन लोगों ने आरम्भ किया। इस व्यापार से वे इतने धन-वान हो गये कि सात आठ सौ वर्ष तक वेनिस के

समान धनवान और शक्तिमान शहर यूरोप में दूसरा नहीं था। यह शहर अनेक द्वीपों पर बसा होने के कारण वहां रास्तों के बदले नावों पर घूमने की नहरें हैं। वहां का सब व्यवहार नावों के द्वारा चलता है। इन नावों को गोंडोला कहते हैं। उस समय लोग खानियों से निकलने वाले नमक को नहीं जानते थे। उपवास के दिन ईसाइ लोग मछली के सिवाय और कुछ नहीं खाते थे। इसी तरह जाड़े के दिनों में अन्य जानवरों का मांस मिलना उन्हें कठिन पड़ता था, इसलिये मछलियों की बहुत ही बिक्री होती थी। इस प्रकार नमक और मछली के व्यापार से वेनिस नगर का व्यापार चमक उठा। धीरे धीरे इन चीज़ों की खपत यूरोप के सभी देशों में होने लगी। सन् ६९७ ई० में वेनिस में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हुआ। राज्य चलाने वाली सभा का जो सभापति होता था उसे डोज (Doge) कहते थे। इन डोजों का महल, उनका दीवानख़ाना, न्यायालय, मीनार, रिआल्टो नामक लेन देन का बाज़ार, पुतलियों के तथा मूर्ति और कांच की चीज़ों के कारख़ाने व प्रदर्शिनी इत्यादि वेनिस के दृश्य देख कर अब भी मन आश्चर्य-चकित हो जाता है।

वेनिस की इस तरक़्क़ी का मुख्य कारण उसका समुद्री

व्यापार था। वेनिस की सरकार ने मिसर, सीरिया आदि पूर्व के देशों से मुहब्बत पैदा की, और पूर्व से यूरोप को जाने वाले माल के लाने जाने का मामला अपने हाथ में कर लिया। इसलिये वेनिस दक्षिण यूरोप का मुख्य स्थान हो गया। उस समय नौकाशास्त्र में वेनिस ने अच्छी तरक्की की थी। व्यापारी जहाज़ों में जलडाकुओं का बड़ा उपद्रव होता था; उसे बन्द करने के लिये वेनिस की सरकार ने एक ज़बरदस्त जङ्गी जहाज़ों का बेड़ा तैयार किया। सारे भूमध्य समुद्र में उस बेड़े का बड़ा रोब जमा हुआ था। चौदहवीं सदी में वेनिस के छोटे बड़े जहाज़ों की संख्या तीन हज़ार थी। इन में से प्रत्येक का वज़न १० टन से १०० टन तक था। इनके सिवाय ४० और भी बड़े जङ्गी जहाज़ थे जिनमें ११ हज़ार फ़ौज तैयार रहती थी। बारहवीं और तेहरवीं सदी में ईसाइ और मुसलमानों में जेरुसलेम के झगड़े के कारण धर्मयुद्ध हुए। इन युद्धों से वेनिस को बड़ा फ़ायदा हुआ। यूरोप से फौज़ें लाकर एशिया में पहुँचाने का काम वेनिस ने लिया। इस लाने लेजाने के काम में उसे ख़ासा रुपया मिला, और व्यापार की वृद्धि हुई वह अलग ही। पूर्व के व्यापार का मुख्य नाका कांस्टेंटिनोपल (कुस्तुन्तुनियां) था।

वह वेनिस के अधिकार में आगया। कांन्स्टंटाइन बादशाह के ज़माने से इस शहर में अपार सम्पत्ति का संचय हुआ था। संसार की बढ़िया बढ़िया चीज़ें वहां इकट्ठी हुई थीं। वेनिस के लोग वे सब चीज़ें अपने शहर में ले गये।

पन्द्रहवीं सदी के आरम्भ में वेनिस की उन्नति की परमावधि हो गई। उस समय वेनिस में कम से कम एक हज़ार ऐसे साहूकार थे जिनकी सालाना आमदनी बीस हज़ार रुपये साल से सवालाख रुपये साल तक की थी। शहर की मनुष्य संख्या दो लाख थी और फ्लारेंस के समान लेन देन का व्यापार भी ज़ोर शोर से चलता था। सब देश के जहाज़ और सब देश के लोग वेनिस में दिखाई पड़ते थे। यूरोप में होटलों की पद्धति पहले वेनिस में ही आरम्भ हुई थी। सबसे पहला होटल वहां सन् १३१९ और १३२४ ई० में स्थापित हुआ था।

वेनिस ही के समान जिनोआ शहर भी व्यापार के कारण उन्नत हुआ। यह बड़ा बन्दर इटली के वायव्य कोने में है। ईसाइ मुसलमानों के धर्मयुद्ध में जिनोआ बड़े फ़ायदे में रहा, जिससे उसकी अधिक तरक्की हुई। इसके बाद वेनिस और जिनोआ में लागडांट

पड़ गई, और युद्ध भी छिड़ गया। इस युद्ध में दोनों काही नाश हुआ। सन् १३७० ई० में जिनोआ ने वेनिस को बहुत करके जीत लिया था। वेनिस के व्यापार के अड्डे भिन्न भिन्न स्थानों में थे, उन्हीं के पास जिनोआ ने अपनी कोठियां क़ायम कीं। इससे वेनिस का बड़ा नुक़सान होने लगा। अन्त में यूरोप से हिन्दुस्थान आने का समुद्र-मार्ग वास्कोडिगामा ने ढूँढ़ निकाला, किन्तु सन् १५१७ ई० में मिसर देश मुसलमानों के हाथ गया इससे वेनिस और जिनोआ दोनों का साथ ही सर्वनाश हो गया।

इटली के मिलान नामक स्थान में भी कुछ दिनों तक प्रजातन्त्र राज्य था। परन्तु इस पुस्तक से उस नगर का विशेष सम्बन्ध नहीं॥

२—मुसलमान ईसाइयों के धर्मयुद्ध।

ईसाइ और मुसलमानों के धर्मयुद्धों का एशिया और यूरोप के व्यापार पर क्या परिणाम हुआ इस बात को दिखाने के लिये यहां पर इटली के नगर और राज्यों का वर्णन देना पड़ा। इन धर्मयुद्धों से यह बात साफ़ मालूम होती है कि किसी युद्ध का ऊपरी कारण एक रहता था किन्तु भिन्न भिन्न पक्षों के भीतरी कारण दूसरे ही रहते थे। एशिया के पश्चिमी भाग में

पालेस्टाइन प्रान्त में जेरुसलेम शहर है। यही जेरुसलेम ईसामसीह का चरित्र-स्थल है, इसलिये उसे ईसाइ लोग पवित्र स्थान, तीर्थ, मानते हैं। वह स्थान मुसलमानों के अधिकार में चले जाने से वहां की यात्रा करने वाले ईसाइयों को तकलीफ़ होने लगी। पीटर नामक फ्रांस देश का एक साधु जेरुसलेम में आया था। अपने धर्म-बन्धुओं की दुर्दशा देखकर उसका अन्तःकरण खलबला उठा। वहां से लौटकर वह सम्पूर्ण ईसाइ राज्यों के दरबारों में होता गया। सब दरबारों से उसने मुसलमानों से ईसाइ यात्रियों की रक्षा करने की प्रार्थना की। इस बात से उत्तेजित होकर ईसाइ राष्ट्रों ने एशिया में जाकर जेरुसलेम पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया। इस काम में ईसाइ राष्ट्रों ने इटली के ऊपर लिखे हुए समुद्री विद्या में निपुण राज्यों की मदद ली। यह निश्चित हुआ कि सब ईसाइ राज्यों की फ़ौजें कुस्तुन्तुनियां में जमा हों और वहां से जेरुसलेम में एकदम हमला करें। इस काम में जहाज़ों की बड़ी ज़रूरत थी; किन्तु आवश्यकतानुसार जहाज़ वेनिस और जिनोआ के ही पास थे। इन जहाज़ों की सहायता के बिना इतनी फ़ौज, गोलाबारूद और रसद वग़ैरह पहुँचने की सम्भावना नहीं थी। इसलिये पहले

सब राजाओं ने इटली के इन राज्यों से मित्रता कर सहायता ली। व्यापार बढ़ाने की आशा से ही उक्त राज्यों ने मदद देनी स्वीकार की। स्पेन के पहले दो सौ वर्ष तक नौका चलाने की विद्या में ये राष्ट्र अग्रगण्य थे। धर्मयुद्ध में जानेवाली फ़ौज को इन राष्ट्रों ने आड्रियाटिक समुद्र से उधर डालमेशिया के किनारे लाकर पहुँचाया। वहां से आगे वे फ़ौजें किनारे किनारें ज़मीन से जाती थीं और वे जहाज़ सब सामान लेकर मदद करने के लिए उनके साथ साथ समुद्र से चलते थे। साथ ही इस प्रवास में जहां जहां बन्दर पड़ते वहां वहां वे अपना व्यापार भी करते जाते थे। इस प्रकार उनका दुहरा फ़ायदा होता था। यदि ये फ़ौजें कोई स्थान जीत कर अधिकृत करतीं तो जहाज़ की मदद करने वाले राज्यों को उसमें कुछ सुविधा का हिस्सा मिलता था। इस सुविधादान के नियम पहले ही तय हो गये थे। इन इटालियन व्यायापारियों की शर्तें कुछ कुछ इस स्वरूप की थीं कि जीते हुए स्थान में वे स्वतन्त्रता से व्यापार करने पावें; उनके व्यापार पर महसूल बिलकुल माफ़ रहे अथवा बहुत कम रहे; कुछ शहरों के आस पास की जगहों अथवा शहर के कुछ बाज़ारों की लूट उन्हें मिले और उनकी सीमा में

रहने वाले किसी भी मनुष्य का न्याय दूसरे लोग न करें बल्कि उन्हीं के नियत किये हुए बोर्ड से न्याय हो,—इत्यादि। इन शर्तों के कारण वे बहुत धनवान हो गये। उन्होंने अपना व्यापार खूब बढ़ाया, और पूर्व की नई नई वस्तुएं यूरोप के बाज़ारों में बेचने के लिये लेगये जिससे ऐसी वस्तुओं के ख़रीदने की ओर उधर के लोगों की अभिरुचि बढ़ी।

चौथे धर्मयुद्ध में वेनिस और जिनोआ को बहुत ही लाभ हुआ। मुसलमानों से लड़ना छोड़ कर सब ईसाई राष्ट्रों ने पहले मिलकर कांस्टेंटिनोपल की ईसाई यूनानी राजधानी डुबो दी, और वहां लाटिन घराने की स्थापना की (सन् १२०४ ई०)। यह नया राज्यघराना ५७ वर्षों तक टिका रहा। इसके बाद १२६१ ई० में फिर ग्रीक घराने की स्थापना हुई। इन दोनों ही उलट फेरों में इटालियन राज्यों को बहुत लाभ हुआ। पहले युद्ध में उन्होंने कांस्टेंटिनोपल शहर लूटा, और उस राज्य के चार हिस्से कर एक भाग नये राजा को दिया, और तीन हिस्से सबने आपस में बाँट लिये। उसमें वेनिस के लोगों ने जो हिस्सा पसन्द किया था वह व्यापार के लिये बहुत ही सुविधाजनक था। जिस पिलापोनेसस में रेशम उत्पन्न होता था वह तथा

पूर्वद्वीपसमूह में के कई उपजाऊ और विस्तीर्ण द्वीप वेनिस ने अपने हिस्से में लिये, और आड्रियाटिक समुद्र से कांस्टेंटिनोपल तक के सम्पूर्ण किनारे पर अपने व्यापारी फ़ौजी थाने अर्थात् अड्डे क़ायम किये। कितने ही वेनिस के व्यापारी कुस्तुन्तुनियां में ही आकर बस गये, और वहां का सब व्यापार उन्होंने अपने हाथ में कर लिया। अन्य राजाओं की दृष्टि व्यापार की ओर नहीं थी; इसलिये वेनिस वालों की चालबाज़ी अच्छी तरह चल गई। पहले वेनिस के व्यापारियों ने सम्पूर्ण रेशम का ठेका अपने हाथों में कर लिया। रेशमी कपड़ों की कारीगरी उन्होंने अच्छी तरह सीखी, और अन्त में अपने राज्य में नये क़ायदे और उद्योग आरम्भ कर रेशम की खेती आरम्भ की। ये प्रयत्न इतने सफल हुए कि इससे कई सौ वर्षों तक वेनिस का रेशम बहुत उत्तम समझा जाता था। पहले यह बात लिखी ही गई है कि चीन और हिन्दुस्थान का बहुत सा माल उत्तर के रास्ते से काला समुद्र होकर बिक्री के लिये कुस्तुन्तुनियां में आता था। उस शहर में भी वेनिस वालों की व्यापारी तूती बोलती रहने के कारण अलेकज़ेण्ड्रिया की अपेक्षा यहां उनका व्यापार बहुत तेज़ी से बढ़ गया और वे बहुत ही धनवान हो गये।

सत्तावन वर्ष के लाटिन-शासन में ऐसी हालत हुई, किन्तु इसके बाद फिर से यूनानी घराना आगे बढ़ा, और इस कार्य में मुख्य सहायता जिनोआ की थी। जिनोआ और वेनिस के बीच में शत्रुता थी, इसलिये वेनिस की तरक्की जिनोआ की आँखों में खटकने लगी। यद्यपि जिनोआवालों की यूनानी ईसाइयों से भी पुश्तैनी दुश्मनी थी तथापि वेनिस को नष्ट करने के लिये जिनोआ ने पोप की आज्ञा की भी परवाह न कर यूनानी राजाओं की सहायता की। जब यूनानी राजाओं को कुस्तुन्तुनियां की गद्दी मिल गई तब जिनोआ के इस उपकार का स्मरण कर कुस्तुन्तुनियां के पास का पेरा नामक स्थान सदा के लिये उन्होंने जिनोआ को समर्पित कर दिया। जिनोआ के लोगों ने इस जगह पर नाकेबन्दी करके व्यापार के मुख्य नाके अपने कब्ज़े में करलिये जिससे सम्पूर्ण काला समुद्र उनकी सत्ता के अधीन हो गया। उस समुद्र का क्रीमिया प्रायद्वीप उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया और वहां का काफ़ा नामक स्थान खूब दृढ़ बना लिया। काफ़ा व्यापार का एक मुख्य नाका था। इस प्रकार के उद्योग से जिनोआ की व्यापारी और सामुद्रिक सत्ता सारे यूरोप में पहले नम्बर की हो गई, और यदि

उनका राज्य-कारबार चतुराई के साथ चलाया गया होता तो इस ऐश्वर्य को वे बहुत दिनों तक भोग सके होते। किन्तु वेनिस की राज्य-पद्धति जैसी विचार-पूर्ण और चतुराई की थी वैसी जिनोआ की नहीं थी। वेनिस अपनी एक पद्धति को मज़बूती के साथ पकड़ता और उसे कभी छोड़ता नहीं था, परन्तु जिनोआ नित्य गिरगिट कैसे रङ्ग बदला करता था। तोभी जबतक ग्रीक बादशाह से जिनोआवालों का मेल था तबतक वेनिस के व्यापारी कुस्तुन्तुनियां में अधिक फेरा नहीं लगाते थे; वे अधिकतर अलेकज़ेण्ड्रिया की ओर जाते थे। जब मिसर देश में अरबवालों का राज्य अच्छी तरह नियम तथा पद्धति के साथ स्थापित हो गया तब वेनिसवालों ने अरबवालों से मित्रता रख कर अलेकज़ेण्ड्रिया बन्दर का सारा व्यापार अपने कब्ज़े में रक्खा। परन्तु मुसलमान लोगों से खुल्लम-खुल्ला मित्रता रखना ईसाइ राष्ट्र के लिये ठीक नहीं था, अतएव लोगों की इस समझ पर पर्दा डालने के लिये वेनिसवालों ने पोप से इस बात की आज्ञा ले ली कि यह बात धर्म के विरुद्ध नहीं है। यही नहीं, बल्कि अलेकज़ेण्ड्रिया और डमास्कस में अपने दो प्रतिनिधि व्यापार की रुख पर देख रेख रखने के लिये

वेनिसवालों ने व्यवस्था कर दी। ऐसा करने से मुसल-मानों के प्रति ईसाइयों का जो द्वेष भाव था वह ज़रा कम हुआ, और इन दो विधर्मी लोगों का मेल कुछ दिनों तक टिका रहा।

इस समय यूरोप के राष्ट्रों की भीतरी दशा भी वेनिस के व्यापार के अनुकूल थी। इङ्गलैण्ड में फूट फैली हुई थी और आपस का युद्ध हो रहा था। इसलिये वहां के लोगों का ध्यान व्यापार की ओर नहीं लगा था। फ्रांस में भी बहुत ही अव्यवस्था थी। स्पेन देश थोड़े ही दिनों से मुसलमानों के पंजे से छूटने लगा था और उसके सब अवयव इकट्ठे नहीं हुए थे। पोर्तगीज़ खलासी भी उस समय तक सो रहे थे। इसलिये अकेले वेनिस की ही प्रबलता थी। दक्षिण यूरोप की सत्ता वेनिस के अधिकार में थी और उत्तर यूरोप के हंस-संघ से वेनिस की मित्रता थी। इसलिये यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि प्रायः सारे यूरोप के बनाव बिगाड़ का मामला अकेले वेनिस के हाथ में था। वेनिस के व्यापारी अपने पास का नक़द रुपया कभी ख़र्च नहीं करते थे। सब तरह की धातु, लकड़ी, काँच आदि जो माल मिसर में खपता था उसे वे व्यापारी बाहर भेजते, और उसके बदले हिन्दुस्थान और एशिया

का माल अलेकज़ेण्ड्रिया आलेप्पो, बेरूट, डमास्कस आदि स्थानों में ख़रीद कर उसे यूरोप को ले जाते थे। इससे उनके देश का नक़दी रुपया और सोना चाँदी कभी भी बाहर नहीं जाता था। वेनिस-राज्य के अधिकांश क़ायदे इस व्यापार के उद्देश से बनाये गये थे। व्यापार-विभाग राज्य का मुख्य अङ्ग था। जहाज़ों के घूमने और माल लाने ले जाने के विषय में बहुत कड़े क़ायदे थे। इसके सिवाय अपने निज के व्यापार में साहस अथवा कुशलता दिखाने वाले को सरकार से अच्छी सहायता और पुरस्कार मिलता था। इस व्यापार से वेनिस और दूसरे शहर बहुत धनवान हो गये थे। वेनिस के सिवाय आज भी किसी दूसरे स्थान में यथार्थ में यह तत्व नहीं दिखाई पड़ता कि व्यापार ही धन-सम्पन्नता का मुख्य और उत्तम मार्ग है। वेनिस के ही कारण उत्तर के हंस-संघ की महिमा बढ़ गई। ब्रुजीस शहर के व्यापारियों के पहनाव ओढ़ाव, उनके बड़े बड़े महल और ऐश आराम की चीज़ें देख कर राजा लोगों को भी ईर्षा उत्पन्न होती थी। ब्रुजीस का सा वैभव एंटवर्प शहर को भी शीघ्र ही प्राप्त हुआ। जर्मनी में ऑक्सबर्ग के व्यापारियों की बड़ी इज़्ज़त थी। आगे हंस-संघ की जो हक़ीक़त

दी जाती है उससे व्यापार का यह परिणाम अच्छी तरह मालूम होगा ॥

३--हंस-संघ (Hanseatic League) ।

इधर दक्षिण यूरोप में इटली के स्वतन्त्र राज्यों का व्यापार चल रहा था और उधर उत्तर यूरोप में 'हंस-संघ' नाम की एक व्यापारी संस्था थी। उसका हाल जानने के लायक़ है। डेनमार्क, स्वीडन, नार्वे आदि देशों के बहुत से लोग जर्मन समुद्र और बालटिक समुद्र में जल-डँकैती का धंधा कर व्यापारियों को बहुत सताते थे। इन डाकुओं का बन्दोबस्त करने के लिये इस संघ की उत्पत्ति हुई थी। नौमी सदी के लगभग यूरोप के उत्तरी किनारे के शहरों ने अपने व्यापारियों का एक संघ (समुदाय) बनाया। इस संघ के अलावा सन् ११६९ ई० के लगभग हमबर्ग और लूबेक शहरों ने आपस में सन्धि करके अपने व्यापार की रक्षा करने का निश्चय किया। इसके बाद इस सन्धि में धीरे धीरे अनेक शहर शामिल हुए। कोलोन नगर समुद्र के किनारे नहीं किन्तु ह्राइन नदी के किनारे है। उक्त संघ में इस शहर के भी शामिल

होने से उत्तर के व्यापारी संघ का ह्राइन नदी के द्वारा दक्षिण यूरोप में भी प्रवेश हुआ। सन् १३०० ई० तक इस संघ में उत्तर की ओर के ७० शहर शामिल हो चुके थे। संघ का मुख्य शहर लूबेक था। इस संघ की सभाएं बार बार हुआ करती थीं; और उसमें जो प्रस्ताव और नियम पास होते थे उन्हें सबको पालना पड़ता था। पहले केवल अपनी रक्षा करना ही संघ का उद्देश था, परन्तु धीरे धीरे व्यापार की वृद्धि करने की कल्पना भी उसमें शामिल की गई, इसलिये संघ की बहुत उन्नति हुई। कितनी ही वस्तुओं का व्यापार पूर्ण रूप से उसके अधिकार में था, तथा उन वस्तुओं का व्यापार कोई दूसरा नहीं करने पाता था। यह संघ जल के डाकुओं को परास्त कर नष्ट करता, खुश्की के लुटेरों का बन्दोबस्त करता और व्यवस्था के साथ व्यवहार-निश्चित नियमों का अच्छी तरह पालन करता था, इसलिये संघ के कारण यूरोप का बहुत सुधार हुआ। धन बढ़ने से ऐश आराम के नये २ ढङ्ग, और नये २ पदार्थों की सृष्टि हुई। बड़ी बड़ी सुन्दर इमारतें बनाई गईं। सुन्दरता और दिखावट की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। इस प्रकार देश का उद्योग बढ़ा। स्वीडन और पोलेण्ड के जङ्गलों

को तोड़ कर वहां सुन्दर खेत तैयार किये गये। खानियों का उद्योग भी आरम्भ हुआ। इसी तरह दक्षिण यूरोप और उत्तर यूरोप में व्यापार का अदल बदल अथवा बदलौवल (विनिमय) आरम्भ हुआ जिससे लोगों को बहुत फ़ायदा पहुँचा। उत्तर की ओर से भेड़िये और रीछ के चमड़े दक्षिण की ओर भेजे जाने लगे, और उनके बदले दक्षिण का रेशमी और सूती कपड़ा उत्तर की ओर जाने लगा। इससे बड़े बड़े राजाओं से टक्कर करने की ताक़त इस संघ में उत्पन्न हो गई। कुछ समय में इस संघ की कोठियां सारे यूरोप में फैल गईं। लन्दन में भी इसकी एक बड़ी कोठी थी। इस संघ के कारण यूरोपियन राष्ट्रों का सुधार हुआ, और उनकी उन्नति भी हुई। इसके पहले यूरोपियन राष्ट्र अज्ञान और जङ्गली स्थिति में पड़े हुए थे। किन्तु यूरोपियन राष्ट्रों की उन्नति होने पर संघ की शक्ति क्षीण हो गई। हम लोगों को इस हक़ीक़त से उपदेश ग्रहण करना चाहिये कि संघ-शक्ति का कैसा नतीजा होता है, और व्यापार में उसका महत्व कितना भारी है।

मेरीनो सैन्यूडो नामक वेनिस के एक सज्जन ने इस बात का वर्णन किया है कि चौदहवीं सदी के आरम्भ में व्यापार की कैसी स्थिति थी। उसमें वह लिखता है

रहे थे कि पूर्व का व्यापार हमारे हाथों में रहे। ऊपर जिन धर्मयुद्धों का वर्णन हुआ है उनमें तुर्कस्थान के पूर्व के राष्ट्रों से ईसाइयों को मदद मिलने की आशा थी। आठ धर्मयुद्धों में से सातवां युद्ध सन् १२४८ से १२५४ ई० तक होता रहा। उसमें फ्रांस के राजा सेण्ट लुई ने सन् १२५३ में अपने रुब्रुकी नाम के एलची को काले समुद्र के पास के राज्यों से लगाकर चीन की सीमा तक तातारी लोगों के सब राजा (खां) लोगों के पास भेजा था। इस रुब्रुकी को पूर्व की स्थिति की उपयोगी जानकारी प्राप्त हुई और उस अनुभव से यूरोप ने लाभ उठाया। परन्तु इस जानकारी के द्वारा भविष्य राष्ट्रीय उलट फेर का स्पष्टीकरण वह नहीं कर सका। इतना उसने अवश्य जान लिया कि तातारी लोगों की सत्ता बहुत ही ज़बरदस्त है। स्पेन के एलची भी तातारी लोगों के बादशाह तयमूर के पास सन् १४०२ ईस्वी में गये थे। तयमूर की प्रबलता देख कर उन एलचियों को यह मालूम होगया कि मध्य एशिया में हमारा प्रवेश न हो सकेगा।

इस प्रकार इटालियन राज्यों और हंस-संघ के द्वारा हिन्दुस्थान के व्यापार की वृद्धि होही रही थी इसी बीच में मार्को पोलो नामक वेनिस का एक बहुत ही नामी

और धनवान व्यापारी सारे एशिया में पैदल घूम कर सन् १२७१ से १२९५ तक २५ वर्ष चीन में रहा। वहां से समुद्र के रास्ते ईरान की खाड़ी से वह यूरोप को लौट गया। उसने अपने अनुभव से यूरोप के लोगों को बहुत ही लाभकारी जानकारी ला दी। मार्को पोलो सन् १२५४ ईस्वी में जन्मा था। उसके बाप और चाचा कांस्टेंटिनोपल में व्यापार करते थे। वे घर छोड़ कर १५ वर्षों तक पूर्व के देशों में घूमते रहे थे। वहां से लौटकर उन्हों ने छोटे मार्को से नाना प्रकार की आश्चर्य-जनक बातें कहीं। इसलिये मार्को पोलो को खुद पूर्व के देश देखने की उत्कण्ठा हुई। दो वर्षों के पश्चात उसका बाप और चाचा फिर प्रवास के लिये निकले। इस बार मार्को पोलो भी उनके साथ हुआ। वेनिस से जहाज़ में बैठ कर वे एशिया के किनारे एकर नामक स्थान में उतरे। वहां से ईशान और उत्तर की ओर वे दूर तक घूमते रहे। इस तरह साढ़े तीन वर्ष तक घूमते घूमते वे पेकिन के उत्तर की ओर एक बड़े राजा से जाकर मिले। उस राजा ने उन्हें बड़े आदर से अपने पास रख लिया। युवा मार्को थोड़े ही दिनों में चीनी भाषा और व्यवहार में प्रवीण हो गया। एक बार राजा ने उसे छह महिनों के प्रवास पर किसी काम के लिये भेजा।

वहां से लौट आने पर मार्को ने वहां की एक एक ख़बर राजा को कह सुनाई। इस वर्णन-पटुता से राजा उस पर बहुत प्रसन्न हुआ। इस तरह वे तीनों मुसाफिर १७ वर्षों तक चीन देश में रहे। इस बीच में मार्को ने अनेक देश देखे और वहां की जानकारी प्राप्त की। बहुत दिन बीत जाने के कारण स्वदेश आने के लिये वे बहुत उत्कण्ठित हुए, परन्तु राजा उन्हें किसी तरह छोड़ताही नहीं था। तथापि कुछ दिनों के बाद उन्हें स्वदेश के लिये रवाना होने का योग मिला। इस चीन के राजा का एक सम्बन्धी ईरान में राज्य करता था। उसकी पहली स्त्री मर गई थी इससे वह चीन देश की दूसरी स्त्री से विवाह करना चाहता था। चीन के राजा ने एक स्त्री पसन्द कर जलमार्ग से उसे ईरान भेजा, और इन तीनों पोलो सज्जनों को उसकी रक्षा के लिये भेजा। इस मुसाफ़िरी में उनके पास १४ जहाज़ थे, और हर एक जहाज़ में ढाई सौ खलासी थे। राजा ने तीनों पोलो सज्जनों को बहुत दुःख के साथ बिदा किया और बहुत से हीरा माणिक उन्हें इनाम में दिये। तीन महिने समुद्र में मुसाफ़री कर वे जावा द्वीप में पहुँचे। वहां से और भी अठारह महिनों का प्रवास कर वे ईरान आये। इस बीच में जिस राजा के लिये

वह स्त्री लाई गई थी वह मर चुका था, और उसका लड़का गद्दी पर बैठा था। अन्त में उसी ने उस स्त्री से विवाह किया। ईरान से वे तीनों पोलो सन् १२९५ ई० में वेनिस पहुँचे। प्रवास के परिश्रम से उनका चेहरा एक दम बदल गया था और पहनाव ओढ़ाव भी पूर्वी ढङ्ग का हो गया था, इसलिये उन्हें किसी ने नहीं पहचाना। उनकी भाषा भी बहुत कुछ बिगड़ गई थी। जब उन्होंने देखा कि हमें कोई नहीं पहचानता तब उन्होंने एक बड़ी भारी दावत कर बहुत से आदमियों को अपने घर बुलाया, और सब लोगों को नाना प्रकार के रत्न आदि दिखा कर और यूरोपियन पोशाक पहन कर लोगों को अपने बारे में विश्वास कराया। कुछ दिनों के बाद वेनिस और जिनोआ के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध में मार्को जङ्गी बेड़े का प्रधान अफ़सर था। इस युद्ध में मार्को पोलो को सफलता प्राप्त नहीं हुई; उसकी फ़ौज को हराकर उसे जिनोआवालों ने क़ैद कर लिया। इसी क़ैद में मार्को ने अपने पहले प्रवास का वर्णन लिखा। कुछ वर्षों के बाद वह क़ैद से छूट कर वेनिस आया और कुछ दिनों में मर गया।

मार्को पोलो के प्रवास-वर्णन से लोगों को पूर्व देशों की अच्छी जानकारी हासिल हुई, क्योंकि अपने

परिश्रम से मार्को पोलो ने जो बातें जानी थीं वे सब उसमें लिखी हुई थीं जिससे वहां वाले यह बात जान सके कि एशियाखण्ड में कौन सी चीज़ें किफ़ायत के साथ मिल सकती हैं, वे कहां और कितनी उत्पन्न होती हैं और उनका व्यापार कैसा चलता है इत्यादि। यूरोप वालों को इस वर्णन से बहुत सी उपयोगी बातें मालूम हुईं। मुसलमानों का उदय होने के पश्चात छह सात सौ वर्ष तक कोई यूरोपियन हिन्दुस्थान नहीं आया था। ऊपर कहा गया है कि कॉस्मो ने इधर की बातें छठवीं सदी में यूरोप में प्रकट की थीं। इसके बाद मार्को पोलो के प्रवास से ही इधर की बातें यूरोप वालों को मालूम हुईं। मार्को पोलो कुछ दिनों तक पश्चिमी एशियाखण्ड में व्यापार करके बुखारा गया था। उस समय यूरोपियन लोग चीन को 'क्याथे' कहते थे। व्यापारी बातें मालूम करता हुआ बुखारा के खां का एलची बनकर मार्को पोलो चीन देश के पेकिन नगर में आया, और वहां से ठेठ दक्षिण की ओर कूँच करके उसने कई स्थानों की देख भाल की। जापान, जावा, सुमात्रा और सीलोन घूमता हुआ वह हिन्दुस्थान आया। यहां पर आकर उसने विशेष कर बङ्गाल और गुजरात प्रान्तों का बारीकी के साथ निरीक्षण किया, और खम्भात

तक सारे पश्चिमी किनारे का मानो उसने दौरा कर डाला। उस समय को देखते हुए यह प्रवास बड़ी ही हिम्मत का काम था। मार्को पोलो का वर्णन पढ़ कर यूरोपियन लोगों की आँखें खुलीं और उनमें एक प्रकार की नई हलचल आरम्भ हुई॥

५—पूर्व के व्यापार की नाकेबंदी।

यद्यपि वेनिस का राज्य बहुत ही धनवान और लक्ष्मी का विहार-स्थल था तथापि वहां एक ऐसी ज़बरदस्त बात हो गई जिससे इतिहास की धारा एकदम पलट गई। पन्द्रहवीं सदी में तुर्कों ने यूरोप में प्रवेश किया और वहां अपना राज्य भी स्थापित किया। इससे यूरोप और एशिया में व्यापार के जो पुराने रास्ते थे वे बन्द हो गये।

पहले यूरोप वालों को तुर्क-मुसलमानों का परिचय नहीं था। उनका नाम सन् १२४० ई० में उन्हें मालूम हुआ। एशिया का बहुत सा पश्चिमी भाग पहले रोमन बादशाहत में शामिल था, किन्तु तुर्कों ने उसे अपने अधिकार में कर लिया। इसके बाद १३६१ ई० में उन्होंने हेड्रियन बादशाह का हेड्रियानोपल शहर

जीत लिया, और वहां अपनी राजधानी बनाकर बलगेरिया और सर्विया के प्रदेश भी अपने अधिकार में कर लिये। हेड्रियानोपल शहर यूरोप के पूर्वी कोने पर था। इसके बाद तैमूरलङ्ग और तुर्कों में लड़ाई छिड़ी, इसलिये लगभग ५० वर्ष तक तुर्क लोग यूरोप में अधिक गड़बड़ मचाने की सुविधा नहीं पा सके। किन्तु सन् १४०५ ई० में तैमूरलङ्ग मर गया, तब फिर तुर्क लोग यूरोप में हलचल मचाने लगे। वेनिस और जिनोआ में परस्पर लड़ाई होते रहने के कारण तुर्क लोग आसानी से यूरोप में घुस सके। काले समुद्र में उक्त दोनों राज्यों की व्यापारी कोठियां थीं इसलिये दोनों में खूब लाग डाँट चल रही थी। कांस्टेंटिनोपल के रोमन बादशाह को परास्त करने के लिये जिनोआ के ईसाइ राष्ट्र ने तुर्क मुसलमानों से सहायता माँगी। तुर्कों ने भी इस मौके को हाथ से जाने नहीं दिया। वे मदद के लिये आ पहुँचे, और जीती हुई बादशाहत के खुद मालिक बन बैठे। सन् १४४४ ई० में ४० हज़ार तुर्क सेना जिनोई जहाज़ से बास्फोरस का मुहाना पार कर कुस्तुंतुनियाँ में आई और १४५३ में जीत कर वहां अपना अधिकार जमाया। काले समुद्र पर काफा, सोल्डेया आदि जिनोई वासियों के अड्डे थे उन्हें भी

तुर्क सेना ने शीघ्र छीन लिया। एशियामायनर, मेसापोटेमिया, और सीरिया के देश तुर्कों के हाथ में पड़ने से उत्तर के दो मार्ग जिनके द्वारा पूर्व का व्यापार होता था वे यूरोपियन लोगों के लिये बन्द हो गये।

सन् १५२० और १५२२ ई० के बीच में तुर्क बादशाह सलीमशाह ने मिस्र देश पर अधिकार जमाया तबसे पूर्व के साथ व्यापार करने का तीसरा मार्ग जो वेनिसवालों के हाथ में था उससे भी यूरोपियन लोग हाथ धो बैठे। इस लिये कुस्तुंतुनियाँ और अलेकजेण्ड्रिया दोनों बाज़ारों से यूरोपियनों को एशिया का माल न मिलने लगा। इस लिये भूमध्य समुद्र में इटली के शाह और हंस-संघ वाले जो व्यापार करते थे वह एकदम बन्द हो गया।

इसी बीच में और भी दो बड़ी घटनाएं हुईं। वेनिस वालों को इन घटनाओं की कल्पना भी नहीं थी और यदि कल्पना होती भी तो वे लोग उन्हें रोक नहीं सकते थे। उधर कोलम्बस ने अमेरिका का शोध लगाया और इधर वास्कोडिगामा ने आफ्रिका की परिक्रमा कर दक्षिण होकर हिन्दुस्थान आने का जल-मार्ग ढूँढ़ निकाला। इन दोनों घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन यहां पर दिया जाता है।

व्यापार की सारी कुन्जी अकेले वेनिस के हाथ थी, इसलिये बहुत दिनों से दूसरे यूरोपियन राष्ट्र दिल से

उस से जल रहे थे। इसलिये विद्वान और कल्पना करने वालों का समूह इस विचार में पड़ा हुआ था कि यदि हिन्दुस्थान जाने का कोई नया मार्ग मिल जाय तो बहुत अच्छा हो। जिनोआ में क्रिस्टोफर कोलम्बस नाम का एक मनुष्य नौका-विद्या और भूगोलशास्त्र में बहुत होशियार हो गया था। उसने सोचा कि जब पृथ्वी गोल है तब मार्कोपोलो ने एशिया का जो पूर्व किनारा देखा है वह अवश्यही यूरोप के पश्चिम में कहीं समीप ही होगा। उसकी यह कल्पना तो ठीक थी, परन्तु पृथ्वी का जितना व्यास है कोलम्बस को वह उससे कम मालूम पड़ा। जिनोआ की सरकार ने उसकी इस कल्पना को न समझने से उस ओर कुछ ध्यान न दिया। परन्तु पोर्तगाल की सरकार ने उसकी इस कल्पना को समझ कर विश्वासघात के साथ उसे धोका दिया। अन्त में स्पेन की रानी ने उसकी सहायता की, और कुछ जहाज़ और बहुत सा ख़र्च देकर उसे हिन्दुस्थान ढूँढ़ने को भेजा। हिन्दुस्थान तो कोलम्बस के हाथ नहीं लगा, परन्तु अमेरिका महाद्वीप उसने ढूँढ़ निकाला। स्पेन को इस साहस का अच्छा फल मिला। अमेरिका की ज़मीन बहुत ही उपजाऊ थी और वहां सोने चाँदी की खानियां थीं, इसलिये स्पेन वाले वहां की आमदनी से

मालामाल हो गये, और सौ डेढ़ सौ वर्ष तक वेही यूरोप में सबसे श्रेष्ठ समझे जाते रहे ।

इधर पोर्तगाल राज्य से सहायता पाकर वास्कोडिगामा पूर्व की ओर रवाना हुआ, और बड़े साहस के साथ आफ्रिका महाद्वीप का दक्षिण की ओर से चक्कर लगाकर २२ मई सन् १४९८ ई० में मलबार किनारे के कालीकोट बन्दर में आ पहुँचा । लिसबन छोड़ने के १० महिने दो दिन बाद वास्कोडिगामा कालीकोट पहुँचा था । चतुर मनुष्यों ने उसी समय समझ लिया कि इस घटना से हिन्दुस्थान के व्यापार की दशा बदल जायगी जिससे एशिया और यूरोप में राज्य-क्रान्ति हुए बिना नहीं रहेगी । पोर्तगीज़ लोगों ने समझ लिया कि अब वेनिस की सारी सम्पत्ति लिसबन शहर में आ जायगी; साथ ही वेनिस वालों ने भी समझ लिया कि अब हमारा प्रभाव शीघ्र ही नष्ट हो जायगा । ईसाइयों के धर्मगुरु पोप ने इस आशय का फरमान निकाल रक्खा था कि जिस देश वाले कोई नया देश ढूँढ़ निकालें वह नया देश उसी देश वालों के (ढूँढ़नेवालों के) अधीन रहे ।

६—अमेरिका और हिन्दुस्थान की खोज का फल।

पोर्तगीज़ लोगों को हिन्दुस्थान और स्पेन वालों को अमेरिका मिलने के भिन्न २ नतीजे निकले। भूमध्य समुद्र के कुल नाके मुसलमानों के अधिकार में थे इसलिये यूरोप के व्यापारी नियमित सीमा में रुके हुए थे। केवल वेनिसवाले मुसलमानों से मेल रखकर वे जो कर माँगते थे वही देते थे, और अलेकज़ेण्ड्रिया से हिन्दुस्थान का माल लेजाकर यूरोपवालों की ज़रूरत कुछ समय तक पूरी करते रहे। इसी बीच में पोर्तगालवालों को हिन्दुस्थान आने का रास्ता मालूम होगया। इससे हिन्दुस्थान का सब तरह का माल जहाज़ों में लद कर लिसबन पहुँचने लगा, और पोर्तगीज़ लोग वही माल यूरोप वालों को देने लगे। खुश्की की अपेक्षा जलमार्ग से माल ले जाने में सस्ता पड़ता था, इसलिये वेनिस के व्यापारी पोर्तगाल वालों से बढ़ाबढ़ी में पार नहीं पाते थे। इधर यूरोपियन लोगों के लिये काफ़ी माल पोर्तगीज़ लोग हिन्दुस्थान से ले जाने लगे; इससे वेनिस का व्यापार [illegible] वेनिस के व्यापारियों की अपेक्षा पोर्[illegible]

हिन्दुस्थान का माल बहुत सस्ता बेचने लगे। मून (Munn) नामक एक अङ्गरेज़ व्यापारी ने प्राचीन व्यापार का थोड़ा वर्णन किया है। उसने एक फ़ेहरिस्त में यह बात दिखलाई है कि पहले हिन्दुस्थान से यूरोप जाने वाले माल की क़ीमत आलेप्पो में क्या पड़ती थी, और यूरोप में क्या पड़ती थी। उससे मालूम पड़ता है कि कोई चीज़ आलेप्पो में जिस दाम में मिलती थी उससे आधे दाम में वही इङ्गलैण्ड में बिकती थी, क्योंकि इङ्गलैण्ड में माल लिसबन से आता था। अर्थात् आलेप्पो और अलेकज़ेण्ड्रिया के भावों में अधिक अन्तर न होने से वेनिस के व्यापारी अलेकज़ेण्ड्रिया से जो माल लाते थे वह लिसबन के माल की अपेक्षा दूना मँहगा बिकता था। इससे उसकी बिक्री नहीं होती थी। पोर्तगाल के राजाओं ने भी व्यापार में मन लगाया और सब माल का ठेका अपने हाथ में रक्खा। उन्होंने माल की क़ीमत बहुत ही घटा दी इससे उनके माल की बिक्री बेशुमार बढ़ गई, जिससे बहुत सी नई चीज़ों की भी ज़रूरत मालूम पड़ने लगी। ख़ासकर हिन्दुस्थान के मसाले की यूरोप में बड़ी बिक्री होने लगी। पोर्तगीज़ लोगों की यह तरक़्क़ी सौ वर्ष तक अर्थात्

सोलहवीं सदी भर बनी रही। इसके बाद उनका व्यापार पहले डच लोगों ने और फिर अङ्गरेज़ों ने डुबा दिया। जिस समय पोर्तगीज़ लोग हिन्दुस्थान आये उस समय उन्हें यहां अनेक सुव्यवस्थित राज्य दिखाई पड़े। इन राज्यों के अधिकारियों और व्यापारियों की बड़ी इच्छा थी कि हमारे यहां का माल परदेश में खपे, इसलिये पोर्तगीज़ लोगों का व्यापार बहुत जल्दी चटक उठा। किन्तु स्पेन ने जो अमेरिका ढूँढ़ निकाला था उसकी हालत कुछ और ही ढङ्ग की थी। वहां का अधिकांश देश उजाड़ था, और वहां के राज्य व्यवस्थित नहीं थे। वहां की सम्पत्ति उद्भिज और खनिज पदार्थों के रूप में गुप्त थी। उसे निकालने में बड़ी मिहनत की ज़रूरत थी। इसके सिवाय वहां खाने पीने की आवश्यक वस्तुएं भी नहीं मिलती थीं। इसलिये आफ्रिका के नीग्रो लोगों को गुलाम बनाकर स्पेन वाले वहां खेती करने के लिये व खदानों में काम करने के लिए ले गये। ये नीग्रो काम करने में बड़े मज़बूत थे। एक नीग्रो चार अमेरिकनों के बराबर काम कर सकता था। इस अड़चन के कारण पोर्तगीज़ लोगों के समान पहले पहल स्पेनवालों को अमेरिका से कुछ फ़ायदा नहीं हो सका। पहले पचास वर्ष उन्हें तकलीफ़ में ही बिताने पड़े।

इसके बाद उन्हें फ़ायदा होने लगा। इसीलिये पूर्व की ओर व्यापारी कोठियां बढ़ीं और पश्चिम की ओर बस्तियां बढ़ीं। पूर्व की ओर कोठियों के ज़ोर से हिन्दुस्थान और पश्चिम की ओर बस्तियों के ज़ोर से अमेरिका अङ्गरेज़ों ने गड़प कर लिये। यह विरोध विशेष स्मरण रखने योग्य है।

पोर्तगीज़ लोगों को हिन्दुस्थान का नया रास्ता मालूम हो गया, इस बात से मुसलमानों को बहुत बुरा मालूम हुआ। इजिप्ट (मिसर) के मुसलमानों ने भी पोर्तगीज़ लोगों को शह लगाने में कोई कसर नहीं रक्खी। पोर्तगीज़ लोगों से वेनिस वाले चिढ़े हुए थे, इसलिये उन लोगों ने भी मिसर के लोगों को उभाड़ने और मदद पहुँचाने में कमी नहीं की। वेनिसवालों के अधिकार में डालमेशिया नाम का एक देश था, वहां से लकड़ी लेकर मिसर के मुसलमानों को जहाज़ बनाने की वेनिस वालों ने आज्ञा दे दी। इस प्रकार मुसलमानों के पास एक ज़बरदस्त जहाज़ी बेड़ा तैयार हो गया। परन्तु पोर्तगीज़ जङ्गी बेड़े ने उसे तहस नहस कर दिया। मिसर के बादशाह ने मुसलमानी राज्य के ईसाइयों को मार डालने की धमकी भी दी। इसके बाद मिसर, सिरिया व

पेलेस्टाइन देश कुस्तुंतुनियां के तुर्क बादशाह पहले सलीम ने जीत लिये और सारे मुसलमानों का एक राष्ट्र बना लिया। उस ने वेनिस के लोगों से सन्धि की, और उन्हें अपने मुल्क में व्यापार करने के लिये विशेष सुविधा कर दी। यही नहीं, बल्कि लिसबन से आनेवाले माल पर ज़बरदस्त कर लगा दिया। इतना होने पर भी पोर्तगाल का सिर ऊँचा ही रहा। वेनिस की सरकार ने पोर्तगाल की शरण जाकर सहायता माँगी, परन्तु पोर्तगाल ने उसकी प्रार्थना नहीं सुनी। इसलिये वेनिस का सर्व-नाश हो गया, और पोर्तगाल की खूब तरक़्क़ी हुई॥

७—पूर्वी प्रश्नों की कुञ्जी।

ऊपर के वर्णन से यह बात समझ में आगई कि हज़ारों वर्ष तक हिन्दुस्थान का माल किस प्रकार संसार भर की आवश्यकताएं पूरी करता रहा, और उस माल के कारण सभी देशवाले किस प्रकार फ़ायदा उठाते रहे। जिसके ताबे में यह व्यापार रहता था वही राष्ट्र शक्ति तथा वैभव में सब से श्रेष्ठ रहता था। इस व्यापार के लिये

संसार के सभी राष्ट्र एक समान छटपटा रहे थे। हम लोग समझते हैं कि इधर तीन सौ वर्षों के भीतर पोर्तगीज़, डच और अङ्गरेज़ आदि जाति के लोग हिन्दुस्थान के व्यापार को अपनी मुट्ठी में करने के लिये जो खटपट कर रहे थे वही विशेष महत्व की है, परन्तु यदि विचार किया जाय कि तीन हज़ार वर्षों से ऐसा ही प्रयत्न सतत जारी था और उसमें सैकड़ों राष्ट्रों का उदय और नाश हुआ तो उसके आगे इधर के तीन सौ वर्षों के प्रयत्न का विशेष महत्व नहीं रहता। हम जिस समय में रहते हैं और जिसकी एक एक घड़ी का हमें अनुभव हुआ करता है वह चाहे कितना ही अल्प क्यों न हो तौभी हमें वह बड़ा तथा विशेष महत्व का जान पड़ता है, किन्तु हमारे पहले का समय चाहे हज़ारों वर्षों का क्यों न हो तौभी उसकी ठीक ठीक कल्पना हमें नहीं होती। जबकि इस व्यापार की सम्पत्ति के सहारे पचास वर्षों में ही इङ्गलैण्ड ऐसे अनेक राष्ट्र वैभवशाली बन चुके हैं तब पिछले हज़ारों वर्ष में कितने राष्ट्रों का उदय हुआ होगा इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। इस रीति से विचार करें तो यह प्रश्न भी हल हो जाता है कि हिन्दुस्थान अन्य-देशवालों के अधिकार में कैसे गया। मुसलमानों ने मिसर, सिरिया, ग्रीक और कुस्तुंतुनियां के राष्ट्र जीत कर

पश्चिम के यूरोपियन राष्ट्रों को मानों एक बड़े अहाते में रोक दिया और उन्हें पूर्व से माल लाने के लिये कोई रास्ता ही नहीं रहने दिया। जैसे भूखा बाघ खिजिया कर जिधर से मार्ग पाता है उधर से ही निकल भागता है उसी तरह यूरोपियन राष्ट्रों की दशा हुई। यदि मुसलमान लोग लाल समुद्र और काले समुद्र के व्यापार के रास्ते यूरोपियनों के लिये खुले रखते तो कदाचित् व्यापार का क्रम पहले जैसा ही जारी रहा होता। इसी तरह इस बात की कल्पना होनी असम्भव है कि हज़ारों वर्ष तक हिन्दुस्थान का माल बाहर जाते रहने से इस देश में कितना धन इकट्ठा हुआ होगा। स्पष्ट है कि ऊपर वेनिस, फ्लॉरेंस, लिसबन आदि की धन-सम्पन्नता का जो वर्णन हुआ है वह धन हिन्दुस्थान के धन के आगे कोई चीज़ नहीं था।

यूरोप की अर्वाचीन उन्नति ऊपर कही हुई खटपट के कारण हुई है। पोर्तगाल को हिन्दुस्थान का जल-मार्ग मालूम होने से अन्य राष्ट्रों को बड़ा बुरा मालूम हुआ, इसलिये सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में उनका समुद्र में भारी झगड़ा मचा। पूर्व के राष्ट्रों पर अपनी प्रभुता जमाकर वहां के व्यापार से धनवान होने के लिये अनादिकाल से खटपट और बदाबदी बराबर

चली आरही है । हिन्दुस्थान आने का जलमार्ग मिलजाने पर खटपट और भी ज़ोर शोर से चली। पूर्व के कितने ही देश पश्चिमवालों के अधिकार में चले गये, तौभी झगड़ा नहीं मिटा । .... यही 'पूर्व का प्रश्न' है, और यही संसार के राजकीय इतिहास की जड़ है—मुख्य कुंजी है। झगड़ा और खटपट एक ही है, केवल उस में फ़रक यही है कि भिन्न २ समय में भिन्न २ पात्र उसमें दिखाई पड़ते हैं । भूल नहीं जाना चाहिये कि सारे झगड़ें की जड़ ईरान, हिन्दुस्थान, चीन आदि उपजाउ देशों की चीज़ें और कारीगरी ही है। किन्तु हम लोगों को आँखों में अञ्जन लगाकर यह देखना चाहिए कि हमारे कारण कैसे कैसे प्रयत्न लोग कर रहे हैं;............................कांस्टेंटिनोपल, केरो, कन्दहार, काबुल, पेकिन—चाहे जिस स्थान को लीजिये—सब जगह जो कार्रवाइयां हो रही हैं, और विदेशी राष्ट्रों का वहां जो उथलपथल हुआ है वह केवल व्यापार के फ़ायदे के लिये ही हुआ है। यह व्यापार हिन्दमहासागर और जल-मार्ग का है। यूरोपवालों का इस समय का प्रयत्न केवल इस उद्देश से हो रहा है कि हिन्दुस्थान, पूर्व के द्वीपकल्प, पूर्व के द्वीप-समूह तथा चीन और आफ्रिका से मसाले, सुगन्धी पदार्थ, रङ्ग, तेल, तेल के

बीज, सन, रूई औषधि, अनाज, दाल, लकड़ी तथा अन्य प्रकार के कच्चे माल बहुत सस्ते भाव में यूरोप लेजावें और उनसे अनेक प्रकार के उपयोगी पदार्थ बनाकर संसार भरमें यथासम्भव महँगे भाव में उन्हें बेचें, जिससे हमारे देशका निर्वाह अच्छी तरह चलता रहे। प्रोफ़ेसर रामसे कहते हैं कि, "यदि संसार के इतिहास का प्रवाह देखा जाय तो दिखाई पड़ेगा कि एशिया और यूरोप के घने संघट्टन से सदा एक प्रकार की ज़बरदस्त बिजली की शक्ति उत्पन्न होती रहती है, और इस बिजली की शक्ति से सारे संसार के व्यवहार को गति मिलती है। इसके समान संसार की उन्नति का इतिहास में और कोई कारण ढूँढे नहीं मिलता।" (Contemporary Review, July 1906). सर वाल्टर रेले कहते हैं: "जिसके अधिकार में समुद्र है उसी के अधिकार में व्यापार रहेगा; इसी तरह जिसके हाथ में संसार का व्यापार है उसी के अधिकार में संसार की सम्पत्ति रहेगी, एवम् खुद संसार उसके अधीन रहेगा।"*

---

*" Whosoever commands the sea, commands the trade; whosoever commands the trade, commands the riches of the world, and consequently the world itself."—RALEIGH.

तीसरा प्रकरण ।

मलबार का पुराना हाल ।

१—मलबार का महत्व ।

पहले पहल यूरोपियन लोगों का प्रवेश मलबार में हुआ। सोलहवीं सदी में पोर्तगीज़ लोगों ने अधिकांश मलबार किनारा जीत कर वहां अपना राज्य स्थापित किया। यह मलबार प्रान्त हिन्दुस्थान के अन्य भागों से एकदम अलग था। यह नहीं कि केवल सृष्टिरचना के ही कारण वह अलग रहा हो; किन्तु वहां की राज्य-व्यवस्था और लोगों के रस्म रिवाज़ भी और भागों की अपेक्षा भिन्न ढङ्ग के थे। इससे विदेशी शासन वहां स्थापित होने में देरी नहीं लगी। पोर्तगीज़ लोगों के पहलेही अरब के मुसलमान और ईसाइ आदि विदेशी लोगों ने इस विभाग को घेर रखा था। सबसे पहले इन सब बातों का और वहां की उस समय की तथा उसके पहले की अंतःस्थिति का साफ़ साफ़ वर्णन करना आवश्यक है; क्योंकि यह स्पष्ट रूप से समझे बिना इस बातकी

साफ़ मीमांसा नहीं हो सकती कि हिन्दुस्थान में यूरोपियन राज्य किस प्रकार स्थापित हुआ। इसके सिवाय मलबार के वर्णन से यह बात अच्छी तरह दिखाई पड़ेगी कि मूलकी संस्था अच्छी रहने पर भी परकीय शासन में उसकी कैसी दुर्दशा होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से मलबार की पुरानी हक़ीक़त बहुत ही मनोरञ्जक है। वहां की राज्य-पद्धति में प्रजासत्तात्मक तत्व प्रचलित थे। इसलिये ज़रा विषयान्तर होते भी उसका प्राचीन इतिहास ज़रा विस्तार के साथ देना आवश्यक है।

हिन्दुस्थान के उत्तर में हिमालय की प्रचण्ड तटबन्दी और अन्य तीन तरफ़ समुद्र घिरा हुआ होने के कारण लोगों की साधारण समझ थी कि हिन्दुस्थान बाहरी शत्रु के लिये सर्वथा दुर्भेद्य है। केवल वायव्य कोण की ओर ही एक रास्ता है जिस से सब शत्रु हिन्दुस्थान में आये। किन्तु पश्चिम के ग्रन्थकार लिखते हैं कि जब तक यूरोप वाले यहां नहीं आये तब तक समुद्र का मार्ग भी दुर्भेद्य था। उनके लिखने का यही मतलब है कि समुद्रमार्ग से हिन्दुस्थान में घुसने की बात यूरोपवालों ने ही सम्भव कर दिखाई है। परन्तु यह ठीक नहीं है। मनुष्य की बुद्धि के प्रभाव के सन्मुख कोई बात असम्भव नहीं है। वायव्य के रास्ते के सिवाय

हिमालय की चम्बी घाटी से भी हिन्दुस्थान में आने का एक मार्ग है। इसी रास्ते से लार्ड कर्ज़न का सशस्त्र फ़ौजी मिशन तिब्बत गया था। इसी रास्ते से बौद्ध साधु बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये तिब्बत गये थे। समुद्र मार्ग के विषय में यदि यह कहा जाय कि पोर्तगीज़ लोगों ने विलक्षण साहस कर हिन्दुस्थान ढूँढ़ निकाला तो यह घमण्ड व्यर्थ और मिथ्या है। हिन्दुस्थान देश कहीं खो नहीं गया था और न संसार के सामने अप्रकट ही था। पोर्तगीज़ लोगों का इतना ही पराक्रम है कि वे यूरोप के जहाज़ों को वहां का किनारा छोड़ रास्ते में कहीं बिना अटकाये ठेठ हिन्दुस्थान के किनारे तक ले आये। किन्तु नौका-विद्या में यूरोपियन लोगों की बराबरी करने वाले अथवा उनसे भी अधिक होशियार खलासी उस समय हिन्दुस्थान में मौजूद थे। प्राचीन ग्रीक अथवा फिनिशियन खलासियों की बात छोड़ दें तो भी पोर्तगीज़ लोगों की तरक्क़ी के तीन चारसौ वर्ष पहले ही अरब लोगों ने समुद्र का प्रवास करने में विलक्षण प्रवीणता सम्पादित की थी। जापान के किनारे से भूमध्य समुद्र तक वे समुद्र में घूमा करते थे। जो लोग जापान से ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप तक दक्षिणोत्तर प्रवास करने में न डरे उनके विषय में यह कहना ठीक नहीं कि

आफ़्रिका के किनारे किनारे प्रवास कर चौगिर्द घूम आने में वे डरते। उनके उधर न जाने का यही सबब है कि उधर उनके व्यापार का कोई सिलसिला नहीं था, और बिना मतलब उधर जाने की उन्हें आवश्यकता और फ़ुरसत नहीं मालूम हुई। मिसर के रास्ते से वे भूमध्य समुद्र तक पहुँच सकते थे, इसलिये दक्षिण आफ़्रिका होकर भूमध्य समुद्र में जाने की उन्हें आवश्यकता नहीं मालूम पड़ी। तथापि अरब वालों के समान समुद्र में घूमने वाले लोगों की ही अड्डे अड्डे पर सहायता लेते हुये पोर्तगीज़ खलासी पूर्व की ओर आसके। सारांश यद्यपि अरब वाले तथा अन्य पूर्व देशवाले नौका-विद्या में प्रवीण थे तथापि पोर्तगीज़ लोगों के पहले हिन्दुस्थान में बाहर से आने वाले कोई भी विदेशी लोगों के मन में ऐसी स्वार्थमूलक कल्पना नहीं समाई थी कि हम हिन्दुस्थान का धन ढोकर अपने देश में ले जावें। यूरोपियनों ने हिन्दुस्थान में आकर नये ढङ्ग की कार्रवाई आरम्भ की, इसलिये उनकी महिमा अधिक बढ़ गई। यही नहीं बल्कि यहां वालों की महिमा भी उनके आगे लुप्त हो गई। पन्द्रहवीं सदी में यूरोप के लोग और पूर्व के लोग नौकागमनशास्त्र में एक समान प्रवीण थे, परन्तु पीछे इस विषय में यूरोपियनों की तरक़्क़ी हुई, और पूर्व

वाले नीचे गिरते गये। ऐसा क्यों हुआ यदि इस बात का विचार उस समय की स्थिति के सहारे किया जाय तो मालूम होगा कि पूर्व के लोग उस समय धनवान, सुखी और सुव्यवस्थित थे; उन्हें दूसरों के मुंह की ओर देखने की कभी ज़रूरत नहीं मालूम पड़ी। अर्थात् पराये धन और परदेश के विषय में उनके हृदय में अभिलाषाही उत्पन्न नहीं हुई, इसलिये साहस, उद्योग और पराक्रम दिखाकर कुछ अधिक प्राप्त करने की उन्हें ज़रूरत नहीं मालूम पड़ी। किन्तु इसके विरुद्ध यूरोपियनों के मन में ऐसी आकांक्षा उत्पन्न होने का कारण था। क्योंकि यहां के व्यापार के बीच में अरबी लोग थे इससे यूरोपियनों के पेट में चिमटी लगती थी जिससे बाहर निकलने का उनमें प्रबल उत्साह उत्पन्न हुआ। इसलिये जान को हथेली पर रख वे प्रयत्न करने लगे। यही कारण है कि उनकी तरक्की होती गई। उस समय पूर्व वालों को इस बात की परवाह करने की आवश्यकता नहीं समझ पड़ी कि यह प्रयत्न किस लिये हो रहा है, और आगे चल कर इसका क्या परिणाम होगा। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दुस्थानियों में उन्नति करने की योग्यता नहीं थी, अथवा यूरोपियन लोगों की ही बुद्धिमानी अलौकिक है।

हिन्दुस्थान के पश्चिमी किनारे का नाम मलबार किनारा है। इस किनारे की समांतर रेखा में समुद्र से तीस मील के अन्तर पर सह्याद्रि पर्वत की लम्बी क़तार है। इसलिये समुद्र किनारे की यह भूमि हिन्दुस्थान के मुख्य भाग से एक प्रकार अलगसी हो गई है। सूरत से आरम्भ करें तो इस पट्टी में उत्तर-कोंकण अर्थात् थाना और कुलाबा के ज़िले, दक्षिण कोंकण अर्थात् क्रम से रत्नागिरी ज़िला, साँवतवाड़ी का राज्य, कोमन्तक, उत्तर कानड़ा, दक्षिण कानड़ा, मलबार, कोचीन और त्रावणकोर के प्रदेश हैं। मलबार के पूर्व में मैसूर और कुर्ग के प्रान्त हैं। इस किनारे के मुख्य बन्दर क्रम से सूरत, दमन, डाहाणू, तारापुर, माहीम, वसई, थाना, बम्बई, अलीबाग, जञ्जीरा, रत्नागिरी, विजयदुर्ग, मालवण, वेंगुर्ले, पणजी, मार्मागोवा, कारवार, कुमठा, होनावर, भटकल, (आखीर के तीन उत्तर कानड़ा में हैं,) मङ्गलूर (दक्षिण कानड़ा में) काननूर, तेलिचरी, माही, कालीकोट, पूनानी (मलबार में) कोचीन, कोलम, (अर्थात् क्विलोन,) अञ्जनगो, त्रिवेन्द्रम और कामोरिन हैं। इन बन्दरों के नाम यहां पर, इसलिये दे दिये गये हैं कि आगे के वर्णन में इनका ज़िक्र आवेगा॥

२–मलबार का पुराना हाल

मलबार का पुराना नाम केरल था। पुराने ज़माने में दक्षिण में चेर, चोल और पांड्य नाम के तीन राज्य थे। आजकल के इतिहास-शोधकों का कथन है कि केरल का ही अति प्राचीन नाम चेर था। इस समय भी मलबार में चेरनाड़ नाम का एक तालुक़ा है, मालूम पड़ता है उसीके नामसे उस प्रान्तका नाम 'केरल' पड़ा होगा। एक आख्यायिका प्रसिद्ध है कि पहले परशुराम ने समुद्र को पीछे हटाकर मलबार की ज़मीन उत्पन्न की थी, और फिर वहां चातुर्वर्ण्य की स्थापना की थी। उन्होंने चौंसठ गाँव बसाकर चार चार गाँव का एक हिस्सा कर उस प्रान्त को सोलह हिस्सों में बाँट दिया। पहले उस प्रान्त का बन्दोबस्त इस ढङ्ग से किया गया कि हर एक भाग के लोग अपने लोगों में से उस भाग का कारबार चलाने के लिये एक अधिकारी नियुक्त कर दें; वह अधिकारी तीन वर्ष तक शासन का कारबार करे, और इस काम के ख़र्च के लिये ज़मीन की पैदावार का छठवां भाग सरकारी मालगुज़ारी में लिया जाय। किन्तु ये अधिकारी तीन तीन वर्ष में बदला करते थे, इसलिये इस बीच में जी में आवे उस प्रकार वे ज़ुल्म

किया करते थे। इस जुल्म को बन्द करने के लिये सब लोग तिरुनावायी नामक स्थान में इकट्ठे हुए। वहां पर सब लोगों ने एक राजा पसन्द किया। उसे वे लोग पेरुमाल कहा करते थे। पेरुमाल शब्द का मतलब 'बड़ा' अथवा 'परमेश्वर' होता है। उस समय ऐसा नियम किया गया कि पेरुमाल बारह वर्ष तक राज्य करे, और फिर अपना राज्य छोड़ दे। उस समय एक बड़ा जल्सा किया जाय, उसी जल्से में लोग अपने लिये नया राजा चुनें। ऐसा माना जाता है कि यह घटना सन् २१६ ई० में हुई थी। यह राजा कोडुंगलूर उर्फ़ क्रांगानूर में राज्य किया करता था। इस प्रकार चेर के राजा का नाम पेरुमाल पड़ गया। अशोक के शिलालेखों में भी यह नाम पाया जाता है। तथापि इस विषय में दन्तकथाओं के सिवाय कोई ज़बरदस्त लेखों का आधार नहीं है।

ऐतिहासिक प्रमाण इतना ही पाया जाता है कि मलबार किनारे पर रोमन लोगों के साथ व्यापार हुआ करता था। मलबार और ट्रावणकोर में रोमन लोगों के बहुत से सिक्के पाये गये हैं। विद्वानों की खोज से मालूम पड़ता है कि सन् ईस्वी की चौथी सदी में मलबार में काञ्ची (काञ्जीवरम्) के राजाओं का शासन-

धिकार था। वह अधिकार थोड़ा बहुत चौदहवीं सदी तक वर्तमान रहा। पल्लव राजाओं के समय में चीनका प्रसिद्ध यात्री फाहियान मलबार में आया था; उसने उस राज्य का वर्णन अपनी यात्रा-पुस्तक में किया है। सन् ई० की सातवीं सदी में वातापी अथवा बादामी के चालुक्य राजाओं ने मलबार पर चढ़ाई कर पल्लव राजाओंको हराया। परन्तु उनका अधिकार मलबार में जमने भी नहीं पाया था कि राष्ट्रकूट लोगों ने उन्हें भी जीत लिया। कुछ दिनों तक मलबार में राष्ट्रकूटों की अच्छी तूती बोलती रही। परन्तु उस प्रान्त में नायर लोगों के अच्छे अड्डे बने हुए थे, और वहां छोटे २ मज़बूत राज्य थे, इसलिये राष्ट्रकूटों का शासन भी वहां अच्छी तरह नहीं जमने पाया। ये नायर लोग कदीमी तामिल थे और पूर्व किनारे से आकर मलबार में बस गये थे। यह नहीं कहा जा सकता कि ये लोग पूर्व से यहां कब आये थे। मिस्टर एलिस का कथन है कि ये लोग अनुमान सन् ३८९ ईस्वी में मलबार में आये, और उन्हों ने उस प्रान्त को आपस में बाँट लिया।

मलबार के लोग, ब्राह्मण और नायर।

नम्बुतिरी ब्राह्मण, नायर, मापला मुसलमान और क्रिश्चियन ये ही चार प्रकार के लोग ख़ास कर मलबार में निवास करते हैं; इनमें भी प्रत्येक के अन्तर्गत कई भेद हैं। हिन्दुस्थान के अन्य भागों में आर्य्य लोगों ने जो अनेक प्रकार की सभ्यता और सुधार प्रचलित किये, मलबार में उन का विशेष प्रभाव-चिन्ह नहीं पाया जाता। सूक्ष्म विचार से देखना चाहिये कि इसका परिणाम क्या हुआ। हिन्दुस्थान के अन्य भागों में जैसे आर्यों की चातुर्वर्ण्य संस्था है वैसी मलबार में नहीं है। आर्यों की जाति-व्यवस्था की उत्पत्ति कुटुम्ब से है। कुटुम्ब को मूल नीव समझ कर आर्यों ने समाज की रचना की है। इसलिये समाज के मुख्य चार भाग कर उनके लिये चार प्रकार के कर्तव्य अलग अलग बाँट दिये गये। समय पाकर यह कर्तव्य-विभाग इतना अलग और साफ़ हो गया कि जिस समय दो पक्ष के क्षत्रिय एक दूसरे से युद्ध करते थे उस समय एक ओर ब्राह्मण लोग तपस्या करते और दूसरी ओर किसान खेत जोतते बोते थे, किन्तु यह बात उन के ध्यान में नहीं आती थी कि हम भी इस झगड़े में शामिल हों। (लोगन)।

यही सबब है कि अपने प्राचीन इतिहास में इस तरह के उदाहरण अधिक नहीं पाये जाते कि विदेशियों का हमला होने पर देश के सब लोग मिलकर अपने देश की रक्षा करने के लिये शत्रु पर चढ़ दौड़े हों। क्योंकि अन्य वर्ण के लोग समझते थे कि देश की रक्षा करने का काम केवल क्षत्रियों का ही है। आर्यों की इस व्यवस्था से समाज की बहुत उन्नति हुई, और सुधार भी खूब हुआ जिससे हर एक समुदाय के लोगों ने अपने अपने हुनर की खूब तरक़्क़ी की, और इसीलिये आर्यों की खूब उन्नति हुई। इसके विरुद्ध मलबार की समाज रचना अभी आधुनिक है। वहां जो नम्बुतिरी ब्राह्मणों की बस्ती है वह आठवीं सदी से आरम्भ हुई, क्योंकि उस समय ये ब्राह्मण बाहर से जाकर वहां बसे थे। उनके पहले केवल जैन लोग उत्तर से जाकर वहां बसे थे; और उन्हीं के कारण वहां आर्यों की सभ्यता थोड़ी बहुत प्रविष्ट हुई थी। उन्होंने भिन्न भिन्न व्यवसाय के लोगों के समाज (जिसे अङ्गरेज़ी में गिल्ड्स कहते हैं) वहां स्थापित किये। पहले पहल इस प्रकार के समुदायों को धार्मिक स्वरूप नहीं प्राप्त हुआ था। किन्तु आठवीं सदी में ब्राह्मणों ने उन्हें धर्म बन्धनमें बाँधा, और जातियों के बन्धन दृढ़ किये। ये ब्राह्मण वैदिक अर्थात् वेदों का अध्ययन करने वाले

थे, इसलिये वेदों के अनुसारही उनके विभाग थे। प्रसिद्ध शंकराचार्य मलबार के नम्बुतिरी ब्राह्मण थे। मलबार के ब्राह्मण शंकराचार्य के अनुयायी हैं। नम्बुतिरी ब्राह्मणों के दश 'ग्राम' अर्थात् शाखाएं हैं। प्रत्येक ग्राम पर छह अधिकारियों की लोक-नियुक्त सभा रहा करती थी। उस सभा का सभापति अथवा अध्यक्ष 'स्मार्त' कहा जाता था, और उस सभा के सभासद् मीमांसक कहे जाते थे। जातियों के सब प्रकार के भीतरी झगड़े यही सभा निपटाया करती थी, ऐसा करने के लिये केवल उस प्रान्त के राजा की मंज़ूरी लेनी पड़ती थी।

मलबार की दूसरी मुख्य जाति नायर लोगों की है। नायर का अर्थ है लोगों के नायक। ये ही देश के संरक्षक हैं। ये लोग आर्य नहीं हैं। मलबार में आर्यों की बहुत थोड़ी संख्या गई थी। देश की रक्षा के लिये वहां क्षत्रियों की काफ़ी संख्या न होने के कारण वहां क्षत्रियों की नई जाति बनानी पड़ी। इसलिये नायर का मतलब यह समझना चाहिये कि ये क्षत्रियों का काम करने वाले शूद्र हैं। मालूम पड़ता है कि यह शब्द "नी" धातु से बना होगा। राज्य-व्यवस्था की सुविधा के लिये देश के जो भिन्न भिन्न भाग किये गये थे वे नाड कहलाते थे। इसका अर्थ है नायर लोगों के अधिकार

की भूमि। प्रत्येक नाड में छह सौ कुटुम्ब होते थे। इस प्रकार प्रत्येक कुटुम्ब से एक एक मनुष्य लेकर षट्शत (अर्थात् छह सौ) नाम की एक परिषद् रहती थी। नाड की सारी व्यवस्था इसी परिषद् के द्वारा हुआ करती थी। सरकारी कर वसूल करना, फ़ौज रख कर देश की रक्षा करना, शाखा सभाओं से काम लेना और लोगों के आपसी झगड़ों को निपटाना—ये सभा के काम थे। यह नाड प्राचीन ग्रीक लोगों के समान स्वतन्त्र प्रजा-सत्तात्मक (प्रजातन्त्र) राज्य था। इस समय भी मलबार की तहसीलों के नाम 'एरनाड,' 'वल्लुवनाड' आदि हैं। नाड के अन्तर्गत भागों को 'तर' कहा करते थे। इस 'तर' शब्द से ही उस प्रान्त में गली का अर्थ-वाचक 'तेरु' शब्द उत्पन्न हुआ है। पहले चार घरों के पीछे एक तर अर्थात् एक नाड में सवा सौ 'तर' हुआ करते थे। तर का मुख्य व्यवस्थापक कर्णावर (Karnavara) कहा जाता था। 'षट्शत्' सभा में ये कर्णावर सम्मिलित थे। इन कर्णावरों के मुख्यस्थ, मध्यस्थ और प्रमाणी नाम के तीन विभाग होते थे। प्रत्येक नाड में सब की सलाह से चुना हुआ एक अधिकारी रहता था, और सब नाडों की ओर से एक सार्वभौम राजा चुना जाता था। मलबार की यह ख़ास राज्य-पद्धति स्मरण रखने लायक़

है। नाडों की सभा को स्वराज्य का पूरा अधिकार था इसलिये राजा अथवा अधिकारियों को लोगों पर ज़ुल्म करने की सुविधा नहीं थी। तेलिचरी की अंगरेज़ी कोठी के दुभाषिया ने अपने रोज़नामचे में ता० २८ मई सन् १७४६ के दिन लिखा है: "ये नायर कालीकोट की प्रजा के मुख़्तार हैं। इन मुख़्तारों का समूह मानो अपने यहां की पार्लिमेण्ट है। यह बात नहीं कि ये समूह राजाओं के हुक्म चुपचाप सुन लिया करते हों। यदि राजा के अफ़सर ज़ुल्म तथा अन्याय करें तो उन्हें सज़ा देने का इन समूहों को अधिकार है।" नाडों की इस सभा का नाम "कुट्टं" था। यह कुट्टं सभा बड़ी एकता के साथ काम किया करती थी; इससे इसका प्रभाव भी बहुत था। चढ़ाई, शिकार, युद्ध, पञ्चायत आदि हर एक बड़े मार्के के मौकों पर यह सभा हुआ करती थी। इस सभा के नेत्र हाथ और हुक्म (the eye, the hand, the command) आदि लाक्षणिक संज्ञाएं थीं। लोगों से लगान वसूल करना, उनके हक़ साबित रखना, और सब का आचार जारी रखना आदि इस सभा के काम थे। कानड़ा की समग्र दक्षिण सीमा पर और विशेष कर मलबार में यह राज्य-व्यवस्था जारी थी। सन् १७९१ ई० में मलबार में अङ्गरेज़ी राज्य आरम्भ हुआ; उसी समय यह

व्यवस्था बन्द हुई। यदि वह व्यवस्था बन्द न होती तो वह एक प्रकार का स्वतन्त्र राज्य क़ायम रहता; कितने ही पाश्चात्य ग्रंथकारों की ऐसी ही राय है।

उस देश में नायरों के सिवाय गणक अर्थात् ज्योतिषी, शिक्षक, बढ़ई, लुहार, गवैये, धोबी आदि और भी अनेक जातियों के लोग थे। इन सब प्रकार के व्यवसाई लोगों से ग्राम-संस्था पूर्ण हुई थी। थोड़े बहुत फ़रक से इसी प्रकार की ग्राम-संस्था सारे हिन्दुस्थान में प्रचलित थी। 'तीयर' नामकी वहां और भी एक जाति रहती है। इसका व्यवसाय मालियों का सा है। कहा जाता है कि ये लोग सीलोन से आकर मलबार में बसे थे। इस जाति के स्त्री पुरुष बहुत ही सुन्दर और साफ़ होते हैं। यूरोपियनों के साथ रहने में भी उनकी स्त्रियों के लिये रोक टोक नहीं है; इसलिये इन लोगों में अब यूरोपियन खून का बहुत कुछ मिलाप हो गया है। इसलिये लोगों का रंग भी बहुत कुछ पलट गया है। इसलिये वे यूरोपियन लोगों को बहुत प्रिय हैं। इनके सिवाय नाई, बसोड़, छाते बनानेवाले, चेरूमार अर्थात् गुलामों के समान लोग तथा मुसलमान व ईसाइ भी मलबार में बहुत हैं।

ऊपर इस बात का वर्णन हो चुका है कि मलबार में कई सदियों तक नायर लोगों की एक ख़ास स्वतन्त्र राज्य-व्यवस्था जारी थी। उनके बाद ज्यों ज्यों और और जातियों के लोग मलबार में गये त्यों त्यों उनका भी राज्य-व्यवस्था में समावेश हुआ, और सब लोगों के समान उन्हें भी हक़ प्राप्त हुए। यहूदी और ईसाइ लोग मलबार में बसे तब से उनकी भी वहां महिमा बढ़ी, और राजाओं ने कुछ ख़ास हक़ों की उन्हें सनद दी। मलयाली भाषा में तीन इस प्रकार की खुदी हुई सनदें इस समय प्राप्त हुई हैं। इसलिये उनकी सचाई के बारे में सन्देह करने की जगह नहीं है उन सनदों से उस समय की राज्य-पद्धति की बहुत सी बातें मालूम पड़ती हैं।

(पहली सनद)

(सन् ७०० ई०) इसमें भास्कर रविवर्मा नामक राजा का उल्लेख है।

(दूसरी सनद)

(सन् ७७४ ई०) इसमें वीरराघव चक्रवर्ती के नामका उल्लेख है।

(तीसरी सनद)

(सन् ८२४ ई०) इसमें स्थाणुरविगुप्त राजा का उल्लेख है।

इन तीनों सनदों को पढ़कर विद्वानों ने उनका अर्थ लगाया है। पहली सनद में यहूदी लोगों को हक़ दिये गये हैं; दूसरी में उत्तर के ईसाइयों को और तीसरी में दक्षिण के ईसाइयों को ख़ास हक़ दिये गये हैं।

'मार सोपार' नामक एक ईसाइ सन् ८२२ ई० में बाबिलोन से हिन्दुस्थान के 'कोलम' नामक स्थान में आया। उसने वहां के अफ़सरों के द्वारा मलबार के ईसाइयों को हक़ दिलाये। इस घटना का उल्लेख इतिहास में भी है; परन्तु तीसरी सनद में 'मरुवान सापीर इसो' का नाम है; मालूम पड़ता है यह और 'मार सोपार' एकही आदमी का नाम है। इन लेखों से मालूम पड़ता है कि चेर अर्थात् केरल देश की मर्यादा साधारणतः कालीकोट से कोलम तक थी। उक्त सनदों में जिन राजाओं के नाम हैं मालूम पड़ता है वे राजा वहां के पेरुमाल ही होंगे। आखिर का स्थाणु-रविगुप्त ही चेरमान पेरुमाल है। उस के नाम पर से मालूम पड़ता है कि वह कदाचित् कोंकण का मौर्यवंशी राजा होगा। उक्त सनदों में उन भागों के माण्डलिक अधीनस्थ-करद राजाओं तथा अन्य लोगों की गवाहियां हैं। अतएव इन सनदों और उनकी रचना से मालूम पड़ता है कि वहां नायरों के नाडों को जो हक़ थे वे

ही यहूदी और ईसाइयों को भी दिये गये। इन लोगों का एक अलग समाज अर्थात् नाड बनाकर वहां उसी जाति का एक अफ़सर नियुक्त किया गया। उसका अधिकार वंशपरम्परा के लिये था। उसके लिये छत्र, मशाल, पालकी, नरसिंहा, नौबत आदि बहत्तर प्रकार के एहतमाम (राज्य-चिन्ह) थे। इनके सिवाय दूसरे भी हक़ थे। 'मरुवान सापीर इसो' ने देश के कुछ भागों में जल-सत्व भी मोल लें लिये थे। नायरों के नाड के समान यहूदी और ईसाइ लोगों की भी 'षट्शत्' सभा बनाई गई थी। अर्थात् जैसे अन्य लोगों के समुदाय अर्थात् गिल्ड थे वैसे ही इनके भी समूह बने। इन लोगों को सबकी सम्मति से हक़ दिये गये थे, इसलिये सनदों पर सब संघों की गवाहियां हैं। इस प्रकार ईसाइ और यहूदियों को भी सार्वजनिक संस्थाओं की जवाबदारी सौंप कर सब देश की सलाह से उनके मुखिया के लिये वंशपरम्परा के निमित्त सार्वजनिक आमदनी का हिस्सा बाँट दिया गया था।

इन सनदों से मालूम पड़ता है कि सार्वभौम सरकार ने अपने हाथ में बहुत थोड़े अधिकार रक्खे थे। हर एक प्रान्त में भिन्न भिन्न प्रकार की सभाएं नियुक्त कर उन्हें राज्य का कारबार सौंप दिया गया

सुविधा मिली। आज के हिन्दुस्थान सरकार की राज्य-पद्धति से इस पुरानी पद्धति की तुलना कर देखनी चाहिए। इस समय ईसाइ सरकार जो हक़ हमें देने के लिये तैयार नहीं है वे हक़ हमारे पूर्वजों ने ईसाइ और यहूदियों को दिये थे। लॉर्ड विलियम वेंटिंक ने सन् १८०४ में लिखा था कि "मलबार के लोगों को स्वतन्त्रता बहुत प्रिय है। वे कभी ज़ुल्म सहन नहीं कर सकेंगे। वे जानते हैं कि उत्तम वर्ताव किसे कहते हैं। न्यायासन और प्रचलित पद्धति पर बड़ी उनकी पूज्य बुद्धि है। खेती का काम वे बहुत सन्मान्य समझते हैं। इस विषय के नियम उन्होंने बहुत ही व्यवस्था के साथ बनाये हैं कि किसानों से अफ़सर लोग किस प्रकार लगान वसूल करें।"

ऊपर जिन तीन सनदों का उल्लेख किया गया है उनमें से केवल दूसरी में ब्राह्मणों की सम्मति ली गई है; किन्तु पहली और तीसरी पर किसी तरह की सम्मति नहीं ली गई। पहली सनद में जिन दो संघों का उल्लेख है वे कोडुङ्गलूर के पास के हैं, और तीसरी सनद का संघ दक्षिण त्रावणकोर के कोलम स्थान के पास था। त्रावणकोर में वैदिक ब्राह्मण अधिक नहीं हैं, और उस समय भी थोड़े ही थे। वैदिक ब्राह्मणों में

नम्बुतिरी ब्राह्मणों का ही विशेष जमाव था। पहली सनद् सन् ७०० की और दूसरी ७७४ की है। इससे मालूम पड़ता है कि इन्हीं ७४ वर्षों के बीच में मलबार में नम्बुतिरी ब्राह्मणों का प्रवेश हुआ होगा; अर्थात् वे दक्षिण कानड़ा से आठवीं सदी में मलबार में आये।

नायर लोगों में भी भीतरी भेद हैं। उनका आचार स्वच्छ है। स्त्रियों को स्वतंत्रता है और वे जल्सों में पुरुषों के समान ही खुल्लम खुल्ला आती जाती हैं। उनमें स्वयम्बर की चाल प्रचलित है। स्त्रियां सयानी होने पर स्वयं अपना पति पसन्द करती हैं।*

"मलबार के लोग सदैव सैनिक बाने में रहते हैं, और वे बहुत ही सभ्य होते हैं। सातवें वर्ष वे कसरत करने की शाला में भेज दिये जाते हैं जहां उन्हें हथियार चलाने की विद्या सिखाई जाती है। कसरत से उनका शरीर इतना लचकदार हो जाता है कि मानों उनके शरीर में हड्डियां हैं ही नहीं। ये लोग अपने शरीर में सदैव तेल लगाते हैं। हथियारों का उन्हें

* Johnston's relations of the most famous kingdom in the world.—(Ed. 1611).

बड़ा अभिमान रहता है। बिना हथियार लिये वे बाहर नहीं निकलते। उन लोगों में यह रीति थी कि यदि कोई मनुष्य किसी का खून कर डाले तो उसका लड़का अथवा कोई नातेदार उसका बदला ज़रूर ही ले।" *

बम्बई के गवर्नर जोनाथन डंकन, सर हेक्टर मनरो, लोबूर्डोने आदि अनेक महानुभावों ने नायर लोगों की वीरता और शस्त्र-प्रवीणता की बहुत तारीफ़ की है। यदि उनका अगुआ लड़ाई में मारा जाय तो उस के बदले दल के लोग जब तक जान रहेगी तब तक शत्रु से बदला लेंगे और मोरचा रोपे रहेंगे। देखा जाय तो उस समय की स्थिति से आज की स्थिति में कितना फ़रक पड़ गया है।

नायर लोग मुर्दे को जलाकर उसकी अस्थि एक पत्थर की सुन्दर सन्दूक में बन्द कर गाड़ा करते थे। इस तरह की भिन्न २ आकार की बहुत सी सन्दूकें आजकल ज़मीन के भीतर से निकली हैं। उन पर नक्काशी का काम है और कुछ लेख खुदे हुए हैं। यह चाल पहले की थी, अब तो अस्थि किसी नदी अथवा तीर्थस्थान में ले जाकर प्रवाह की जाती है।

---

*(Mrs. Murdoch Brown to Francis Buchanan,—beginning of 19th Cent.)

धर्म के विषय में विचार करने से मालूम पड़ता है कि अशोक के समय से वहां बौद्ध और जैन धर्म का प्रचार हुआ। उस प्रान्त में जैनधर्म की विशेष प्रबलता थी। आठवीं सदी में नम्बुतिरी ब्राह्मणों के आने से लोगों के धर्माचार में बहुत ही फ़रक पड़ गया, और शङ्कराचार्य का उपदेश ज़ोरशोर से काम में लाया गया।

मलबार का वर्णन लिखने वाले लोगन साहब का कथन है कि, "मलबार के विषय में नायर लोगों का प्रभाव यही मुख्य ध्यान रखने योग्य बात है। सैकड़ों वर्ष तक फ़ौजी कामों के सिवाय और दूसरे कामों में भी उनकी वहां प्रधानता रही है। यदि बीच में विदेशी लोग न आते तो उनकी वह प्रधानता कई सदियों तक वैसी ही टिकी रहती। इस समय भी मलबार में नायर लोग हैं; परन्तु दुःख की बात यही है कि उन में पहले के समान लोगों के नष्ट होने वाले हक़ों को साबित रखने की ताक़त अब नहीं है। पहले राज्यकर्ता लोग उनपर ज़ुल्म नहीं कर सकते थे। वहां के एक अनुभवी और बहुश्रुत सज्जन ने उनकी राज्य-व्यवस्था का नाम "पार्लमेंट" रखा है। पहले मलबार के राजा प्रजा पर अनियंत्रित शासन नहीं कर सकते थे। सब बातें

उन्हें 'कुट्टम' सभा के द्वारा करनी पड़ती थीं। इस प्रजा-सत्तात्मक राज्य-व्यवस्था को पहले पहल हैदर अली ने नष्ट किया।"

सारांश, कई सदियों तक इस प्रान्त में अमन चैन विराजमान थी, और यहां का व्यापार खूब उन्नति पर था॥

४—मलबार के मुसलमान

मलबार में मुसलमानों का प्रभाव अधिक है। मुसलमानों ही के कारण मलबार का व्यापार बढ़ा और उसकी नामवरी हुई। यहां मुसलमानों का प्रवेश नवमीं सदी में (अर्थात् सन् ८५१ ई० के पश्चात्) हुआ। कहते हैं कि मलबार में चेरमाण पेरूमाल नामक एक पराक्रमी राजा क्राङ्गानूर में राज्य करता था। उसके देश में एक बार कुछ अरब के फ़क़ीर आये; उन्हों ने राजा का मन मुसलमानी धर्म की ओर झुकाया, इससे उसने मक्के की यात्रा करने का निश्चय किया। इस काम के लिये गुप्त रूप से उसने एक जहाज़ तैयार कराया। उसी में बैठकर राजा भाग गया और अरब के 'शहर' नामक स्थान में उतरा। वहां पर मलिक-इब्न-दीनार नामक मनुष्य ने अपने कुटुम्ब सहित राजा से

भेंट की। इसके बाद उन दोनों की पक्की दोस्ती हो गई, और राजा ने मुसलमानी धर्म स्वीकार कर कई वर्षों तक वहां निवास किया। उसका इरादा था कि हिन्दुस्थान लौट कर लोगों को मुसलमानी धर्म में लावें; परन्तु बीच में ही बीमार पड़ कर अरब में ही वह मर गया। मरने के पहले उसने मलिक-इब्न-दीनार और अपने दूसरे मित्रों को पास बुलाकर आग्रह के साथ कहा कि 'मलबार में जा कर तुम मुसलमानी धर्म फैलाओ'। वहां के राजा के लिये इस आशय के पत्र भी उसने लिख दिये कि 'मलबार में मसजिदें बनवाई जाँय और उनके ख़र्च के लिये जागीरें मुक़र्रर कर दी जाँय'। इस के पश्चात् उसने परलोक यात्रा की।

कुछ दिनों के पश्चात् मलिक-इब्न-दीनार सहकुटुम्ब पेरुमाल राजा के पत्र लेकर मलबार में आया। पहले उसने राजा के मरने की ख़बर गुप्त रखी। क्रांगानूर के राजा ने उसका अच्छा आदर सत्कार किया, और चेरमाण के लिखने के अनुसार मसजिद बनाने के लिये उसे जगह दी और ख़र्च के लिये कुछ जगह और आमदनी लगा दी। मलिक-इब्न-दीनार वहां का बड़ा काजी हुआ। इसके बाद त्रावणकोर में जाकर कोलम नामक स्थान में उसने मसजिद बनवाई। इसी तरह उत्तर की ओर

जाकर मङ्गलूर, कासारगोड़ आदि स्थानों में भी इसने मसजिदें बनवाईं। इस तरह भारत के पश्चिम किनारे पर मुसलमानी धर्म की स्थापना हुई। मुसलमानों ने व्यापार के लिये ऐसे स्थान पसँद किये जहां अफसरों से उन्हें मदद मिल सके। इधर मलबार में मलिक-इब्न-दीनार ने अपना प्रयत्न जारी कर रखा था, उधर किनारे के लोगों की अरबी व्यापारियों से पहलेही अच्छी जान पहचान हो चुकी थी। मलबार में पहले से ही अरबी व्यापारी आकर बस गये थे। यही नहीं बल्कि हिन्दू स्त्रियों से विवाह कर उन्हों ने अर्ध-विटुल प्रजा उत्पन्न कर दी थी। ज्यों ज्यों इस प्रकार की प्रजा बढ़ती गई त्यों त्यों व्यव-स्थित धर्मबन्धन की आवश्यकता भी अधिक मालूम होने लगी, और मलिक-इब्न-दीनार को अपने प्रयत्न में सफलता मिली। इस प्रकार दो विधर्मी लोगों के मेल से जो प्रजा उत्पन्न हुई उसे 'मापला' नाम दिया गया। मलबार के मुसलमान मापला ही कहलाते हैं। इस शब्द की उत्पत्ति 'महापिल्ला' (महा अर्थात् बड़ा, और पिल्ला मायने बालक) शब्द से है, जिसका अर्थ बड़े सन्मान का पुरुष है; अर्थात् इन्हें लड़के के समान ममता के साथ रखना चाहिये।

मापला लोगों की मुख्य जगह कनानूर है। वहां अब तक मापला मुसलमानों का राजवंश है। सन् ई० की बारहवीं सदी के आरम्भ में मलबार के एक राजा के यहां 'आर्यन कुलाङ्गार नायर' नामक एक पुश्तैनी दीवान था। उसने मुसलमानी धर्म स्वीकार कर अपना नाम मुहम्मद अली रखा। वह बहुत चालाक और होशियार था। इसलिये मुसलमान होने पर भी उसकी दीवानी क़ायम रही। सारांश, उस समय मलबार के लोग कुछ कुछ समझने लगे थे कि मुसलमान होना अच्छी बात है। उधर मलबार के मुसलमानों के वज़न और इधर उत्तर हिन्दुस्थान के मुसलमानों के अनर्थ का मिलान करें तो एक प्रकार का चमत्कारिक विरोध मालूम पड़ता है। इधर उत्तर हिन्दुस्थान में हिन्दुओं पर ज़ुल्म कर मुसलमान बनाने, लड़ाई करने, सताने और क़त्ल करने का काम होरहा था; उधर उसी समय मलबार में शान्ति और प्रेम भाव से मुसलमानी मज़हब फैलाने का काम जारी था। ईसाइ धर्म का भी यहां बहुत प्रचार हुआ।

सच पूछा जाय तो मलबार में हिन्दू धर्म का प्रभाव अच्छा नहींजमा था, वहां ब्राह्मणों की प्रबलता नहीं थी; इसलिये मुसलमानी धर्म स्थापित होना सुलभ

हुआ। हिन्दुस्थान के अन्य भागों में और मलबार में यह विशेष फ़रक़ था और यह फ़रक़ ध्यान में रखने लायक़ है। वहां ब्राह्मणों की धर्म-शिक्षा का प्रभाव अन्य प्रान्तों की तरह दृढ़ नहीं था। इसलिये पश्चिमी किनारे पर परकीय धर्म का प्रवेश जैसी सुलभता से होसका वैसा अन्य किसी भी प्रान्त में नहीं हुआ। मुसलमान और पोर्तगीज़ों ने यहां बहुत से लोगों को धर्म-परिवर्तित किया। इस प्रकार के लोगों की संख्या मलबार में जितनी अधिक है उतनी और कहीं नहीं है। जब पोर्तगीज़ लोगों को मलबार किनारे में इस प्रकार सफलता प्राप्त हुई तब उन्हों ने समझा कि हिन्दुस्थान में ईसाइ धर्म सहज ही फैल जायगा। इसी कल्पना के भरोसे उन्हों ने धर्म के सम्बन्ध में विशेष प्रयत्न किये। इससे यह बात सहजही मालूम पड़ती है कि हिन्दू धर्म की रक्षा करने में ब्राह्मणों ने कितना भारी काम किया है। जो लोग इस बात का प्रतिपादन किया करते हैं कि ब्राह्मणों ने अन्य जातियों पर अपना प्रभाव जमाकर देश को हानि पहुँचाई है उनके लिये मलबार की यह कार्रवाई ध्यान में रखने योग्य है। इससे यह अनुमान निकलता है कि यदि हिन्दुस्थान में ब्राह्मण धर्म की रक्षा करने का काम न करते तो इस समय सारा देश मुसलमान अथवा ईसाइ होगया होता।

अरब के 'शहर' नामक स्थान में पेरुमाल राजा की क़बर है। यह बात नहीं कि इस समय मापला जाति में अरब वालों का अधिक रक्त हो; यह जो अर्ध-बिटुल प्रजा हुई उसका विस्तार अब तक जारी है। अपने जहाज़ों पर मुसलमान ख़लासी रखने के लिये कालिकोट के सामुरी, हिन्दू बालकों को मुसलमान बनाकर उनकी संख्या बढ़ाया करते थे। इन मुसलमानों ने हिन्दुओं की बहुत सी रीतियाँ ग्रहण की हैं। ये सब प्रायः सुन्नी सम्प्रदाय वाले हैं॥

५—मलबार के ईसाइ।

इनके सिवाय मलबार में महत्व की दृष्टि से दूसरा नम्बर ईसाइयों का है। कहा जाता है कि मलबार में सेंट टॉमस नामक साधू ने ईसाइ धर्म चलाया; इसलिये वहां के ईसाइ 'सेंट टॉमस क्रिश्चियन्स' भी कहलाते हैं। परन्तु उनका मूल निवास-स्थान सीरिया था; इस लिये वे सीरियन भी कहे जाते हैं। पुराने ज़माने में सीरिया के ईसाइ व्यापार करने के लिये हिन्दुस्थान में आते थे; मालूम पड़ता है उन्हीं ने यहां अपना धर्म फैलाया होगा। यह निश्चित नहीं है कि कौन धर्म के लोग यहां पहले आये; तथापि सन् १००० ई० तक भिन्न भिन्न

पन्थ के ईसाइ लोग यहां आकर अपना अपना मज़हब स्थापित कर रहे थे। जब पोर्तगीज़ लोग यहां आये तब उन्हीं में वे सब मिल गये। सन् १५९८ ई० में अलेक्सिस मेनेज़िस को पोप ने गोआ का बिशप नियुक्त कर यहां भेजा। इसके बाद सन् १६४३ ई० में डच लोगों ने कोचीन शहर पर अधिकार किया। तब से प्रॉटस्टैण्ट पन्थ की उन्नत्ति हुइ। मतलब यह कि मलबार के ईसाइयों को जो महत्व प्राप्त हुआ वह अन्यत्र के ईसाइयों को नहीं। हिन्दुस्थान के सब रोमन कैथलिक पोप के अधिकार में हैं। मङ्गलूर में जो बेसल जरमन मिशन है वह प्रॉटस्टैण्ट है; उसने बहुत से उद्योग धन्धों को प्रचलित किया है॥

६—महामख समारम्भ।

मलबार में 'कोलम' नाम की वर्ष-गणना जारी है। यह कोलम गणना २५ अगस्त सन् ८२५ ई० से शुरू हुइ। इसे 'आचार्य-वागभेद्या' भी कहते हैं। इस नाम से मालूम पड़ता है कि इसे शङ्कराचार्य ने आरम्भ किया होगा। दूसरी एक ऐसी कल्पना है कि मलबार का अन्तिम राजा 'चेरमाण पेरुमाल' सन् ८२५ ई० के लगभग राज्य छोड़ कर मक्के को गया। उसी समय कुछ उलट फेर होकर यह वर्ष-गणना आरम्भ हुई होगी।

मलबार में पहले से ही प्रति बारह वर्षों में नया राजा चुनने के लिये एक बड़ा समारम्भ होता था। उसे 'ओनम्' अथवा महामख कहते थे। सन् १७४३ ई० तक यह समारम्भ जारी था। तब से वह बन्द होगया। उस समारम्भ में सब कुट्टम सभा के सभासद् और राज्यों के सब छोटे बड़े लोग उपस्थित हुआ करते थे; और वहां राज्य की सब बातों पर विचार हुआ करता था। सत्रहवीं सदी के अन्त में कप्तान अलेक्ज़ण्डर हेमिल्टन मलबार में था। उसने इस समारम्भ की आँखों देखी हक़ीक़त लिखी है। मलबार के राजा का नाम ज़ामोरी (सामुद्री, सामुरी) था। नियम था कि ज़ामोरी बारह वर्षों तक राज करे। यदि बारह वर्ष पूरे होने के पहले वह मर जाय तो ठीकही है, किन्तु यदि न मरे तो उस के विषय में यह नियम था कि बड़े समारम्भ के साथ सब के सामने वह अपना सिर काट डाला करे। उस समय बड़ा भारी जलसा किया जाता था। उस में सब सर्दार और सज्जन गृहस्थ बुलाये जाते, तथा बड़ा भारी भोज दिया जाता था। भोज के पश्चात् सब की आज्ञा लेकर राजा वध-स्तम्भ के पास जाता था; वहां सबके सामने वह स्वयं अपनी गर्दन काट डाला करता था। इसके बाद उपस्थित लोग बड़ी धूम धाम के साथ उसकी लाश जलाया करते

थे। दहन-क्रिया होने पर वे फिर सब इकट्ठे होकर नया राजा चुनते थे। अलेक्ज़ण्डर लिखता है कि, "यह पुरानी चाल थी, किन्तु इस समय यह बन्द है। इस समय का यह रिवाज़ है कि प्रत्येक बारह वर्ष में सब राज्यों में एक बड़ा महोत्सव किया जाता है; एक बड़े मैदान में विस्तृत मण्डप बना कर जगह तैयार की जाती है। वहां दस बारह दिनों तक ख़ूब उत्सव होते रहते हैं; रात दिन बाजे बजते रहते हैं। बारहवें दिन जमे हुए लोगों में से कोई भी चार मनुष्य तीस चालीस हज़ार फ़ौज की क़तार को चीर कर मण्डप में बैठे हुए सामुरी को मारने के लिये दौड़ते हैं। उन में से जो आदमी सामुरी को मार डालता है उसे ही आगे राज्य मिलता है। सन् १६९६ ई० में जो महोत्सव हुआ उसमें यह हेमिल्टन शामिल था। उस समारम्भ का स्थान कालिकोट के दक्षिण ४० मील पर समुद्र के किनारे पोनानी में था। उस समय केवल तीन आदमी फ़ौज में घुसे, और उन्होंने बहुतों को मार डाला, किन्तु अन्त में वे सब तलवार से मारे गये। उनमें से एक का भतीजा पास ही था, वह उसी दम दौड़ कर सामुरी के तम्बू में पहुँचा, और सामुरी पर वार किया, परन्तु उसका वार ख़ाली गया। इतने में ही रक्षकों ने उसे मार डाला। उस

अवसर में दो तीन दिनों तक तोपों की आवाज़ बराबर होती रही थी।"

मलबार के इतिहास के दो ग्रंथ केरलमाहात्म्य और केरलोत्पत्ति नामक हैं। इनमें से पहला संस्कृत में और दूसरा मराठी में है। ऊपर हेमिल्टन की दी हुई हक़ीक़त से केरलमाहात्म्य के वर्णन में फ़रक़ है। अर्थात् माहात्म्य में राजा को मार डालने की बात का उल्लेख नहीं है। उसमें केवल यही लिखा है कि बारह वर्ष बीतने पर राजा अपनी इच्छा से राज छोड़ दे, और लोग दूसरा राजा चुन लें। बम्बई के गवर्नर जोनाथन डङ्कन ने भी इस उत्सव का वर्णन लिखा है।*

प्रत्येक बारह वर्षों में वृहस्पति अपनी एक प्रदक्षिणा पूरी कर पुष्य नक्षत्र में आता था तब यह महोत्सव होता था। उस समय पहले की सब व्यवस्था रद्द कर नई शुरू की जाती थी। यह उत्सव पोनानी तालुके के तिरुनावाई नामक स्थान में होता था। कोलम गणना शुरू करने के पहले पेरुमाल राजाओं का जब मलबार में शासन था तब यह महोत्सव शुरू हुआ। अंतिम राजा चेरमाण पेरुमाल मक्के में जाकर मुसलमान हो गया। इससे उत्सव के करने के लिये कोई मुख्य राजा

*Transactions of The Bombay Literary Society.

नहीं रहा। तिरुनावाई गाँव वल्लुवनाड परगने में है, इसलिये उत्सव का काम उसी परगने के राजा पर आ पड़ा। यह व्यवस्था बारहवीं तेरहवीं सदी तक चली। इसके बाद अरब वालों की सहायता से और व्यापार की बचत से कालिकोट का सामुरी मलबार में विशेष प्रबल हो गया। इसलिये सम्पूर्ण केरल देश की ओर से वही इस समारम्भ में मुख्य भाग लेने लगा। उस समय केरल देश में त्रावणकोर का भी समावेश होता था, इसलिये वहां का राजा भी सामुरी का ही माण्डलिक हुआ। सन् १७४३ ई० में अन्तिम उत्सव होने के पश्चात् त्रावणकोर राज्य मलबार से स्वतन्त्र हो गया, तब से आज तक वह स्वतन्त्र ही है। कितने ही राजा सामुरी की प्रभुता स्वीकार नहीं करते थे। इस समय कालिकोट में सामुरी का वंश है। उनके पुरुषों की आज्ञा ले कालिकोट के सब दफ्तर खोज कर मिस्टर लोगन ने सन् १६८३ ई० के महा-मख का वर्णन लिखा है। उसका यह मतलब है कि 'यह महोत्सव २८ दिनों तक होता रहा। उसके लिये कई महिने पहले से तैयारी चल रही थी। सब लोगों को निमन्त्रण पत्र भेजे गये थे। अच्छे मुहूर्त में राजा ने वहां प्रयाण किया। उसकी छावनी बीच में थी, और आस पास सब माण्डलिक राजाओं की छावनियाँ थीं। पोनानी

नदी पर इस समय रेलगाड़ी चलती है। वहां से यह जगह नदी के उत्तरी किनारे पर दिखाई पड़ती है। दस दिनों तक सब सेनाओं का निरीक्षण हुआ। इसके बाद सब प्रान्तों की फ़ौजों ने आकर सामुरी की सलामी की।

सिंहासनासीन होनेकी विधि बड़ी ही विलक्षण होती थी। उस दिन राजा पके हुए भात का एक बड़ा ढेर सामने रख कर बैठता था। पहले इस में से खुद थोड़ा भात खा कर उपस्थित लोगों को थोड़ा थोड़ा प्रसाद बाँटता था। जो मनुष्य उस प्रसाद को ले लेता था वह मानो राजा के जीव के लिये अपना प्राण देने की कसम खा चुका। वे लोग इस कसम का पालन ठीक रीति से किया करते थे। नवमीं सदी के मुसलमानी ग्रन्थों में इस रीतिका वर्णन दिया गया है। बहुत से राजाओं के पास इस प्रकार जान के लिए जान देने वालों की बड़ी संख्या रहती थी। मलबार में जो मापला नाम के मुसलमान थे उन्हों ने इस चाल को स्वीकार किया। ये मापला बड़े करारे होते हैं; अङ्गरेज़ी हुकूमत में भी उन्हों ने अनेक दङ्गे किये हैं। उन दङ्गों में प्राणों की परवाह न कर उन्हों ने अङ्गरेज़ी सङ्गीनों के वार झेले हैं। अब वे ग़रीब हो गये हैं; लड़ाई का काम रहा नहीं, और संख्या बढ़ गई है; इसलिये वे एकदम हताश और निरुपद्रवी हो गये हैं।' (Logan.)

७—कालिकोट के सामुरी।

जब चेरमाण पेरूमाल मुसलमान हो कर अरब को गया उसने अपने राज्य के दो भाग किये—पहला उत्तर कोलत्तीरी अर्थात् मलबार, और दूसरा दक्षिण कोलत्तीरी अर्थात त्रावणकोर। कुछ दिनों तक ये राज्य बराबर चलते रहे। परन्तु माण्डलिक (अधीनस्थ) राजाओं पर उनका शासन अच्छा नहीं जम सका। आठवीं सदी में एरनाड नामक नायर परगने का मालिक सामुरी (अर्थात् सामुद्री, जिसे पश्चिमी ग्रन्थ-कर्ताओं ने ज़ामोरिन लिखा है) नामक था। उसके कुटुम्ब का उपनाम 'इरादी' था। जब जब पेरूमाल के विरुद्ध राष्ट्रकूटों के हमले होते थे तब तब यह सामुरी उसकी मदद करता था, इससे उसका महत्व बहुत बढ़ गया। जब पेरूमाल चला गया तब इसने राज्य का विस्तार बहुत बढ़ाया। विशेष कर समुद्र में आना जाना होने के कारण उसका बड़ा रोब जम गया। इतना प्रभावशाली होने पर उसने "कुन्नल-कोन" अर्थात् 'गिरिसागरपति' की पदवी धारण की। पोलनाड परगने को जीत कर उसने उसे अपने राज्य में मिला लिया। यह पोलनाड परगना कालिकोट के आस-पास का प्रदेश था। इस प्रदेश के कालिकोट नगर को

उसने अपनी राजधानी बनाया, और उस प्रान्त को अच्छी तरह दृढ़ किया। वहां पर विदेशी व्यापारियों को उसने अच्छा आश्रय और उत्तेजन दिया, इसलिये कालिकोट की बहुत ही तरक्की हुई। तीन चार सौ वर्षों तक अरब के मुसलमानों के हाथ में पूर्व की ओर का सब व्यापार रहा। इस अवधि में सामुरी ने उनकी अच्छी सहायता कर अपना व्यापार बढ़ाया। यही नहीं, बल्कि अरबवालों ने उसे बढ़िया अरबी घोड़े और फौज़ देकर नये प्रदेश जीतने में भी मदद पहुँचाई। यही कारण है कि जिस समय पोर्तगीज़ लोग कालिकोट में आये उस समय उन्हें वहां अरबवालों का विशेष महत्व दिखाई पड़ा। पेरुमाल के चले जाने पर कुछ दिनों तक महामख समारम्भ करने का मुख्य मान वल्लुवनाड के राजा को मिलता रहा। इसके बाद वह मान सामुरी को मिलने लगा। सामुरी ने कोचीन के राजा का बहुत प्रदेश जीत लिया। सन् १२९२-९३ ई० में घूमते फिरते मार्कोपोलो मलबार में आया। उस समय उसे वहां बारह राज्य दिखाई पड़े। उनमें से बड़े राज्य की फौज़ पचास हज़ार और छोटे राज्य की पाँच हज़ार थी। उस समय विजयनगर का राज्य बहुत प्रबल था। सामुरी का प्रभाव विशेष कर चौदहवीं सदी में बढ़ा। सन् १४८२ ई० में अब्दुलरज़ाक नामक एक प्रवासी ने लिखा है

कि, "कालिकोट में न्याय बहुत सुन्दर होता है। सब के जानमाल सुरक्षित हैं। अमनचैन इतना है कि बड़े बड़े व्यापारी खूब क़ीमती माल दूर देशों से लाकर यहां के बाज़ार में खुले रास्ते रख देते हैं। उस माल की कोई ख़बरदारी करने वाला भी न हो तो भी माल चुरा जाने का डर नहीं रहता। वहां किसी का पहरा भी नहीं रहता। जकात या चुंगी के नाके के अधिकारी उस माल को अपने अधिकार में रख लेते हैं, और यदि वह माल बिक गया तो उस पर सैकड़ा २॥) रुपया महसूल लेते हैं। यदि वह माल न बिका तो वे अकसर उसे उसके मालिक के सुपुर्द कर देते हैं।" इस प्रकार की व्यवस्था होने के कारण ही प्रजा सन्तुष्ट थी, और राज्य की उन्नति थी। कहावत प्रसिद्ध है कि कालिकोट शहर की महिमा भी इसी प्रामाणिकता के कारण बढ़ी हुई थी। पूर्वी किनारे का एक बड़ा व्यापारी जहाज़ में सोना लाद कर प्रवास कर रहा था। रास्ते में सोने के बोझ से जहाज़ डूबने का भय था इसलिये वह व्यापारी अपना जहाज़ कालिकोट में लाया, और बहुत सा सोना धरोहर की तौर पर सामुरी के सुपुर्द कर चला गया। बहुत दिनों तक व्यापार करते करते वह अपने घर चला गया, और बहुत दिनों के बाद अपना सोना लेने के लिये फिर

कालिकोट में आया। सामुरी ने उसका सब सोना उस के हवाले किया। इस व्यवहार से व्यापारियों में सामुरी की बड़ी प्रसिद्धि हो गई।

जब पोर्तगीज़ लोग पहले पहल मलबार में आये तब बहुतेरे राजाओं ने समझा कि अरबी व्यापारियों के समान ये भी कोरे व्यापारी होंगे। उस समय किसी को इस बात का सन्देह नहीं हुआ कि व्यापार बढ़ाने के साथ ही साथ अपने धर्म का प्रचार करने और राज्य की स्थापना करने का भी भीतरी उद्देश इनके मन में है। हज़ारों वर्ष से किसी ने इस प्रकार का प्रयत्न भी नहीं किया था। परन्तु पश्चिमी किनारे के राजाओं ने इस बात का विचार नहीं किया कि जिस समय पोर्तगीज़ लोग हिन्दुस्थान में आये उस समय संसार में कैसे २ राजनीति के दावपेंच हो रहे थे, और उनके कारण संसार में कैसा उलट फेर हो रहा था। कोचीन का राजा सामुरी के वैभव से जल रहा था। इससे मालूम पड़ता है कि कोचीन के राजा ने समझा होगा कि अरबी लोगों से सामुरी को जो वैभव प्राप्त हुआ है वह मुझे पोर्तगीज़ लोगों की मदद से प्राप्त होगा। इसलिये पोर्तगीज़ों से मित्रता कर सामुरी को नीचा दिखाने का विचार कोचीन के राजा के मन में उत्पन्न हुआ होगा। भीतरी दुश्मनी

तो थी ही, इसलिये मलबार के राजाओं ने समझा होगा कि इन परदेशी व्यापारियों से हमारा लाभ ही होगा, और इनके व्यापार से हमारी उन्नति ही होगी। अतएव किसी प्रकार का सन्देह न कर उन्होंने पोर्तगीज़ और अन्य व्यापारियों को ख़ुशी से अपने राज्य में आश्रय दिया।

डच लोग व्यापार में बड़ा ज़ुल्म किया करते थे। वे निश्चित कर लेते थे कि अमुक माल अमुक भाव से ही बेचना होगा, परन्तु अङ्गरेज़ों की ऐसी रीति नहीं थी। वे ख़ुद भाव न ठहरा कर बाज़ार भाव से चीज़ें बेचा करते थे। मलबार में अङ्गरेज़ों का प्रवेश सन् १६६४ ई० में हुआ। उस समय वहां जो राजा थे उनसे थोड़े थोड़े व्यापार के हक़ अङ्गरेजों ने प्राप्त किये। विशेष कर वहां के राजाओं से उन्हों ने करार करा लिया कि कालीमिर्च हमीं लोगों के हाथ सब बेंची जाय, दूसरे किसी को न दी जाय। पहले पहल अङ्गरेज़ों ने इस राजा से सालाना ठेके का करार किया था। इसके बाद धीरे धीरे अङ्गरेजों का अधिकार बढ़ता गया, और उन्होंने उसे अपने अधिकार में कर पेंशन नियुक्त कर दी। कालिकोट का अन्तिम राजा मनविक्रम सामुरी सन् १८९६ ई० में मरा। उसे अङ्गरेज़ों ने 'महाराजा बहादुर' की पदवी दी थी। इस समय वहां के राजा की सालाना पेंशन एक लाख चौबीस हज़ार है॥

चौथा प्रकरण ।

पोर्तगीज़ राज्य की स्थापना ।

(सन् १५१५ तक)

इस प्रकरण का वर्णन समझने के लिये पोर्तगाल के निम्न लिखित राजाओं का नाम जानना अच्छा होगा ।

पहला जॉन (सन् १३८५-१४३८)।

पेड्रो — प्रिंस हेनरी (ज० १३९४, मृ० १४६०)।

पाँचवां आलफांज़ो (स० १४३८-१४८१)।

दूसरा जॉन (स० १४८१-१४९५)।

इम्येन्युअल (स० १४९५-१५२१)।

तीसरा जॉन (स० १५२१-१५५५)।

सबश्चन (स० १५५५-१५८०)।

सन् १५८० ई० में स्पेन और पोर्तगाल के राज्य एक हो गये।

१—यूरोप में पोर्तगाल का उदय।

यूरोप के नैऋत्य कोण में जो प्रायद्वीप है उसका नाम आयबीरिया है। उसमें पोर्तगाल और स्पेन दो देशों का समावेश होता है। इस प्रायद्वीप में सन् ई० के पहले ११०० के लगभग टायर के फिनिशियन लोगों ने आकर अपनी बस्ती बसाई, और वहां पूर्व की वस्तुएं लाकर बेचने का व्यापार आरम्भ किया। आफ्रिका के

उत्तर किनारे पर कार्थेज में फिनिशियन लोगों ने ही राज्य स्थापित किया था; उन्हीं में से कुछ लोग जाकर आयबीरिया में बस गये। कार्थेज के सरदार हासड्रुबाल ने न्यूकार्थेज अर्थात् वर्तमान स्पेन देश का कार्थेजिना शहर बसाया। आगे चल कर रोमन लोग प्रबल हो गये, इस लिये सन् ई० के २०० वर्ष पहले के लगभग कार्थेजियन और फिनिशियन लोगों से उन्होंने उक्त देश को जीत लिया। तबसे ४७० ई० तक यह देश रोमन लोगों के अधिकार में रहा। और उसका नाम उन्होंने हिस्पाँनिया रक्खा। आगे चलकर विज़िगॉथ लोगों ने रोमन लोगों को पराजित कर स्पेन देश में अपना राज्य स्थापित किया। उनका राज्य सन् ४१८ से ७११ ई० तक रहा। उनकी राजधानी टॉलेडो शहर में थी।

सन् ७११ ई० में अरबी मुसलमान सरदार तरीक़ स्पेन देश को मुसलमानी झण्डे के नीचे लाया। यह मुसलमानी शासन ग्यारहवीं सदी के मध्य तक रहा, और फिर स्पेन के क्रिश्चियन लोगों के हाथ में शासन की बागडोर आई। इन क्रिश्चियन लोगों के दो राज्य स्थापित हुए, एक कैस्टाइल और दूसरा ऑरेगान। देश में कुछ मुसलमान बाक़ी रह गये थे उन्हें धीरे धीरे इन दोनों राज्यों ने निकाल दिया। सन् १४६९ में

ऑरेगोन का राजा फर्डिनण्ड और कैस्टाइल की रानी इज़ाबेला का विवाह हो गया, इसलिये ये दोनों राज्य एक हो गये। सन् १६०९ ई० में स्पेन के राजा तीसरे फिलिप ने हुक्म देकर ज़बरदस्ती वहां के बसे हुए मुसलमानों को एकदम देश से निकाल दिया। सच पूछा जाय तो इस हुक्म से स्पेन देश का ही नुक़सान हुआ। केवल व्यापार और कारीगरी के कामों में ही मुसलमान चतुर नहीं थे, बल्कि खेती के काम में भी वे बहुत होशियार थे। उन्होंने स्पेन में चीनी, चाँवल, कपास और रेशम की खेती आरम्भ की थी। यही नहीं बल्कि नहर वग़ैरह खोदकर उन्होंने ज़मीन को खूब कमाया था। इससे स्पेन का कलाकौशल बढ़ गया था, और बाहर भी वहां की चीज़ें ख़ूब बिकने लग गई थीं। मुसलमानों को निकाल देने से स्पेन के व्यापार का जो नुक़सान हुआ उससे अब तक स्पेन सिर उठाने में समर्थ नहीं हो सका है।

यह स्पेन का संक्षिप्त वर्णन हुआ। इस समय जिसे पोर्तगाल कहते हैं वह देश भी मुसलमानों के अधिकार में था। आलफांज़ो हेनरी ने मुसलमानों से जीतकर वहां पर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। सन् ११५८ ई० में लिस्बन शहर जीतकर वहीं पर उसने

अपनी राजधानी क़ायम की। इसके बाद सौ वर्ष तक बराबर युद्ध होते रहे, अन्त में सन् १२७९ में उतनाही पोर्तगाल स्वतन्त्र हो सका जितना इस समय वर्तमान है। इंगलेण्ड के राजा प्रथम एडवर्ड की पोर्तगाल के राजा डेनिस से बड़ी मित्रता थी। इसलिये बहुत दिनों तक इंगलेण्ड और पोर्तगाल दोनों देश मेल मिलाप से चलकर समुद्री विद्या और व्यापार में अगुआ हो गये। सन् १३८६ ई० में इन दोनों देशों में सन्धि हुई। वह विण्डसर की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि के द्वारा निश्चित हो गया कि इन दोनों देशों का स्नेह स्थायी हो। पोर्तगाल के राजा पहले जॉन को 'जॉन दी ग्रेट' कहते हैं। उसने इंगलेण्ड और स्पेन देश से दोस्ती रखकर बड़ी बुद्धिमानी के साथ बहुत वर्षों तक राज्य किया। पन्द्रहवीं सदी और उसके पहले के समय में यूरोप के देशों की भीतरी दशा आज कल के समान नहीं थी। उस समय वहां अनेक छोटे छोटे राज्य और उनके अन्तर्गत अनेक विभाग थे। जिनोआ, वेनिस, फ्लॉरेंस, आदि का महत्व भी उन शहरों से बाहर विशेष नहीं था। पोर्तगाल की स्थिति भी थोड़ी बहुत इसी ढङ्ग की थी। तेरहवीं सदी में पोर्तगाल देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, और दुदैव से सन् १३८५ से

१४२१ तक लगभग डेढ़ सौ वर्ष एक के बाद एक ऐसे पाँच चतुर राजा गद्दी पर बैठे। इन पाँच राजाओं के राज्य-काल में पोर्तगाल देश वैभव के शिखर पर पहुँच गया। इस समय का उस देश का इतिहास इंगलेण्ड से स्नेह, मुसलमानों से द्वेष और छिपे हुए देशों की खोज—ऐसी तीन मुख्य बातों से भरा हुआ है॥

२—नौका-शास्त्र-वेत्ता राजकुमार हेनरी।

(सन् १३९४-१४६०)

जॉन ऑफ़ गांट, ड्यूक ऑफ़ लङ्केस्टर की पुत्री फिलिप्पा पोर्तगाल के राजा पहले जॉन को ब्याही थी। वह रानी बहुत ही चतुर थी। उसका रहन सहन बहुत सादा और स्वभाव धर्मनिष्ठ था। भिन्न भिन्न राज्यों की शत्रुता दूर कर मित्रता जोड़ने में उसने अपनी उम्र बिता दी। उसके आठ लड़के हुए। उन सबों को उसने ऊँचे दर्जे की बढ़िया शिक्षा दी। उनमें से डुआर्ट, पेड्रो, फर्नाण्डो और हेनरी नाम के चार लड़के बहुत नामी हुए। उनमें से सबसे छोटा हेनरी इतिहास में 'नौका-शास्त्र-वेत्ता' के नाम से मशहूर हुआ। सन् १४१२ ई० से ही उसका पराक्रम प्रकाशमान होने लगा। बाप के साथ युद्ध में जाकर उसने विजय प्राप्त की इसलिये राजा ने उसे भिन्न भिन्न ड्यूकों की

जागीरें दीं। पहले से ही राजकुमार हेनरी का ध्यान नौका-नयन की ओर विशेष था। जिब्राल्टर के सामने आफ्रिका के उत्तर किनारे पर स्यूटा नामका एक शहर है। वहां अलेकज़ेण्ड्रिया आदि स्थानों से मुसलमानों का बड़ा व्यापार हुआ करता था। सन् १४१५ में राजकुमार हेनरी ने जहाज़ों का बेड़ा भेज कर उस शहर को अपने कब्ज़े में कर लिया। उस समय सारे यूरोप में उसकी वीरता की वाहवाही हुई। जब से स्पेन में अरब वालों का अधिकार हुआ तबसे वहां हिन्दुस्थान की अनेक क़ीमती चीज़ों की खपत होने लगी थी। परन्तु जब वहां अरब वालों का शासन नष्ट हो गया तब स्पेन वालों को उन चीज़ों को प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होने लगी। इस स्थिति का विचार कर हेनरी ने सोचा कि हिन्दुस्थान जाने का मार्ग ढूँढ़ निकाला जाय, और जो धन मुसलमान वहां से ढोये ला रहे हैं उसे हम लाने लग जाँय; इसी इरादे से उसने समुद्र में कई प्रवास करवाये। सन् १४१८ ई० में सब कुटुम्ब को छोड़कर यूरोप के एकदम नैऋत्य कोण में केपसेगर में एक बँगला बनाकर वहां उसने वेध-शाला स्थापित की, और वहीं वह रहने भी लगा। वहां से उसकी दृष्टि अथाह समुद्र पर पड़ा करती थी। यहां

पर उसने यूरोप से बड़े बड़े पण्डित बुलवाये, और बाहरी मुल्कों की खोज के लिये उन्हें रवाना किया। वह एक ईसाइ संस्था का अध्यक्ष था, इसलिये उसमें जो आमदनी होती थी उसे वह इसी कार्य में लगाया करता था। वह व्यापार और ईसाइ धर्म की वृद्धि एकही उद्योग से करने का प्रयासी था। ज्योतिष और नौका-शास्त्र का अभ्यास कर उसने जो खोज की उसी का फल है कि एशिया, आफ्रिका और अमेरिका के अज्ञात प्रदेश यूरोपियन लोगों को मालूम हुए। उसके भाई पेड्रो ने सन् १४१७ से सन् १४२८ तक सारे यूरोप में घूमकर व्यापार इत्यादि की जानकारी प्राप्त की। उसकी जानकारी भी हेनरी के बड़े काम आई। उस समय आफ्रिका के किनारे से केप 'नन' के आगे यूरोपियन जहाज़ नहीं बढ़ते थे। 'नन' शब्द का अर्थ ही यह है कि 'आगे जाने की सीमा अब बन्द हुई'। हेनरी ने उसके आगे केप बोजाडोर तक के किनारे की खोज की। उसी के पास मदिरा द्वीपों का सन् १४१८ से १४२० तक उसने शोध किया। सन् १४४० से १४५० के बीच अज़ोर द्वीप और केपवर्ड की खोज की गई। पोप को उसने समझा दिया कि ईसाइ मज़हब फैलाने के लिये मैं ये सब प्रयत्न कर रहा हूं।

पोप से उसने इस बात की मञ्ज़ूरी कराली कि बोजाडोर के आगे मैं जो मुल्क ढूँढ़ निकालूं उसपर पोर्तगाल का अधिकार रहे। इस प्रकार १४४१ ई० में पोप ने जो आज्ञा दी थी उसे समय समय पर बाद के पोपों ने भी मञ्ज़ूर किया। इसलिये देश बढ़ाने के विषय में उसी पर यूरोप के राष्ट्रों का दारमदार था।

इस उद्योग का एक मुख्य बीज यह था कि मुसलमानों को नीचा देखाकर ईसाइ धर्म का प्रचार किया जाय। जो नये देश हेनरी के हाथ लगते थे उनसे वह जितने आदमी ला सकता था उतने पोर्तगाल में ले आता था, और उन्हें ईसाइ धर्म की दीक्षा देता था। इसके सिवाय उनके देश के व्यापार की सारी बातें उनसे मालूम कर लेता था। इसी तरह ग़ुलामों का ख़रीद-फ़रोख़ आरम्भ हुआ। इन ग़ुलामों के व्यापार में पोर्तगाल देश को बहुत आमदनी हुआ करती थी। खेती और घर का काम कराने के लिये सभी पोर्तगीज़ लोगों ने अपने पास ग़ुलामों का ज़बरदस्त संग्रह रखना आरम्भ किया था। देश में मुफ्त में काम करने वाले आजाने से उनपर खेती आदि का काम सौंप कर परदेश जाने के लिये पोर्तगीज़ लोगों को फ़ुरसत मिली। किन्तु देश में जङ्गी लोगों की कमी होने से देश की

बड़ी हानि हुई। इसका उस देश पर जो बुरा परिणाम हुआ उसका वर्णन आगे आवेगा। सारांश यह कि नये देशों की मालिकी और वहां की सोना आदि सम्पत्ति यूरोपियनों को प्राप्त हुई। पहले जहाज़ों में बैठकर दूर का प्रवास करने की किसी को हिम्मत नहीं पड़ती थी। किन्तु इसके बाद वह डर निकल गया, और धन-प्राप्ति की आशा से यूरोप के बहुत से लोग पोर्तगीज़ों की छत्रछाया में समुद्र-यात्रा करने लगे, और अनेक धनवान प्रदेशों पर झपाटा मारने लगे। हेनरी के प्रयत्न से बढ़िया खलासी तैयार हुए; उनसे पोर्तगीज़ राष्ट्र को बड़ा लाभ पहुँचा। ऐसे काम कर राजकुमार हेनरी सन् १४६० में मर गया। इसके बाद उसके भतीजे पाँचवें आलफांज़ो, और फिर दूसरे जॉन, ने नई खोज का काम वैसा ही जारी रक्खा।

इस प्रयत्न के कारण हेनरी को इतिहास में 'नेविगेटर' अर्थात् 'नौका-नयन-वेत्ता' की उपाधि मिली है। पहले हज़ारों वर्ष तक केप बोजाडोर के आगे अटलाण्टिक महासागर होकर आफ्रिका के किनारे समुद्र-मार्ग से नीचे कोई नहीं जाता था। यही नहीं बल्कि यूरोपियन लोग समझते थे कि आगे जाना धोखे का काम है, और

साथही निष्फल है। लोग यह भी समझते थे कि अटलांटिक महासागर दक्षिण की ओर से तालाब के समान है, अन्य महासागरों से वह मिला हुआ नहीं है। हेनरी के प्रयत्न से यह बात मिथ्या सिद्ध हुई, और उसने सिद्ध कर दिखाया कि यदि हिम्मत करके कोई आफ्रिका के दक्षिणी सिरे को घूम कर दूसरे महासागर में जाना चाहे तो जाना सम्भव है। यह हेनरी के जीवन की बड़े महत्व की कार्रवाई थी। उसने ४२ वर्ष तक परिश्रम कर दक्षिण में १८ अंश तक नये देशों की खोज की, और भविष्य में खोज करने की पद्धति बाँध दी।

पोर्तगीज़ लोगों को इस समय भी हिन्दुस्थान के राज्य का बड़ा अभिमान है। उसका यही कारण है कि उस समय उन्होंने जो काम किया वह बड़े परिश्रम, बड़े साहस और बड़े ख़र्च का था। उसे सिद्ध करने के लिये बड़ा समय लगाना पड़ा था। इस काम में उन्हें बड़ी अड़चनों का सामना करना पड़ा था। नौका-शास्त्र के इतिहास में उनका विवेचन बड़े महत्व का है। जर्सन डी कुन्हा ने बम्बई का जो वर्णन किया है उसमें निम्न लिखित वर्णन है:—(देखो आगे के पृष्ठ में)।

राजकुमार हेनरी को नई खोज करने के लिये निम्न लिखित कारणों से स्फूर्ति उत्पन्न हुई :

(१) केप बोजाडोर के आगे देश कैसा है, इस बात के जानने की इच्छा ;

(२) यदि उधर के देशों में ईसाइ राष्ट्र और उपयुक्त बन्दर मिलें तो उनके साथ अपने देश का व्यापार बढ़ाया जाय ;

(३) इस बात की खोज करना कि आफ्रिका में मुसलमानों की शक्ति कितनी है ;

(४) यह बात देखना कि उधर कोई ईसाइ राजा मुसलमानों के विरुद्ध हमें मदद देने वाला है या नहीं;

(५) ईसाइ धर्म की वृद्धि करना।

राजकुमार हेनरी के मरने के तीन वर्ष बाद अर्थात् सन् १४६३ ई० में पोर्तगीज़ लोग 'सियरा लिओन' (सिंह की रात की गर्जना) के किनारे तक गये। सन् १४७१ में आफ्रिका के किनारे से भूमध्यवृत्त तक वे लोग गये। सन् १८८४ में कांगो नदी तक उनका प्रवेश हुआ। नये प्रदेश में जाने पर वे लोग धर्मोत्सव किया करते थे। तारीख १९ जनवरी सन् १८८२ ई० को वे लोग 'ला मिना' में उतरे। दूसरे दिन सवेरे एक ऊँचे पेड़ की डाली पर उन्हों ने पोर्तगाल का झंडा लगा दिया।

उस पेड़ के नीचे उन्होंने एक बहुत बड़ा हवन किया; सब ने मिलकर स्तोत्र पाठ किया तथा इस बात की प्रार्थना की कि उस देश के लोगों को ईसाइ धर्म में आने की बुद्धि उत्पन्न हो, और अपने धर्म की उन्नति हो। सन् १४८६ ई० में बार्थोलोमो डिआज़ आफ्रिका के दक्षिण सिरे की खोज लगा कर स्वदेश लौट गया। तारीख ४ मई सन् १४९३ ई० को पोप ने एक लेख प्रसिद्ध कर स्पेन और पोर्तगाल की खोज की सीमा निश्चित कर दी। इस विषय में बहुत आलोचना प्रत्यालोचना हुई है कि पोप को ऐसी आज्ञा देने का अधिकार था अथवा नहीं। किन्तु उस समय कई सदियों तक ईसाइ राष्ट्रों के झगड़े निपटा कर उनमें सन्धि करा देने का काम विशेष कर पोप ही किया करते थे। पोप की आज्ञा सेही सन् ११७९ ई० में पोर्तगाल देश की स्वतन्त्रता कायम हुई थी। इन नये देशों की खोज के विषय में सब मिला कर तीन पोपों के हुक्म हैं। सन् १४५४ ई० में पाँचवें निकोलस ने ऐसा हुक्म दिया था कि चाहे उन विधर्मी लोगों को जीत कर ईसाइ मज़हब में लाओ। दूसरा हुक्म सन १४८१ ई० में चौथे सेक्स्टस ने दिया था कि केप बोजाडोर के दक्षिण में पोर्तगाल ने जिन नये देशों की खोज की है उन पर उसी का अधिकार समझना चाहिये। तीसरा हुक्म

सन् १४९३ ई० में छठवें अलेकज़ेण्डर ने दिया था। इस हुक्म में पोप ने पोर्तगाल और स्पेन के राज्य की मर्यादा निश्चित की थी। क्रिश्चियन राष्ट्र पोप की आज्ञा का पालन किया करते थे, और सोलहवीं सदी के अन्त तक पोप की आज्ञा भङ्ग करने की हिम्मत कोई यूरोपियन राष्ट्र नहीं कर सकता था। यद्यपि पोर्तगीज़ सरकार के अधिकार में हिन्दुस्थान में कुछ अधिकार नहीं थे तथापि पोर्तगीज़ लोग अपने काग़ज़ पत्रों में ऐसी भाषा का व्यवहार किया करते थे कि हिन्दुस्थान देश हमारा है। इसका कारण यही पोप की आज्ञा में है।

राजकुमार हेनरी को पोर्तगाल का राज्य नहीं मिला। उसके बड़े भाई का लड़का पाँचवा अलफांज़ो सन् १४३८ से १४८१ तक गद्दी पर था। उसने बार बार जहाज़ भेज कर ऊपर के कथनानुसार आफ़्रिका के किनारे का खूब पता लगाया। सन् १४८१ ई० में अलफांज़ो मर गया, और उसका लड़का दूसरा जॉन गद्दी पर बैठा। वह भी बड़ा चतुर था। उसके शासनकाल में इस खोज का सच्चा फल पोर्तगाल देश को प्राप्त हुआ। राजा जॉन केवल समुद्र का ही भरोसा करके बैठ नहीं रहा, बल्कि खुश्की के मार्ग से भी उसने बहुत प्रयत्न किये। आफ़्रिका के पूर्वी किनारे पर आफ़्रिकन लोगों का एक प्रबल राज्य

था ; वहां का राजा यूरोप में प्रेस्टर जॉन के नाम से मशहूर था। उसके राज्य में मसालों की पैदाइश बहुत होती थी। पोर्तगाल के जॉन को जब यह बात मालूम हुई तब वह प्रेस्टर जॉन की खोज करने में लगा। इस काम के लिये जॉन ने भूमध्यसमुद्र से और फिर आगे पैदल रास्ते से कितने ही लोगों को इसकी खोज के लिये भेजा। सन् १४८७ ई० में कोव्हिल्हो और पेव्हा नाम के दो होशियार मनुष्यों को उसने पूर्व की ओर भेजा। वे नेपल्स और अलेक्ज़ेण्ड्रिया से कायरो में उतरे। वहां से मुसलमान लोगों के द्वारा आगे के देश की बातें पूछते हुए वे एडन पहुँचे। इसके बाद दोनों कायरो में मिलने का फिर क़रार कर अलग अलग खोज के लिये निकले। कोव्हिल्हो एडन से हिन्दुस्थान की ओर रवाना हुआ और पेव्हा उत्तर की ओर इथिओपिया (अबिसीनिया) की ओर गया।

कोव्हिल्हो एक मुसलमानी जहाज़ में बैठ कर एडन से मलबार किनारे पर कनानूर और कालिकोट में आ पहुँचा। उसे मालूम हुआ कि कालिकोट में सोंठ, मिर्च आदि वस्तुओं की बहुत ही अधिकता है। इसके बाद वह गोआ और ऑर्मज़ में जाकर वहां से वह आफ़्रिका के किनारे सोफला नामक स्थान में उतरा। वहां उसे मेडा-

गास्कर द्वीप का हाल मालूम हुआ, और उससे जाना कि यदि दक्षिण की ओर किनारे किनारे प्रवास किया जाय तो यहां से यूरोप पहुँच सकते हैं। इस बात की जानकारी प्राप्त करके वह फिर एडन से कायरो में आ पहुँचा। वहां यूरोप से राजा जॉन की ओर से भेजे हुए और भी कुछ लोग उसे मिले। वहां उसे मालूम हुआ की पेव्हा मर गया है। तब उसे जो कुछ मालूम हुआ था सब हाल उसने पोर्तगाल को भेज दिया, और आप ऑर्मज़ गया। वहां से एडन जाकर वह इथिओपिया में उतरा। प्रेस्टर जॉन उर्फ़ अलेकज़ेण्डर राजा से वहां उसकी भेंट हुई। प्रेस्टर जॉन ने पोर्तगाल के राजा के विषय में बहुत ही स्नेह भाव प्रकट किया। इस के बाद कोव्हिल्हो वहीं रह गया, किन्तु उसे जो कुछ मालूम हुआ था वह सब उसने पोर्तगाल देश को लिख भेजा। कोव्हिल्हो के प्रवास की यही संक्षिप्त कहानी है॥

३—डिआज़ और कोलम्बस की मुसाफरी।

(सन् १४८७ और ९२)

प्रेस्टर जॉन के देश की खोज करने के लिये जॉन राजा ने दो दल भेजे थे। एक भूमध्यसमुद्र से ज़मीन के रास्ते रवाना हुआ जिसका वर्णन ऊपर हुआ है, और

की परिक्रमा की। इस मुसाफ़री में उसे कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसलिये उस सिरे का नाम उसने 'तूफ़ान का अन्तरीप' रक्खा। वहां से डिआज़ सन् १४८७ के दिसम्बर में लिसबन में जा पहुँचा। उसका वर्णन सुनकर जॉन राजा बहुत संतुष्ट हुआ, क्योंकि आफ़्रिका के दक्षिणी सिरे का अन्त मिल जाने से हिन्दुस्थान पहुँचने का समुद्री रास्ता पाने की आशा दूनी हो गई। इस आनन्द के जोश में राजा ने 'तूफ़ान का अन्तरीप' नाम बदल कर उसका नाम 'केप ऑफ़ गुडहोप,' अर्थात् 'उत्तमआशा का अन्तरीप,' रक्खा।

यहां पर इस बात का वर्णन करना भी आवश्यक है कि इधर कोलम्बस क्या कर रहा था। कोलम्बस जिनोआ का रहनेवाला था। उस समय जिनोआ का राज्य अच्छी उन्नति पर था, परन्तु कोलम्बस को वहां आश्रय नहीं मिलता था। पोर्तगाल के राजा और वहां के लोगों की प्रवासी हिम्मत की तारीफ़ सुन कर सहायता माँगने के लिये वह लिसबन को रवाना हुआ। वहीं पर उसका विवाह हुआ। उसे भूगोल-शास्त्र-सम्बंधी बहुत सी जानकारी भी वहां प्राप्त हुई। इसी प्रकार अटलाण्टिक महासागर में पश्चिम की

ओर से बहती आई हुई अनेक मनुष्यकृत वस्तुएं उसके देखने में आई। इस से उसके मन में कल्पना उत्पन्न हुई कि यदि हम ठेठ पश्चिम की ओर चलते जाँय तो हमें एशिया का पूर्वी किनारा अर्थात् हिन्दुस्थान का पूर्वी किनारा मिल जायगा। उसने पोर्तगाल के राजा से इस प्रवास के लिये सहायता माँगी। राजा ने इस काम में चतुर पण्डितों की एक सभा कर इस विषय में सलाह पूछी। सभा ने दोबार अधिवेशन करके अपनी सम्मति प्रकट की कि कोलम्बस का घटाटोप निरर्थक् अर्थात् पागलपन का है; इसलिये राजा उसे मदद करने में निरुपाय हुआ। इसके बाद पोर्तगालियों ने गुप्तविचार किया कि कोलम्बस से सब बातें पूछ कर हमीं इस विषय में प्रयत्न करें। परन्तु उसकी जानकारी से दूसरे लाभ कैसे उठा सकते थे। इस कुटिलता से दुःखित होकर कोलम्बस सन् १४८४ ई० में गुप्तरूप से लिस्बन छोड़ कर जिनोआ के लिये रवाना हुआ। किन्तु वहां भी उसका आदर सत्कार नहीं हुआ। इसके बाद बहुतसी तकलीफें झेल कर उसने स्पेन के राजा और रानी के पास अपनी सिफ़ारिश कराई। तब रानी इज़ाबेला ने उसे आश्रय देकर उसके कथनानुसार सब व्यवस्था कर दी। अतएव सन् १४९२ ई० के अगस्त

महिने की तीसरी तारीख को कोलम्बस ने पश्चिम् की ओर रवाना होकर अमेरिका का पता लगाया। वहां से जब कोलम्बस लौट आया तब स्पेन के राजा को छट्ठे पोप अलेकज़ेण्डर से नये मिले हुए मुल्क की सनद् मिली। उस सनद् में लिखा था कि 'पहले सन् १४५४ ई० में पोप पाँचवें निकोलस ने आफ़्रिका के दक्षिण के मुल्कों की मालिकी की सनद् पोर्तगाल को दी ही है। अब स्पेन के राजारानी की इच्छा है कि हमने जो नया मुल्क ढूँढ निकाला है उस पर हमारा अधिकार रहे। इसलिये निश्चय किया जाता है कि अज़ोर और केप०हर्ड द्वीप के पश्चिम् में ३०० मील की दूरी पर एक सीधी दक्षिणोत्तर सीमा कल्पित कर उस रेखा के पूर्व की ओर नये, अर्थात् जिस में क्रिश्चियन राष्ट्रों का अधिकार नहीं ऐसे, प्रदेश पर यावच्चन्द्रदिवाकर पोर्तगाल का अधिकार समझा जाय, और उस रेखा के पश्चिम के ओर के प्रदेश पर स्पेन का अधिकार समझा जाय।' परन्तु पोप के ध्यान में यह बात नहीं आई कि यदि एक राष्ट्र पूर्व की ओर और दूसरा पश्चिम की ओर बढ़ता जाय तो कहीं न कहीं दोनों का मुकाबला होवेगा ही। इस बात का ध्यान न रहने से ही उसने ऐसी सीमा निश्चित की, किन्तु इसीलिये पोप की इस आज्ञा से अनेकों

झगड़े उत्पन्न हुए। पहले तो पोर्तगाल और स्पेन में ही झगड़ा हुआ, और ऊपर की आज्ञा में जो ३०० मील की सीमा लिखी थी वह तिगुनी बढ़ा दी गई।

इस तरह यूरोपियन ईसाइ राष्ट्रों ने पृथ्वी के देशों की जो लूट शुरू की थी वह बहुत दिनों तक जारी रही। यह स्पष्ट है कि इन राष्ट्रों ने यह उपद्रव धन के लोभ से किया था; परन्तु इस अनिवार्य धन-तृष्णा को उन्हों ने धर्म के पर्दे में छिपा रक्खा था। अपहरण-बुद्धि का समर्थन करने के लिये बेचारे क्रिश्चियन धर्म की खींचतान करने में उसके धर्मगुरुओं ने भी आगा पीछा नहीं देखा। पोप के हुक्मनामे में 'ईसाइ राष्ट्रों के शासनाधिकार में न आये हुये नये देश,' ये शब्द इतने विचित्र हैं कि उनकी आलोचना करना व्यर्थ है। इस हुक्म के अनुसार दोनों राज्यों में सब क़रार निश्चित हुए, और २४ जून सन् १५०६ ई० में उन्हें पोप की मञ्जूरी मिल गई।

पूर्वसमुद्र में पोर्तगीज़ लोगों के इस तरह एक बार घुँस पड़ने पर पोप की आज्ञा भङ्ग कर आगे बढ़ने के लिये अङ्गरेज़ खलासी बहुत दिनों तक हिचकिचाते रहे। इस का कारण और कुछ नहीं, यह पोप का बटवारा ही था। स्पेन और पोर्तगाल के खलासी अङ्गरेज़ खलासियों

को जलडकैत और चोर कहा करते थे, उसका भी यही कारण है। डच लोगों ने पूर्वसमुद्र में घुसकर स्पेन की दुश्मनी का बदला लिया। इसी तरह अङ्गरेज़ों ने पोप के विरुद्ध प्रॉटेस्टेण्ट सम्प्रदाय का प्रभाव स्थापित किया। अङ्गरेज़ों की सोने की अशर्फ़ियां (पौण्ड) पोर्तगाल देश में बहुत चलती थीं; इन सिक्कों को पोर्तगीज़ लोग अपनी भाषा में 'पायरेट' अर्थात् 'डकैत' कहा करते थे॥

४—वास्को डि गामा की पहली सफर।

इधर डिआज़ लौट कर पोर्तगाल पहुँचा और उधर राजा जॉन बीमार पड़कर शीघ्र ही सन् १४९५ ई० में परलोक सिधारा। उसके बाद उसका लड़का इमेन्युअल गद्दी पर बैठा। यह राजा भी चतुर था, इसलिये पहले के अनुभव का उपयोग कर हिन्दुस्थान जाने का जलमार्ग खोजने का काम उसने वैसी ही दृढ़ता से जारी रक्खा। प्रसिद्ध ज्योतिषियों से प्रश्नगणना करा कर उसने इस बात का अभिवचन प्राप्त कर लिया कि इस कार्य में अवश्य सफलता प्राप्त होगी। ख़ास इस काम के लिये उसने तीन जहाज़ बनवाकर और सब प्रबन्ध करके वास्को डि गामा नामक होशियार नाविक को एक सफ़र के

लिये नियुक्त किया। उन जहाज़ों का वज़न १२५ से ३०० टन तक था। वास्को डि गामा के साथ उसका भाई पोलो डि गामा भी इस मुसाफ़री में था। इनके सिवाय कुछ ऐसे ख़लासी भी थे जो पहले डिआज़ की मुसाफ़री में थे। बार्थोलोमो डिआज़ का भाई डिओगो डिआज़ भी साथ था। इस प्रवास में सब मिलाकर लगभग दो सौ मनुष्य थे। इन लोगों की तैयारी का सारा काम खुद राजा ने परिश्रम के साथ किया था। शनिवार तारीख ८ जुलाई सन् १४९७ ई० को ये जहाज़ यूरोप का किनारा छोड़कर पूर्व के लिये रवाना हुए। अक्टूबर नवम्बर के लगभग उन्होंने आफ्रिका का दक्षिण किनारा पार किया। वहां उन्हें तूफ़ानों से इतनी तकलीफ़ हुई कि गामा के साथी आगे बढ़ने की हिम्मत न कर सके; यही नहीं, बल्कि वे गदर मचाने लगे। ऐसी दशा उपस्थित होनेपर गामा ने सब को ख़ूब धमकाया और डराया, तथा कई बलवाई अफसरों के क़ैद कर लिया। ऐसा बन्दोबस्त कर वह आगे बढ़ा, और क्रिस्ट्मस् डे अर्थात् दिसम्बर की २५ तारीख़ को उन्हें किनारे की ज़मीन मिली। उसका नाम उन्होंने नेटाल (अर्थात ईसा मसीह का जन्म दिन) रक्खा। उस देश का नेटाल नाम अब तक चल

रहा है। सन् १४९८ ई० के मार्च महिने में वे लोग मोज़ाम्बिक में पहुँचे। रास्ते में उन्होंने मुसलमानों की एक नौका पकड़ी, उसमें बम्बई की तरफ़ का एक मुसलमान दलाल भी था। उसे इधर के रास्ते और व्यापार का बहुत कुछ हाल मालूम था, इसलिये उसकी जानकारी से गामा ने अच्छा फ़ायदा उठाया। उस मुसलमान का नाम दावने (Davane) था। दलालों के स्वराष्ट्रद्रोह के कारण ही अनेक मौकों में गामा का काम निकला है। आफ़्रिका के किनारे के अरबी मुसलमान अफ़सर पोर्तगीज़ लोगों को पहचानते थे। वे जानते थे कि यदि ये लोग इधर आवेंगे तो हमारे हाथ का व्यापार नष्ट होकर हमारी सर्वस्व हानि होगी। इसलिये गामा का नाश करने के लिये उन्होंने अनेक प्रयत्न किये। परन्तु इस देश के लोगों ने उसे सावधान कर दिया, इसलिये उसकी रक्षा हो गई।

इस तरह गामा मोज़ाम्बिक तथा मोम्बासा आदि स्थानों से मलिन्द (?) में आया (अप्रैल, १४९८)। मलिन्द के राजा ने उसका ख़ूब आदर सत्कार किया। इसी राजा ने उससे कहा कि तू खम्बात को न जाकर कालिकोट को जा। दावने को भी उसने उपदेश दिया कि तू पोर्तगीज़ों से ईमानदारी का बर्ताव कर। मलिन्द में ३

महिनों तक रहकर गामा ने अपने जहाज़ों की दुरस्ती की, और आगे के समुद्र का हाल जानने वाले कुछ होशियार नाविकों को साथ लेकर वह ६ अगस्त को हिन्दुस्थान के लिये रवाना हुआ, और बीस बाईस दिनों के बाद कालिकोट बन्दर के पास उसने अपने जहाज़ों का लङ्गर डाला। पोर्तगीज़ लोगों को हिन्दुस्थान आने का समुद्र-मार्ग मालूम होगया, इसलिये उस समय उनकी वैसी ही स्थिति हुई जैसे 'भूखे भेड़ियों का झुण्ड बढ़िया भेड़ों के झुण्ड पर जा गिरता है'। हज़ारों वर्ष के व्यापार से धनवान बना हुआ देश उनकी आँखों के सामने आया। उस समय कालिकोट, ऑर्मज़, एडन और मलाका व्यापार के बड़े शहर थे। इन बन्दरों से इधर की चीज़ें अरबवाले अपने जहाज़ों के द्वारा यूरोप को पहुँचाया करते थे। मलाका के मसाले और आबनूस, टिमोर के चन्दन, बोर्नियो का कपूर, सुमात्रा और जावा का सुगन्धी गोंद (benzoin); कोचीन चाइना की अगर तथा मुसब्बर की लकड़ी (aloes wood); चीन, जापान और श्याम के इत्र, गोंद, मसाले, रेशम और खिलौने; पेगू के रत्न; कारोमण्डल किनारे के बढ़िया बारीक कपड़े; बङ्गाल के क़ीमती कपड़े; नेपाल और भूटान के स्पिकेनार्ड का (spikenard?) सुगन्ध,

गोलकुण्डे के हीरे; निर्मूल के फ़ौलाद; सीलोन के मसाले पन्ने और मोती; मलबार के मसाले और सागोन; खम्बात के लाख, कलाबत्तू और जवाहिर; काश्मीर के शाल और नक्काशी के बरतन; सिन्ध का गोंद (bdellium?); तिब्बत की कस्तूरी; खुरासान की वनस्पति (galbanum?); अफ़ग़ानिस्तान का कत्था; ईरान का गोंद (sagapenum?); ज़ंजीबार, बर्बर और शहर का अम्बर, हाथीदांत, पाच, सुगन्धी द्रव्य आदि पदार्थों का लेनदेन कालिकोट बन्दर में हुआ करता था।*

---

*इधर की अनेक खोजों से हिन्दुस्थान की प्रचीन सभ्यता की सच्ची हक़ीक़त प्राप्त हो रही है। यह बात अधिक अधिक दृष्टिगत होती जा रही है कि हिन्दू लोग प्रजासत्तात्मक-राज्य-व्यवस्था, परदेशों से व्यापार तथा नौका-नयन-कुशलता आदि अनेक महत्व की कामों में प्राचीन काल से प्रवीण थे। हिन्दू लोग नौका-नयन-शास्त्र में कुशल थे, उनके पास बड़े बड़े जहाज़ थे; उन जहाज़ों के द्वारा वे बहुत दूर तक बड़े बड़े समुद्रों में सफ़र किया करते थे; दसवीं सदी तक इस काम में उनकी बराबरी करने वाले दूसरे लोग नहीं थे। पूर्व की ओर चीन जापान तक और पश्चिम की ओर आफ्रिका के सम्पूर्ण पूर्वी किनारे पर हिन्दू व्यापारियों का सञ्चार था। जावा, बोर्नियो, सुमात्रा इत्यादि द्वीपों में हिन्दुओं ने बड़े बड़े उपनिवेश (कालोनीज़) स्थापित किये थे; इसी तरह एडन, सोकोत्रा, मोज़ाम्बिक आदि सभी जगहों में उनका प्रवेश था। जावा इत्यादि द्वीपों के मन्दिर, पुरानी इमारतें, वहां के लोगों के धर्माचार और रीति रिवाज़ सब हिन्दू लोगों के समान हैं; पश्चिम की ओर अरब स्थान से पूर्व की ओर चीन देश तक आधे से अधिक एशिया खण्ड में उस तरह की सभ्यता हिन्दुओं ने ही पहुँचाई थी। इस प्रकार की जानकारी आजकल हुई है (बॉम्बे गेज़ेटियर की पहली

उस समय कालिकोट शहर सचमुच बड़ी उन्नति पर था। वहां के राजा को ज़ामोरिन अर्थात् सामुद्री कहते थे। वहां का व्यापार क़रीब ६०० वर्ष से अरबी मुसलमानों के अधिकार में था। मक्का और कायरो शहर के धनवान व्यापारियों के बड़े बड़े जहाज़ अरबसमुद्र में बराबर घूमा करते थे। हिन्दुस्थान की चीज़ें मिसर देश से होकर यूरोप को पहुँचाने का सारा ठेका अरबवालों के अधिकार में होने के कारण वे व्यापारी बहुत ही धनवान और प्रभावशाली हो गये थे। उन्हें इन पोर्तगीज़ लोगों का यहां आना पसंद न आया। पोर्तगीज़ लोगों को इधर आने देने से क्या क्या बुराइयां पैदा होंगी वे अच्छी तरह जानते थे और यहां से

खिल्द,—गुजरात के इतिहास में जावा और कम्बोडिया पर अन्त में दो लेख हैं उनमें यह सब बात लिखी हुई है)। गुजरात, काठियावाड़, सिन्ध, मालवा, पञ्जाब आदि प्रान्तों से बहुत से लोग जावा तथा अन्य द्वीपों में जाते और वहां उपनिवेश क़ायम कर रहते थे। हिन्दुस्थान के से सिक्के जावा द्वीप में मिले हैं। दोनों ही प्रकार के सिक्कों को मूर्त्तियां और उनकी खुदाई का काम हूबहू एकसां है। गुजरात किनारे की ऐतिहासिक जानकारियों से मालूम होता है कि दो हज़ार वर्ष के पहले इस किनारे के लोगों ने नाविक विद्या में कौशल्य दिखाकर पश्चिमोत्तर भारत के लोगों को मलय द्वीप समूह में लेजाकर वहां उनका बढ़िया उपनिवेश बसाया था। हिन्दुस्थान के लोग भी व्यापार, उपनिवेश और धन कमाने के उद्देश से समुद्र का प्रवास कर दूर देशों को जाते थे॥

उनकी जड़ काटने के लिये उन्होंने अतिशय प्रयत्न किया। परन्तु वास्को डि गामा भी बड़ा चतुर होने से मुसलमानों के सब प्रयत्नों पर उसने पानी फेर दिया। पहले ही उसने अफ़वाह उड़ा दी कि पोर्तगीज़ लोगों का एक बड़ा जहाज़ी बेड़ा प्रवास में निकला है; हमारे जहाज़ उसी के अन्तर्गत हैं; हमारा उनका साथ छूट गया है; इसलिये उनको खोजने के लिये हम इधर आये हैं; बाकी हिन्दुस्थान आने का हमारा विचार नहीं है। गामा चाहता था कि एकदम किनारे पर उतरकर कालिकोट के राजा से भेंट करें; परन्तु दावने ने उसे सावधान कर कहा कि राजा की ओर से कुछ आदमियों को धरोहर माँग कर उन्हें अपने कब्ज़े में कर लो तब तुम यहां से बाहर पड़ो। यह बात गामा को भी पसन्द आई। जहाज़ों के पास अनेक नावें सामान बेचने के लिये आया करती थीं। गामा ने अपने आदमियों को ताकीद करदी थी कि नाववाले जो कुछ दाम माँगें वेही उनको दो। इस तरह पोर्तगीज़ लोगों की उदारता की चर्चा सारे शहर में फैल गई। तीन दिन के बाद कालिकोट के राजा ने आदमी भेजकर इस बात की पूछ पाछ की कि 'तुम किस उद्देश से यहां आये हो'। गामा ने दावने को

राजा के पास भेजकर कहला भेजा कि 'खोये हुए जहाज़ों की खोज करने हम यहां आये हैं, अब मसाले वग़ैरह ख़रीद कर लौट जावेंगे'। दावने ने ज़ामोरिन से यह भी कहा कि 'गामा ने मलिन्द के राजा को बहुत सी क़ीमती चीज़ें भेंट की हैं'। इस बात को सुनकर ज़ामोरिन के मुँह में पानी आ गया और उसने आज्ञा दे दी कि 'चाहे जितने मिर्च मसाले तुम मोल ले सकते हो'।

ज़ामोरिन की इस आज्ञा को सुनकर अरबी व्यापारी सन्न होगये। उन्होंने यह ख़बर पश्चिम किनारे के बंदरों के सब व्यापारियों को सुनाई और राज-कर्मचारियों के द्वारा इस बात का प्रयत्न आरम्भ किया कि राजा अपनी आज्ञा लौटा लेवे। उन्होंने राजा के कर्मचारियों से कहा कि "पोर्तगीज़ लोग धनवान हैं; वे केवल व्यापार के लिये इतनी दूर नहीं आये हैं; उनका इरादा है कि इस देश को और यहां की भीतरी दशा को देखकर लौट जावें, और वहां से जङ्गी जहाज़ों का बेड़ा लाकर इसे जीत लें।" इस तरह की बातें कह कर तथा ख़ूब नज़राने देकर उन्होंने राज-कर्मचारियों को अपने वश में कर लिया।

इधर गामा ने भी अपने जासूस और दुभाषियों को भेजकर मुसलमानों की योजना की सारी हक़ीक़त

जान ली। परीज़ नामका एक स्पेन-निवासी मनुष्य मुसलमान होकर कालिकोट में रहता था; उसे दावने ने जहाज़ पर लाकर गामा से मिलाया। यह परीज़ शहर में मुसलमानों से दोस्ती दिखलाता था, और भीतर ही भीतर उनकी सारी गुप्त बातों की ख़बर गामा को देता था। इस प्रकार दावने और परीज़ इन दो विश्वास-घातियों से गामा ने ख़ूब फ़ायदा उठाया। उनके सिखाने से गामा के वक़ीलों ने राजा से मुलाक़ात की, और प्रतिदिन कुछ माल किनारे पर लाकर बेचने और किनारे से कुछ ख़रीद कर जहाज़ों पर लेजाने का लग्गा लगाया। पोर्तगीज़ लोगों ने इस प्रकार का उद्योग आरम्भ किया कि इस व्यापार में घिसघिस बिल्कुल न की जाय, माल की भलाई बुराई न देखी जाय और न वज़न के बारे में तकरार की जाय। इस ढँग को देखकर मुसलमान व्यापारियों ने राजा से कहा: 'ये किसी बुरे अभिप्राय से यहां आये हुए गुप्त जासूस मालूम पड़ते हैं। सच्चे व्यापारी इस तरह नुक़सान उठाकर व्यापार कभी नहीं करेंगे। इसलिये इन्हें मार डालना चाहिये, और इनके जहाज़ इत्यादि जला देने चाहिये'॥

इसके बाद राजा ने जहाज़ों पर अपने शरीर-बंधक (अर्थात् वे मनुष्य जो शर्तें पूरी की जाने के लिए

ज़मानत के तौर पर दूसरे के पास धरोहर रक्खे जाते थे) भेजे। उन्हें वहीं रख वास्कोडि गामा राजा की मुलाक़ात को गया। उस समय उसने बहुत अच्छी पोशाक पहनी थी। उसने अपने साथ बहुत अच्छी २ चीज़ें लेजाकर राजा को भेंट कीं। राजा से मुलाक़ात कर जिस समय गामा लौट रहा था, उस समय अफ़सरों ने भुलावा देकर उसे एक जगह क़ैद कर लिया। अफ़सरों का विचार था कि किसी के द्वारा गामा को चिढ़ाकर उसे कोई ख़राब काम करने में प्रवृत्त किया जाय; परन्तु अपने जासूसों के द्वारा गामा को सब बातें मालूम हो चुकी थीं, इसलिये बड़ी ही शान्ति के साथ वह बर्ताव करता था। उसके विरुद्ध ख़ूब चुग़लियां सुनते २ राजा को भी क्रोध आचुका था, और उसने उसके मार डालने की आज्ञा भी दे दी थी। इसी समय गामा के भाई ने जहाज़ पर जो राजा के शरीर-बंधक धरोहर थे उन्हें वापिस कर दिया, और पोर्तगीज़ों की भलमनसाहत के बारे में राजा को विश्वास करा दिया। इस तरह बड़ी चालबाज़ी के साथ गामा को छुटकारा मिला। इसी बीच उसका सौदा भी समाप्त होचुका था। तब गामा ने परीज़ के द्वारा राजा और सम्पूर्ण मुसलमान व्यापारियों को धमकी दिला

भेजी कि, 'हमें जो इतनी तकलीफ़ दी गई है उसका बदला लिये बिना हम नहीं रहेंगे'; और वह नवम्बर महिने में वहां से वापिस रवाना हुआ। रवाना होने के पहले राजा ने उससे क्षमा माँगी और कहा कि 'अपराधियों को हमने सज़ा दी ही है, इसलिये क्रोध को छोड़कर तुम फिर हमारे देश में आकर व्यापार करो'। गामा के लौटते समय ज़ामोरिन ने पोर्तगाल के राजा के नाम एक पत्र दिया जिसका मतलब यह था कि 'आपके घराने का सर्दार वास्को डि गामा हमारे राज्य में आया इससे हमें बहुत सन्तोष हुआ। हमारे राज्य में दालचीनी, लौंग, सोंठ, मिर्च और जवाहिर खूब हैं; हमारी इच्छा है कि इनके बदले में आपके यहां से हमें सोना, चाँदी, मूँगा आदि पदार्थ मिलें'॥

कालिकोट से निकल कर गामा कनानूर को गया। कनानूर के राजा ने कालिकोट की सब हक़ीक़त सुनी थी, और उसके पास दोनों पक्ष की सिफ़ारिशें आई थीं; इसलिये पोर्तगीज़ लोगों से मित्रता करने का ही उसने निश्चय किया। बन्दर में आते ही राजा ने गामा को बुला भेजा, और साथही पोर्तगाल के राजा से मित्रता और व्यापार की सन्धि की; और उसके द्वारा राजा को [illegible] किया।

गामा ने भी राजा का ख़ूब आदर सत्कार किया। यहां पर उसे इतनी व्यापारी चीज़ें मिलीं कि जहाज़ में जगह न होने से बहुत सी वहीं छोड़ जानी पड़ीं। ये काम कर गामा २० नवम्बर १४९८ ई० को यूरोप को वापिस रवाना हुआ। रास्ते में तूफ़ान चलने के कारण गोआ के पास अञ्ज द्वीप के निकट उसे लङ्गर डालकर ठहरना पड़ा। वहां से निकल कर ८ जनवरी १४९९ ई० को गामा मलिन्द में पहुँचा। वहां के राजा ने उसका ख़ूब आदर सत्कार किया। पहले राजा ने गामा को जो दो ख़लासी दिये थे उन्हें माँग कर गामा अपने साथ यूरोप लेता गया। वहां से २० तारीख़ को गामा फिर चला, और १८ सितम्बर सन् १४९९ ई० को लौटकर फिर लिसबन नगर पहुँचा। रास्ते में उसका भाई पोलो गामा बीमार होकर मर गया। इस हिन्दुस्थान की मुसाफ़री में उस समय ९ से लेकर १२ महिने तक लगे॥

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वदेश लौटने पर राजा ने गामा का ख़ूब आदर सत्कार किया। जिस काम के लिये कई सदियों और पीढ़ियों से प्रयत्न होरहा था उसे सिद्ध होते देख राजा ने अपने को बहुत ही धन्य माना। बड़े ठाठ बाट से राजा ने आगे बढ़कर गामा

से भेंट की, और उसे डॉम (ड्यूक अर्थात् सर्दार) की पद्वी दी। गामा नज़राने की जो चीज़ें लाया था उन्हें देखकर राजा बहुत ही संतुष्ट हुआ। गामा जहाज़ों में जो माल लाया था उसे बेचने पर मालूम हुआ कि इस मुसाफ़री में जो ख़र्च हुआ था उससे साठगुना अधिक फ़ायदा हुआ। उस समय यूरोप में मिर्च प्रति पौंड (क़रीब आध सेर) १ शिलिङ्ग ५ पेंस (एक रुपया एक आना), दालचीनी ३ शि० २ पें० (२ रुपया ६ आना), सोंठ २ शि० १ पें० (एक रुपया ९ आना), जायपत्री ५ शि० ३ पें० (३ रुपया १५ आना), और जायफल १ शि० ९ पें० (१ रुपया ५ आना) के भाव से बिकते थे। राजा ने गामा को बड़े २ पुरस्कार दिये और बड़ी २ जगायें प्रदान कीं॥

इस तरह पोर्तगीज़ लोगों को हिन्दुस्थान का मार्ग मालूम हो जाने से हिन्दुस्थान के इतिहास में बहुत ही उलट फेर हुआ। आगे के इतिहास से मालूम होता है कि कालिकोट के मुसलमान व्यापारियों को उस समय जो भय हुआ था वह आगे चलकर सत्य निकला। यूरोप में पोर्तगाल का महत्व बढ़ गया, और वेनिस तथा जिनोआ आदि राष्ट्रों का व्यापार बैठ गया। जो देश जहाज़ चलाने की विद्या में चतुर थे उनकी उन्नति

हुई। पोर्तगाल के राजा को "इथिओपिया,* अरब, फ़ारस और चीन देशों के व्यापार के, नौकागमन के, और जीते हुए देशों के स्वामी" (Lord of the Conquests, Navigation, and Commerce of Ethiopia, Arabia, Persia and China)—इस प्रकार की भव्य पदवी मिली ॥

५—पेड्रो काब्राल की मुसाफ़री।

(सन् १५०० ई०)

वास्को डि गामा के लौटने पर उसके कहने से पोर्तगीज़ दरबार के लोगों के मन में यह बात बैठ गई कि यदि हिन्दुस्थान का व्यापार अपने अधिकार में रखना हो तो अरब के मुसलमानों से घोर संग्राम करना होगा। इसलिये बड़े बड़े तेरह जहाज़, तोपें, युद्धसामग्री और बढ़िया ख़लासी तैयार कर सन् १५०० ई० में पोर्तगाल के राजा ने पेड्रो काब्राल को कालिकोट भेजा। कालिकोट के राजा को भेंट करने के लिये उसके पास बहुत सी चीज़ें थीं। काब्राल को इस बात की ताक़ीद की गई थी कि वह कालिकोट के राजा के साथ व्यापार की सन्धि करे। इस लवाज़िमे के साथ बार्थोलोमो-

---

*मिसर के दक्षिण में नीग्रो लोगों का जो देश है उसे इथिओपिया कहते हैं।

डिआज़ भी था। सब मिलाकर इस दल में १२०० मनुष्य थे व साथ ही पादड़ी लोग अधिक थे। यह दल ९ मार्च सन् १५०० ई० को पोर्तगाल देश से निकला। केप०हर्ड द्वीप मिलने पर काब्राल के जहाज़ तूफ़ान में फँसकर नैऋत्य की ओर गये। वहां उन्हें दक्षिण अमेरिका के पूर्वी किनारे का ब्राज़िल देश मिला। इसकी ख़बर पोर्तगाल देश को भेजकर काब्राल आग्नेय की ओर झुका। रास्ते में एक बड़ा तूफ़ान आया, जिससे चार जहाज़ डूबे और उनमें के सब आदमी मर गये। इन मरनेवालों में बार्थोलोमेडिआज़ भी था। रास्ते में और भी दो जहाज़ नष्ट हुए। अन्त में बचे हुए सब लोग २ अगस्त को मलिन्द में पहुँचे। मलिन्द से दो जानकार गुजराती ख़लासी लेकर काब्राल आगे बढ़ा, और सबसे पहले घोघो बन्दर के पास आया। वहां से दक्षिण किनारे होकर अञ्ज द्वीप और फिर ३० अगस्त को कालिकोट बन्दर के निकट आ पहुँचा। इस बार पोर्तगाल से हिन्दुस्थान आने में काब्राल को ६ महिने लगे॥

कालिकोट के राजा के शरीर-बंधकों को अपने जहाज़ पर रख काब्राल ने किनारे पर उतर कर राजा से भेंट की। दोनों में मित्रता की सन्धि हुई, और पोर्तगीज़ों

ने वहां अपनी एक कोठी बनाई। इतना होने पर भी मुसलमान व्यापारी उन्हें सामान नहीं मिलने देते थे। दो महिने बीत गये, तोभी पोर्तगीज़ों के दो जहाज़ भी नहीं लद सके। इससे पोर्तगीज़ और मुसलमान जहाज़ों में एक छोटी सी लड़ाई हो गई जिसमें पचास साठ पोर्तगीज़ मारे गये। इसके बाद मुसलमानों के दस जहाज़ डुबाकर कालिकोट का किनारा छोड़ काब्राल दिसम्बर में कोचीन पहुँचा। रास्ते में उसने मुसलमानों के और भी दो चार जहाज़ डुबाये। इस प्रकार अरबी व्यापारी और पोर्तगीज़ों में बहुत दिनों तक झगड़ा चलता रहा, और इन झगड़ों में भिन्न भिन्न पक्ष के लोग शामिल हुए। मुसलमानों को वेनिश्चियन लोगों से मदद मिलती थी। कोचीन के राजा त्रिममपारा ने काब्राल का खूब आदर सत्कार किया, और उसे व्यापारी चीज़ें मोल लेने की स्वतन्त्रता दी। उस समय कोचीन शहर बिल्कुल दरिद्री था, और राजा का वैभव भी थोड़ा ही था; परन्तु राजा की भलमंसी के उपलक्ष में काब्राल ने उसे बचन दिया कि "कालिकोट जीत कर तुम्हें देंगे"। काब्राल ने कोचीन में एक कोठी क़ायम की और उसका अफ़सर बारबोज़ा नामक पोर्तगीज़ व्यापारी को नियुक्त किया। इस प्रकार

परदेश में कोठी क़ायम कर अपने व्यापारी नियुक्त करने और उनके द्वारा यूरोप के माल की बिक्री करने तथा आस पास के प्रान्त में पैदा होने वाले माल को ख़रीद कर यूरोप भेजने के व्यापार की पद्धति बहुत पुराने ज़माने से हिन्दुस्थान में प्रचलित थी । इस समय भी राली ब्रदर्स के समान व्यापारी इसी पद्धति का अवलम्बन करते हैं । इसके बाद काब्राल कोचीन छोड़कर कनानूर को गया । वहां के राजा ने उसके साथ अपना प्रतिनिधि पोर्तगाल को भेजा । शीघ्र ही १६ जनवरी को काब्राल यूरोप के लिये बिदा हुआ । कोचीन के राजा ने जिन नायर लोगों को प्रतिनिधि स्वरूप जहाज़ पर भेजा था उन्हें भी काब्राल अपने साथ यूरोप ले गया । इससे मालूम होगा कि जिस कोचीन के राजा से मित्रता की सन्धि हुई थी उसके साथ काब्राल ने किस प्रकार दुष्टता का व्यवहार किया । कोचीन में जिन यूरोपियन व्यापारियों को उसने नियुक्त किया था उनका भी कुछ प्रबन्ध नहीं किया । तथापि कोचीन के राजाने उनके साथ बहुत अच्छा वर्ताव किया और उन्हें सुरक्षित रीति से वापिस भेजा । जब काब्राल लौट रहा था तब मलिन्द के पास उसका एक जहाज़ चट्टान से टकरा कर टूट गया । इस प्रकार संकटों का सामना करता

हुआ २१ जुलाई सन् १५०१ ई० को काब्राल लिसबन में जा पहुँचा। वह जो चीज़ें ले गया था उनमें दालचीनी, अदरक, सोंठ मिर्च, लौंग, जायपत्री, जायफल, कस्तूरी, Civet, Storax, Benzoin, Cassia, Mastic, मिट्टी के बरतन, होम करने के सुगन्धी पदार्थ, पाच (Myrrh), लाल और सुफ़ेद चन्दन, मुसब्बर, कपूर, अम्बर, Caune, लाख, मूर्त्तियाँ, Anib, Tuzzia, अफ़ीम इत्यादि का नाम लिखा मिलता है॥

काब्राल के लौटने पर पोर्तगाल के राजा ने डि नोव्हा नामक कप्तान के अधिकार में चार जहाज़ देकर उसे हिन्दुस्थान भेजा। उनकी कालिकोट के जहाज़ों के साथ ख़ूब लड़ाई हुई जिस में पोर्तगीज़ लोग विजयी हुए। इस लड़ाई में कोचीन के राजा ने यूरोपवालों की मदद की। कालिकोट के एक जहाज़ पर १५०० बढ़िया मोती, कुछ रत्न और खलासियों के उपयोग में आने वाले ३ चाँदी के यंत्र डि नोव्हा को प्राप्त हुए। ये यंत्र यूरोपवालों को मालूम नहीं थे। यह सब सामान लेकर और माल से जहाज़ों को भर कर डि नोव्हा अपने देश को लौट गया। रास्ते में २१ मई सन् १५०२ ई० को उसे एक नया द्वीप मिला। उस दिन कांस्टन्टाइन दी ग्रेट राजा की माता हेलेना की निधन तिथि थी इसलिये उस द्वीप का नाम

उसने सेंट हेलेना रक्खा। उस समय वहां बिल्कुल बस्ती नहीं थी, और पहचान के कोई जानवर भी नहीं दिखे। डि नोव्हा के पास जहाज़ों में जो बकरी, गधे, सूअर आदि जानवर थे उन्हें उसने उस द्वीप में छोड़ दिये। वहां का पानी उत्तम था, इसलिये जहाज़ वालों को उस द्वीप का बहुत उपयोग होने लगा॥

६—वास्को डि गामा का दूसरा सफ़र।

काब्राल ने जो बातें बताईं उनसे पोर्तगाल के राजा ने समझ लिया कि हिन्दुस्थान के व्यापार के लिये कालिकोट के राजा से भारी युद्ध करने की आवश्यकता है। इसलिये उसने एक ज़बर्दस्त जंगी बेड़ा तैयार किया, और उसका प्रधान सेनापति वास्को डि गामा को बनाया। इस बेड़े में २० जहाज़ थे, और उन में ८०० सैनिक थे। उन्हें उत्साहित करने के लिये इस बात की इजाज़त दे दी गई कि वे खुद मसाले ख़रीद लाकर यहां उन्हें बेंच कर फायदा उठावें। यह बेड़ा सन् १५०२ ई० के मार्च महिने में रवाना हुआ। रास्ते में मोज़ाम्बिक, किल्वा आदि स्थान के राजाओं से कर वसूल कर अगस्त में बेड़ा अञ्जिद्व स्थान को पहुँचा। किल्वा में कई मुसलमान स्त्रियां क्रिश्चियन होने के इरादे से पोर्तगीज़

जहाज़ों पर आईं। उनमें से जिनका विवाह हो चुका था उन स्त्रियों को गामा ने लौटाल दिया, और बाक़ी को रख लिया। मलिन्द से बिदा होकर वे पहले दाभोल, और फिर वहां से अञ्ज द्वीप होते हुए कनानूर के लिये रवाना हुए। रास्ते में हुनावर की खाड़ी में गामा से तिमैय्या नामक समुद्री डाकुओं के नायक से भेंट हुई। गामा ने तिमैय्या का पीछा कर उसके जहाज़ जला डाले। दूसरे दिन उसका बेड़ा भटकल नामक स्थान में आया। भटकल विजयनगर के राजा के अधिकार में था, और वहां बड़ी तरक़्क़ी के साथ व्यापार हो रहा था। वहां के अफ़सरों से ज़बरदस्ती अपने फ़ायदे का इक़रार करालेकर गामा कनानूर में आ पहुँचा। रास्ते में मुसलमानों का क़ीमती माल असबाब से भरा हुआ एक जहाज़ उसने जला दिया। उसमें जो लोग थे वे मरते दम तक पोर्तगीज़ों से लड़ते रहे। कनानूर के राजा से गामा की स्नेह-पूर्वक भेंट हुई, और परस्पर नज़र नज़राने हुए। सब व्यापारियों की सलाह से उन्होंने मालकी ख़रीद फ़रोख़्त का वज़न और दर निश्चित किये। इसके बाद माल की ख़रीद फ़रोख़्त की व्यवस्था कर मुसलमानों के जहाज़ों से और कालिकोट के राजा से बदला लेने के लिये गामा रवाना हुआ॥

कालिकोट के बन्दर में एक भी जहाज़ गामा को नहीं दिखाई पड़ा। ज्योंही गामा वहां दाखिल हुआ त्योंही राजाने यह दिखाने के लिये अपना एक ब्राह्मण वकील उसके पास भेजा कि मैं तुम्हारी शरण आया हूं। उस प्रतिनिधि के द्वारा राजा ने कहला भेजा कि, "तुम्हें विशेष त्रास देनेवाले मुख्य मुख्य दस अरबी आदमियों को मैं तुम्हारे हवाले करता हूं। उन्हें तुम जो चाहो सज़ा दो। इसके सिवाय माल की नुक़सानी के लिये २० हज़ार रुपये भर दूंगा"। गामा ने इस बात को स्वीकार किया, केवल इतने कम अरबी आदमियों का भेजा जाना उसे नहीं रुचा। दूसरे दिन उन दस अरबियों ने अपने छुटकारे के लिये २० हज़ार रुपया देना स्वीकार किया, परन्तु इस पर कुछ भी ध्यान न देकर गामा अपना बेड़ा एकदम शहर के पास ले आया और शहर पर तोपों का मार करना आरम्भ कर दिया। इससे शहर में घबराहट फैल गई। इधर २ बड़े जहाज़ और २२ नावें कारोमंडल किनारे से चाँवल लाद कर बन्दर में आ रही थीं, उन्हें गामा ने पकड़ लिया; उनमें जो उपयोगी सामान था वह उसने छीन लिया और उनमें जो आदमी थे उन सबों के हाथ, कान और नाक उसने कटवा डाले। कालिकोट के राजा की ओर से जो वकील

आया था उस ब्राह्मण की भी गामा ने यही दशा की। इसके बाद उन सबों के पाँव जकड़ कर बाँध दिये गये और सोंटों से उनके दाँत तोड़े गये ताकि दाँतों से वे बन्धन न खोल सकें। तोड़े हुए दाँत उन्हीं के गलों में ठूँसे गये। जिन की यह दशा की गई थी उनकी संख्या अनुमान ८०० के थी। एक जहाज़ पर उन सबों का ढेर लगा उसके ऊपर घास बिछा कर आग लगा दी गई। और ठेल ठाल कर हवा के साथ जहाज़ किनारे के तरफ़ भेज दिया। ब्राह्मण वक़ील को एक दूसरे जहाज़ द्वारा भेजा और सब लोगों के काटे हुए अंग उसी के साथ रख दिये, और राजा को लिख भेजा कि "इन सब की तरकारी बना कर खा"। इस भयानक कार्य से सब लोगों में पोर्तगीज़ों के प्रति अत्यंत द्वेष उत्पन्न हुआ, और वे बदला लेने के विचार में लगे। अम्बोयना द्वीप में सन् १६२३ ई॰ में डच लोगों ने थोड़े से अङ्गरेज़ों को क़तल किया अथवा सिराजुद्दौला ने १४६ अङ्गरेज़ों को काल कोठरी में बाँध कर मार डाला; इन घटनाओं के वर्णनों के साथ ही साथ इस करतूत की और इसी के समान दूसरे सैकड़ों क्रूर कर्मों की हक़ीक़त ऐतिहासिक पूर्ति के लिये हमें मालूम होनी चाहिये॥

इसके बाद जब गामा कोचीन की ओर गया तब कनानूर के राजा का उसे संदेशा मिला कि "कुछ अरबी व्यापारी ८ जहाज़ लाद कर जा रहे हैं, उन्होंने मालकी ज़कात (चुङ्गी) अथवा क़ीमत नहीं दी है, इसलिये आप इसका बन्दोबस्त कीजिये"। इस संदेशे को पाकर गामा ने सोद्रे नाम के आदमी को उसी दम कनानूर को भेजा। उसे वे जहाज़ वहीं लंगर डाले हुए दिखलाई पड़े। जहाज़ों के मालिक का नाम खोजा मुहम्मद था। उसे पकड़ कर सोद्रे ने राजा का सब हिसाब चुकता करा दिया। इतना होने पर भी अन्त में उसकी दुर्दशा कर मार भी डाला। इस कार्रवाई के बदले कनानूर के राजा ने सोद्रे को १ हज़ार सोने के पर्दाव* (Pardaos) इनाम में दिये, और मुर्गी के लिये प्रति दिन एक पर्दाव देने का हुक्म दिया। यदि पोर्तगीज़ जहाज़ बन्दर में आवें तो उन्हें प्रतिदिन एक पर्दाव देने की यह चाल बहुत दिनों तक जारी रही॥

इधर गामा कोचीन को गया। वहां के राजा ने उस का अच्छा सत्कार किया, और उसके जहाज़ माल से भर दिये। पोर्तगीज़ लोगों के आने से उस राजा को इस

---

*पर्दाव (सं० प्रताप) इस नाम का पहले गोआ में एक सिक्का चलता था, और इस का मूल्य १।) रु० था।

व्यापार से बड़ा लाभ होने लगा। इसलिये उसने आगे के परिणाम की ओर ध्यान नहीं दिया। कालिकोट के दक्षिण क्विलोन अर्थात् कोलम नाम का एक और भी व्यापारी बन्दर था। वहां की रानी ने इस व्यापार के लाभ का हाल सुन कर अपने बन्दर में माल भरने के लिये दो जहाज़ भेजने की गामा से प्रार्थना की। तदनुसार कोचीन के राजा की सम्मति से उसने दो जहाज़ क्विलोन से भर मँगवाये। इतने में ही उसे कोचीन के राजा से ख़बर मिली कि कालिकोट से एक बड़ा बेड़ा तैयार होकर लड़ने के लिये आरहा है। इस काम में कालिकोट के राजा ने बहुत ही पैसा और परिश्रम लगाया था। उसका विचार था कि एक बार पोर्तगीज़ और कोचीन के राजा को अच्छी तरह छकाया जाय; परन्तु ज़ामोरिन के विचार की एक एक बात द्रोही मनुष्यों के द्वारा गामा को मालूम हो जाने के कारण जो ब्राह्मण ज़ामोरिन की ओर से ख़बर लाया था उसकी दुर्दशा कर गामा ने उसके ओंठ और कान कटवा लिये, और कुत्ते के कान काट कर उसके कानों में सी दिये, और फिर उसे ज़ामोरिन के पास भेज दिया। इसके बाद बड़े बड़े दस जहाज़ों में सामान लादकर गामा

कोचीन छोड़कर स्वदेश के लिये रवाना हुआ। केवल सोद्रे कुछ जहाज़ रखकर मुसलमानों पर देख रेख रखने के लिये रह गया। रास्ते में खोजा कासिम नामक व्यापारी के जहाज़ उसे मिले। उन दोनों में लड़ाई हुई; किन्तु मुसलमानों को पीछे हटना पड़ा, और जब बचने का कोई उपाय न रहा तब समुद्र में कूद कर तैरते हुए किसी तरह किनारे पहुँचे। एक जहाज़ में सोद्रे को बहुत भारी क़ीमती माल मिला। इसके सिवाय उनमें कई धनवान औरतें और लड़के थे, तथा सोने और जवाहिरातों की बनी हुई मुहम्मद की एक मूर्ति थी; इन सब पर सोद्रे ने अपना अधिकार जमाया। उनमें से कुछ ख़ूबसूरत लड़कियों को पोर्तगाल की रानी को नज़र करने के लिये रख कर और बाक़ी सब औरतों को उसने खलासियों के सुपुर्द किया। इसी तरह मुसलमानों के जो जहाज़ उसके हाथ लगे थे उनमें उसने आग लगा दी, और हवा के सहारे उनको किनारे की ओर भेजा। यह काम कर सोद्रे कनानूर में गामा से जाकर मिला। गामा ने कनानूर की कोठी पर बोरबाज़ा को नियुक्त किया। साथही वहां के राजा की सम्मति से कुछ तोपें और बारूद गोले गुप्त रीति से गाड़कर कोठी के आस पास क़िले-

बन्दी करदी। उसने सोद्रे को लाल समुद्र से हिन्दुस्थान के पश्चिमी किनारे पर जो अरबी जहाज़ आवें उनकी देखरेख के लिये नियुक्त किया और ताक़ीद करदी कि चाहो उस जहाज़ को मनमाना लूटो और डुबा दो। ऐसी व्यवस्था कर, गामा २८ दिसम्बर सन् १५०२ ई० को यहां से रवाना हुआ, और १ सितम्बर सन् १५०३ ई० को लिसबन जा पहुँचा। इस बार वह अपने साथ अपार धन सम्पत्ति लेगया था। राजा ने उसे और उसके खलासियों को खूब सन्मानित किया, और बड़े बड़े इनाम दिये॥

गामा के चले जाने पर ज़ामोरिन ने कोचीन के राजा से लड़ने के लिये एक बड़ी भारी फ़ौज तैयार की। उस समय कोचीन के राजा त्रिमंपारा को उसके मंत्रि-मंडल ने सलाह दी कि कोचीन में जो पोर्तगीज़ लोग हैं उन्हें ज़ामोरिन के स्वाधीन कर सन्धि करली जाय। परन्तु राजा ने इस बात पर ध्यान न देकर जो परिणाम हो उसे सहन करने का निश्चय किया। कोचीन की पोर्तगीज़ कोठी के अफ़सर कोरिया ने सोद्रे को अपनी मदद के लिये बुलाया, परन्तु वह नहीं आया। उसने खम्भात की ओर जाकर अरब वालों के पाँच जहाज़ पकड़ कर लूट लिये,

और एक तूफ़ानी जगह में लङ्गर डाल कर ठहरा रहा। उसके सब साथी कह रहे थे कि यहां रहना सुरक्षित नहीं है; परन्तु वह आग्रह पूर्वक वहीं रहा। इसी बीच एक ज़बरदस्त तूफ़ान होने से वहीं पर उसका और उसके जहाज़ों का नाश हुआ। इधर कोचीन के राजा ने ज़ामोरिन से लड़ने की तैयारी की। उसकी फ़ौज का सेनापति युवराज नारायण था। ज़ामोरिन की फ़ौज बहुत ज़बरदस्त थी, अतएव सन् १५०३ ई० में दोनों फ़ौजों की लड़ाई होकर नारायण मारा गया और ज़ामोरिन विजयी हुआ। इसके बाद ज़ामोरिन ने कोचीन पर अधिकार कर लिया। उस समय त्रिमंपारा भागकर छिप रहा॥

इधर हिन्दुस्थान में इस प्रकार युद्ध होरहे थे, उधर पोर्तगाल के राजा ने एक ज़बरदस्त बेड़ा तैयार कराके हिन्दुस्थान को भेजा। उस बेड़े में बड़े बड़े ९ जहाज़ थे, और वह तीन हिस्सों में भेजा गया था। उन तीनों में क्रमशः आलफांज़ो डि आलबुकर्क, फ्रांसिस्को डि आलबुकर्क और सालढाना सेनापति नियुक्त थे। इनमें से आलफांज़ो डि आलबुकर्क बहुत ही होशियार था, और पोर्तगाल के इतिहास में उसका नाम चिरस्मरणीय

होगया है । सन् १५०३ ई० के अन्त में ये जहाज़ हिन्दुस्थान आपहुँचे । तब हिन्दुस्थान के पोर्तगीज़ों के जी में जी आया । ज़ामोरिन की फ़ौज कोचीन छोड़ कर चली गई, और त्रिमंपारा ने सङ्कट से छुटकारा पाया । त्रिमंपारा ने अन्त तक पोर्तगीज़ लोगों के साथ ईमानदारी का वर्ताव किया था ; इसलिये दोनों अलबुकर्कों ने उसका बड़ा गौरव किया । उन्होंने ज़ामोरिन को जीतकर कोचीन के राजा को उसकी गद्दी पर ला बैठाया, और पाचीको नामक एक होशियार ख़लासी को कुछ जहाज़ों के साथ कोचीन में रखकर तथा क्विलोन की रानी से सन्धि कर वे यूरोप को लौट गये । इसके बाद ज़ामोरिन ने कोचीन पर फिर हमला किया ; परन्तु पाचीको ने उसे अच्छी तरह हराया । इस मौक़े में पाचीको ने थोड़े ही आदमियों के साथ जो वीरता दिखलाई उससे पोर्तगीज़ लोगों की युद्ध-कुशलता और शूरता आदि गुणों के विषय में हिन्दुस्थान में सब जगह उनकी वाहवाही फैल गई, उनके नाम का रोब जम गया तथा राजा और धनवान लोग उनसे मित्रता करने के लिये उत्सुक हुए । इस तरह लगभग १०० वर्ष तक पोर्तगीज़ लोगों की हिन्दुस्थान में तरक्क़ी रही । सन् १५०४ ई० में पाचीको

यूरोप को लौट गया; परन्तु ज़बानी वाहवाही के सिवाय राजा ने उसे कुछ इनाम इत्यादि नहीं दिया॥

७–फ्रांसिस्को डि आल्मीडा।

(सन् १५०५-१५०९)

पाचीको के लौटने पर हिन्दुस्थान के विषय में पोर्तगीज़ राजा के विचार बहुत कुछ बदल गये। इधर के प्रवासों से उसे हिन्दुस्थान की भीतरी हालत के विषय में बहुत कुछ जानकारी होगई; और वह इस विषय का अन्दाज़ कर सका कि हम वहां विजय प्राप्त करके क्या कर सकते हैं। राजा को इस बात की आशा उत्पन्न हुई कि हिन्दुस्थान का व्यापार अपने हाथ में कर लेना तो सहज ही है, किन्तु प्रयत्न करने से वहां अपना राज्य भी स्थापित किया जा सकता है। उसने सोचा कि कम से कम व्यापार के लिये तो मुसलमानों से एक भारी युद्ध बिना किये काम नहीं चलेगा। इसके लिये हिन्दुस्थान में एक मज़बूत जङ्गी जहाज़ी बेड़ा और फ़ौज रखना आवश्यक है; और एक बार ऐसी तैयारी करने के बाद जो कुछ किया जा सके वही करना आवश्यक है। इस उद्देश से इमेन्युअल

राजा ने जङ्गी तैयारी की। सब जहाज़ी बेड़े और व्यापार पर देख रेख रखने के लिये फ्रांसिस्को डि आल्मीडा इस प्रभावशाली मनुष्य को नियुक्त कर उसने यहां भेजा। आल्मीडा सन् १५०५ ई० के सितम्बर महिने में कनानूर में आकर उपस्थित हुआ; और साथ ही उसने 'कोचीन, कनानूर और क्विलोन स्थानों के पोर्तगीज़ प्रतिनिधि (वाइसराय)' की चटक मटक दार पदवी धारण की। यह अधिकार उसे तीन वर्ष के लिये दिया गया था॥

इस प्रकार बड़ी धूमधाम के साथ आल्मीडा के नियुक्त होने के कारण उसने भी अपने वर्ताव में बहुत कुछ हेर फेर किया। पोर्तगीज़ लोगों के रहने के क़िले तटबन्दी आदि से मज़बूत कर मुसलमानों का नाश करना और अरब समुद्र तथा सम्पूर्ण हिन्दमहासागर पर किसी दूसरे का अधिकार न रहने देना इत्यादि मुख्य काम उसने अपने हाथ में लिये। उसने सोचा कि पोर्तगाल से हिन्दुस्थान आते समय रास्ते में एक मज़बूत जगह अपने हाथ में होनी चाहिये, इसलिये आफ्रिका के पूर्व किनारे पर किल्वा में उसने एक क़िला बनवाया, और मोम्बासा के मालिक को अपना अधीन सरदार बनाकर जहाज़ी रास्ते के अनुभवी ख़लासी तैयार करने के

लिये उस सरदार के लिये कुछ सालाना वेतन नियुक्त कर दिया। इस प्रबन्ध से पोर्तगीज़ जहाज़ों को दूसरे देश वालों के भरोसे रहने की ज़रूरत न रही। आल्मीडा के साथ १४ जहाज़ और १५०० फ़ौज आई थी। उसने होनावर और कनानूर के राज्यों को जीतकर कोचीन में अपना मुख्य अड्डा क़ायम किया। आल्मीडा का लड़का भी बड़ा पराक्रमी था। उसने क्विलोन में मापला मुसलमानों को हराया, और सीलोन में जाकर उस द्वीप के राजा को पोर्तगीज़ों के अधीन किया, तथा वहां से दालचीनी भरकर यूरोप भेजने का क़रार करा लिया। सीलोन से आल्मीडा के लड़के ने एक हाथी पोर्तगाल को भेजा। यूरोप में हाथी जाने का यह पहला उदाहरण है। उसीने ज़ामोरिन के जहाज़ों को कालिकोट में हराया। पोर्तगीज़ लोगों की तोपों के आगे हिन्दुस्थान के व्यापारी जहाज़ों का कोई उपाय नहीं चलता था॥

इधर अरबवालों के हाथ का व्यापार कम हो जाने से सम्पूर्ण मुसलमानी देशों में खलबलाहट फैल गई। ख़ासकर मिसर के सुलतान ने एक बड़ा जहाज़ी बेड़ा तैयार किया, और अमीर

हुसेन नामक एक नाविक को उसका अफ़सर बनाया। यह अमीर हुसेन और उसके नीचे के ख़लासी समुद्री युद्धकला में पोर्तगीज़ लोगों के समान ही चतुर थे। सन् १५०८ ई० में मिसर का बेड़ा लाल समुद्र से गुजरात के किनारे पर आया। वहां अहमदाबाद के सुलतान और दीव के नव्वाब मलिक अयाज़ ने उसे ख़ूब सहायता पहुँचाई। यह जंगी जहाज़ी बेड़ा जब चौल बन्दर में आया तब आल्मीडा के लड़के ने उसपर भारी हमला किया। आल्मीडा इस बात का प्रयत्न कर रहा था कि मुसलमानी बेड़े के साथ कालिकोट के ज़ामोरिन की भेंट न होने पावे। दो दिन तक आल्मीडा के लड़के ने बड़े साहस के साथ युद्ध किया। इसके बाद उसके जहाज़ घिर गये, तथा तोप के गोले से उसका एक पैर बेकार होगया। तो भी कुरसी पर पड़े पड़े वह हुक्म देता रहा। अन्त में और भी एक गोले ने आकर उसके प्राण ही ले डाले। २० वर्ष के लड़के की यह वीरता और प्रयत्न ध्यान में रखने लायक़ है। यद्यपि मलिक अयाज़ विजयी हुआ तो भी उसने अपने उदार अन्तःकरण से क़ैद किये हुए पोर्तगीज़ों के साथ बहुत अच्छा वर्ताव किया; और ऐसा वीर पुत्र उत्पन्न करने के लिये आल्मीडा को एक गौरवपूर्ण पत्र लिखा॥

इतने में ही आल्मीडा का कार्य-काल समाप्त हुआ, और उसकी जगह पर आलबुकर्क नियुक्त होकर लिस-बन से हिन्दुस्थान आया। तो भी अपने लड़के के मरने का बदला चुकाये बिना आल्मीडा अपनी जगह का चार्ज नहीं देता था। आलबुकर्क भी उसके आड़े नहीं आया। आल्मीडा बड़ी तेज़ी के साथ मुसलमानों पर चढ़ दौड़ा। सन् १५०९ ई० में दीव (ड्यू) के पास दोनों दलों की भयंकर लड़ाई हुई। उस में तीन हज़ार मुसलमान और २२ पोर्तगीज़ मारे गये। अहमदाबाद के सुलतान मुहम्मद बेगड़ा ने जब देखा कि मलिक अयाज़ हार गया तब उसका पक्ष छोड़ कर उसने पोर्तगीज़ लोगों से सन्धि की। इसके बाद आल्मीडा शीघ्र कोचीन को लौट आया, और सन् १५०९ ई० के नवम्बर महिने में कोचीन छोड़कर स्वदेश के लिए रवाना हुआ। रास्ते में आफ्रिका के किनारे पर एक लड़ाई हुई; उसमें आल्मीडा मारा गया। इस प्रकार फ्रांसिस्को डि आल्मीडा हिन्दुस्थान का पहला वाइसराय हुआ। आल्मीडा की राय थी कि हिन्दुस्थान में पोर्तगीज़ों का राज्य स्थापित होना सम्भव नहीं है; केवल जहाज़ी बेड़ा रख कर व्यापारी कोठियों की रक्षा करना काफ़ी होगा। इस विषय में उस में और उसके अनुगामी

उसका अच्छा प्रभाव था। सन् १४९५ ई० में जॉन राजा मर गया। जॉन के बाद उसके लड़के राजा इमेन्युअल की आलबुकर्क पर विशेष कृपा नहीं थी। इसके बाद मरक्को के काम पर उसकी नियुक्ति हुई। वहां मुसलमानों के विषय में उसके मन में बड़ी शत्रुता उत्पन्न हुई। वहां से लौटने पर राजा ने उसे सन् १५०३ ई० के प्रवास में हिन्दुस्थान भेजा। इस समय उसने कोई विशेष महत्व का काम नहीं किया, केवल भविष्य में उपयोग में आनेवाली परिस्थिति का अनुभव प्राप्त किया; और सन् १५०४ ई० में लिसबन को लौट गया। उसने अपने राजा को सलाह दी कि लाल समुद्र और ईरान की खाड़ी में मुसलमानों का संचार बिलकुल बंद कर देना चाहिये। इसके लिये सकोट्रा का द्वीप जीतने के निमित्त सन् १५०६ में राजा ने उसे रवाना किया। इमेन्युअल को भय था कि कांस्टेण्टिनोपल का सुलतान पूर्व के मुसलमानों की कहीं मदद न करे, इसलिये भूमध्यसमुद्र से एक बेड़ा उसने तुर्कस्थान को भेजा। उस समय टर्की और मिसर देश में दुश्मनी थी; परन्तु पोर्तगीज़ लोगों को इसकी ख़बर न थी, इसलिये वे डरते थे कि ये दोनों एक होकर कहीं हमें रास्ते न लगा दें। राजा की आज्ञा थी कि सकोट्रा जीतने पर आलबुकर्क मलबार किनारे

पर जावे, और आल्मीडा की अवधि समाप्त होते ही वहां वाइसराय का काम देखे ॥

मलबार किनारे के समान आफ्रिका के पूर्वी किनारे पर भी छोटे छोटे अनेक राजा थे। कोचीन के समान मलिन्द का राजा भी पोर्तगीज़ों के साथ मिला हुआ था, इसलिये मोम्बासा, अंगोजा आदि स्थानों के राजा मलिन्द के राजा को सताते थे। अतएव आलबुकर्क ने पहले उन सबों की ख़बर लेकर उन्हें पोर्तगाल के राजा को कर देने के लिये लाचार किया। इसके बाद वह सकोद्रा में आया। वहां कुछ ईसाइयों की बस्ती और मुसलमानों का एक मज़बूत क़िला था। उसे आलबुकर्क ने उसी समय जीत कर उस पर अपना अफ़सर नियुक्त किया और सारी नई व्यवस्था कर दी। वहां जो मुसलमानों की ज़मीन और जागीरें थी उन्हें ज़ब्त कर ईसाइयों को दे दिया। सकोद्रा से निकल कर आलबुकर्क मस्कत गया। वहाँ के अधिकारियों को जीत कर वह आर्मेज़ जीतने के लिये गया। यह स्थान ईरान की खाड़ी का नाका और व्यापार का अच्छा अड्डा था। आर्मेज़ के राजा के दीवान का नाम खोजा अत्तार था। उसके द्वारा आलबुकर्क ने आर्मेज़ में क़िला बनवाने की सन्धि की। परन्तु उसके नीचे के अफ़सर उसके विरुद्ध होगये; इसलिये आर्मेज़ का काम

अधूरा छोड़ कर आलबुकर्क को मलबार आना पड़ा। यहां तक उसने जो कार्रवाई की उससे जाना जा सकता है कि आलबुकर्क की पालिसी कैसी थी। उसका मत था कि आफ्रिका के दक्षिणी सिरे से मलक्का तक का सारा किनारा, द्वीप और नाकों पर के बन्दर पोर्तगीज़ों के अधिकार में रहें; भिन्न भिन्न स्थानों में क़िले बनाकर वहां पोर्तगीज़ फ़ौज रखी जाय, जिससे मुसलमानों का व्यापार एक दम बंद होकर पोर्तगीज़ों का बराबर चलता रहे। परन्तु आल्मीडा की ताक़ीद थी कि बहुत से क़िले बनाकर अपनी शक्ति को बाँट देना अनुचित है। इसीलिये कोचीन में आलबुकर्क और आल्मीडा के बीच बहुत झगड़ा हुआ, जिससे कुछ दिनों तक आलबुकर्क को क़ैद में रहना पड़ा। इसके बाद पोर्तगाल से एक और भी जहाज़ी बेड़ा आया, और आल्मीडा अपना कारबार छोड़ कर स्वदेश को लौट गया (नवम्बर सन् १५०९ ई०)। तबसे आलबुकर्क हिन्दुस्थान के पोर्तगीज़ राज्य का वाइसराय हुआ॥

९—गोआ का पतन, परिस्थिति।

(सन् १५१०-१२)

आल्मीडा के झगड़े में आलबुकर्क का जो समय व्यतीत हुआ, वह आलबुकर्क के लिये बहुत उपयोगी हुआ,

क्योंकि उस योग से उसे परिस्थिति का सूक्ष्म अवलोकन करने का अवसर मिला। मलबार और दक्षिण हिन्दुस्थान में हिन्दू राज्य थे। इसी प्रकार ब्राह्मणी राज्य की मुसलमानी शाखायें भी प्रबल थीं। इन हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर अनबन थी, और वे चाहते थे कि हिन्दू राज्य नष्ट कर एक मात्र मुसलमानी शासन स्थापित किया जाय। सन् १५६५ ई० में कालिकोट में लड़ाई होकर विजयनगर का राज्य नष्ट हुआ और मुसलमानों का उद्देश सिद्ध हुआ। आफ़्रिका के पूर्व किनारे, मलबार किनारे, और अरब समुद्र में अरबी मुसलमानों का संचार था, और उनके साथ पोर्तगीज़ों की स्पर्द्धा चल रही थी। ये अरब के व्यापारी किनारे की हिन्दू प्रजा और राजाओं को बहुत सताते थे, तथा उन्हें भ्रष्ट कर मुसलमान बनाते थे; इसलिये कोचीन, क्विलोन आदि के हिन्दू राजा यह चाहते ही थे कि यदि कोई बाहरी शत्रु आकर उनके दाँत खट्टे करे तो अच्छी बात है। पोर्तगीज़ों की असली चाल केवल ज़ामोरिन ने समझी थी, इसलिये वही बराबर उनसे लड़ता रहा, परन्तु अन्य हिन्दू पोर्तगीज़ों की अपेक्षा अरबवालों को ही अधिक शत्रु समझते थे। इसके सिवाय व्यापार में भी हिन्दुओं को अरबवालों से कोई विशेष लाभ नहीं था। पोर्तगीज़ व्यापारी एक

दम थोकमाल मनमानी क़ीमत देकर ठेठ यूरोप को पहुँचाते थे, इसलिये मलबार का व्यापार चमक उठा और सब हिन्दू लोग और राजा पोर्तगीज़ों के हिमायती बन गये। उस समय विजयनगर का नरसिंह राय प्रबल था, परन्तु मुसलमानों के द्वेष के कारण उसने पोर्तगीज़ों के विरुद्ध हलचल नहीं की। इसके सिवाय स्पेन देश में मुसलमानों का शासन था, तथा आफ़्रिका के उत्तर व पूर्व किनारे पर आज तक मुसलमानों से ही पोर्तगीज़ों को लड़ने का मौक़ा मिला था, इसलिये मुसलमानों के विषय में पोर्तगीज़ों के हृदय में जैसा द्वेष था हिन्दुओं के विषय में वैसा द्वेष नहीं था। इसके विपरीत हिन्दुओं के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति ही वर्तमान थी। मलबार किनारे पर ईसाइयों की बस्ती बहुत पहले से थी और वे हिन्दुओं के शासन में सुखी थे। इस स्थिति का अवलोकन कर आलबुकर्क ने मुख्य तीन उद्देश धारण किये। पहला यह कि हिन्दू राजाओं से स्थायी मित्रता करना; दूसरा मुसलमानों को मटियामेट करना और तीसरा पोर्तगीज़ों का व्यापार और अधिकार दृढ़ करना। आलबुकर्क ने विजयपुर में अपना वकील भेज कर यह सन्धि की कि मलबार किनारे पर जो उत्तम अरबी और ईरानी घोड़े आर्मज़ से आते हैं वे हम विजयपुर

के राजा के लिये जुटावें, और विजयपुर का राजा मुसलमानों से लड़ने में हमारी मदद करे। उसके ऐसा करने का यह मुख्य उद्देश था कि हिन्दुओं से मित्रता करके मुसलमानों का नाश किया जाय॥

कालिकोट का राजा हिन्दू था, और आलबुकर्क की इच्छा थी कि उसके साथ भी अपनी मित्रता रहे; परन्तु सन् १५१० ई० में कालिकोट के राजमहल पर उसके नीचे के कर्मचारियों ने एकाएक हमला किया। उसमें ४७० पोर्तगीज़ और १२ बड़े बड़े अफ़सर मारे गये और राजा विजयी हुआ। इस मौक़े पर आलबुकर्क भी ज़ख्मी हुआ; परन्तु वह फिर अच्छा हो गया। इसके बाद सकोट्रा पर हमला करने की तैयारी कर वह बाहर निकला, और गोआ के पास अञ्ज द्वीप में आया। इसके बाद तिमैया नामक एक चालाक हिन्दू ने गोआ जीतने की उसे सलाह दी॥

तिमैया का नाम ऊपर वास्को डि गामा के वर्णन में आचुका है। यह एक समुद्री पुरुष और बड़ा उद्योगी था। यद्यपि वास्को डि गामा ने उसके जहाज़ जला दिये थे, तथापि उस बात को भुलाकर उसने आल्मीडा का स्नेह सम्पादन किया, और पोर्तगीज़ लोगों की मदद कर अपना वैभव बढ़ाया। तिमैया के सिखाने से

आलबुकर्क ने विचार किया कि गोआ पश्चिमी किनारे पर व्यापार का एक बड़ा स्थान होने के सिवाय दो खाड़ियों के बीच में होने के कारण जहाज़ों के रखने के लिये सुविधाजनक बन्दर है । इस जगह सब देशों के जहाज़ सदैव आते रहते हैं; इसलिये इस प्रकार की उत्तम जगह अपने अधिकार में किये बिना हिन्दुस्थान में अपना राज्य टिकाऊ नहीं हो सकता । यद्यपि कोचीन, कालिकोट और क्विलोन में पोर्तगीज़ों की क़िलेबंद कोठियां थीं; परन्तु उन स्थानों में भिन्न भिन्न स्वतन्त्र राज्य होने के कारण पोर्तगीज़ों को वहां के राजाओं की इच्छा पर अवलम्बित रहना पड़ता था । आफ्रिका की ओर से आने में गोआ रास्ते में और पास पड़ता था; कोचीन के समान एक ओर नहीं था । इसके सिवाय वह बीजापुर के मुसलमान सुलतान के अधिकार में था; इसलिये उसे अधिकृत करने में हिन्दुओं से बैर बिसाहने की सम्भावना नहीं थी । हिन्दुओं से मित्रता रख मुसलमानों की जड़ काटने का उद्देश तो उसका था ही; इसलिये तिमैया की बात उसे पसन्द आई, और सकोट्रा जीतने का इरादा छोड़कर पहले गोआ अधिकृत करने का उसने निश्चय किया ॥

प्राचीन काल से गोआ में अनेक हिन्दू राजाओं का अधिकार था; परन्तु चौदहवीं सदी के आरम्भ में उसे होनावर के न०वाब ने जीता। इसके बाद विजयनगर-के राजा ने फिर जीतकर उसे अपने अधिकार में किया (सन् १३६७ ई०)। सन् १४४० ई० में वहां के लोग स्वतन्त्र होगये, और पास ही नवीन गोआ के नाम से उन्होंने एक दूसरा शहर बसाया। वहां आर्मज़ से आनेवाले घोड़ों का बड़ा व्यापार होता था। सन् १४७० ई० में ब्राह्मणी ख़ान्दान के सुलतान दूसरे मुहम्मद ने उसे जीता। इसके बाद अनेक बार हिन्दू राजाओं ने उसके छीनने का प्रयत्न किया, परन्तु उनका प्रयत्न सिद्ध नहीं हुआ। सन् १४८९ ई० में यूसुफ़ आदिल-शाह बीजापुर में स्वतन्त्र हो गया; उस समय गोआ भी उसके अधिकार में गया। इस आदिलशाह के शासन-काल में गोआ बड़ी उन्नत दशा में था। वहां पर उसने बड़े बड़े महल बनवाये। उसका इरादा था कि यहीं पर राजधानी क़ायम की जाय; परन्तु इस आदिलशाह के शासनकाल में हिन्दुओं पर बड़ा जुल्म होता था। जिस समय आलबुकर्क गोआ में आया, उस समय मलिक यूसुफ़गुर्गी नाम का मुसलमान वहां का अफ़सर था। उसने हिन्दुओं पर बड़ा क़हर बरसा रखा था। इसीलिये

तिमैया ने आलबुकर्क के पास जाकर मुसलमानों के त्रास से हिन्दुओं को बचाने का यह उपाय निकाला। उस समय आदिलशाह दूर देश में फँसा था, और सारी हिन्दू प्रजा मुसलमानों के त्रास से तंग आकर पोर्तगीज़ों में शामिल होने को तैयार थी। बन्दर के नाके पर पणजी का क़िला है। उस पर आलबुकर्क ने ९ मार्च सन् १५१० ई० को अधिकार कर लिया। इसके बाद दो दिनों में शहर भी उसके हाथ आ गया। मुसलमान अधिकारी भाग गये। लोगों ने समझा कि सब तकलीफ़ों से अपना पिंड छूटा; इसलिये आनंदित होकर उन्होंने आलबुकर्क पर सोने के फूलों की वर्षा की। उसी वक्त से उसने शहर का बंदोबस्त आरम्भ कर दिया॥

इस उलट फेर की ख़बर उसी वक्त सब जगह फैल गई। मुसलमान और हिन्दू राजाओं ने आलबुकर्क के पास अपने प्रतिनिधि भेजे। विजयनगर के राजा ने लिखा कि हमारा गोआ हमें वापिस मिले। ईरान के शाह और आर्मेज़ के राजा ने पोर्तगीज़ों के विरुद्ध भीतरी षड्यन्त्र चलाये, परन्तु आलबुकर्क ने चतुराई से चल कर सबको शांत रखा। ज्योंही यूसुफ़आदिलशाह ने सुना कि पोर्तगीज़ों ने गोआ ले लिया है त्योंही ६० हज़ार सेना लेकर वह गोआ पर चढ़ आया। उसने आलबुकर्क के पास

सँदेशा भेजा कि, "तुम दूसरा जो बन्दर चाहो वह ले लो, अथवा तिमैया को हमारे हवाले करो तो हम गोआ भी तुम्हें दे देंगे"; परन्तु आलबुकर्क ने उसकी बात स्वीकार नहीं की। तब आदिलशाह एकदम शहर में घुस आया। आलबुकर्क ने देखा कि इतने आदमियों से लड़ने की हम में ताक़त नहीं है; इसलिये अपने सब आदमियों को लेकर वह जहाज़ों पर भाग गया। जाते समय उसने बारूदख़ाना उड़ा दिया, और हाथ में फँसे हुए १५० मुसलमानों को क़त्ल किया, परन्तु उस समय की हवा खाड़ी से बाहर जाने के अनुकूल नहीं थी, इसलिये गोआ के बन्दर में ही उसे तीन महिने मुक़ाम करके रहना पड़ा। यहां दोनों दलों में नित्य झटापटी हुआ करती थी। इसी समय आलबुकर्क के निम्न कर्मचारी भी उस से बिगड़ गये, परन्तु उसने बड़ी धीरता के साथ वर्ताव किया। इसके बाद यूरोप से मदद आ पहुँची, और उसने होनावर में जाकर तिमैया से मुलाक़ात की। आदिलशाह गोआ छोड़ कर चला गया था, इसलिये वहां का बंदोबस्त कच्चा था। तब गोआ पर फिर हमला करने के लिये तिमैया ने आलबुकर्क को उभाड़ा। यही नहीं, बल्कि खुद भी गरसप्पा के राजा के साथ आलबुकर्क की सहायता के लिये आया। नवम्बर महिने में उन्होंने

फिर गोआ पर चढ़ाई की। बड़ा भारी युद्ध हुआ जिसमें दो हज़ार मुसलमान मारे गये, और गोआ शहर आलबुकर्क के हाथ आया। उस समय वहां के जो मुसलमान निवासी उसके हाथ आये, उनको तथा उनके निरपराध औरत बच्चों को उसने क़त्ल किया, तथा अपने अनुयाइयों को तीन दिन तक शहर लूटने की इजाज़त दे दी। इस क्रूर कृत्य का समर्थन करना असम्भव है। आलबुकर्क ने उसी समय गोआ की क़िले-बन्दी मज़बूत की। इसी समय आदिलशाह मर गया, और उसका लड़का इस्माईल गद्दी पर बैठा; परन्तु वह बहुत छोटी उमर का था, इसलिये बीजापुर दरबार की ओर से गोआ के विषय में कोई प्रयत्न नहीं हुआ॥

गोआ पोर्तगीज़ लोगों के हाथ में जाने से अनेक स्थायी परिणाम घटित हुए। पोर्तगीज़ लोगों की सत्ता पश्चिम किनारे पर सदा के लिये स्थापित हो गई। बीजापुर, विजयनगर, अहमदाबाद, आदि स्थान के राजाओं में पोर्तगीज़ों का रोब जम गया। उन्होंने समझा कि अपना एक दुश्मन अधिक हुआ। इसके बाद १०० वर्ष तक पूर्व से यूरोप को जाने वाले माल का व्यापार अकेले पोर्तगीज़ों के अधिकार में रहा जिससे गोआ शहर बहुत ही प्रसिद्ध और धनवान होगया। इन १०० वर्षों

में दुनिया के सब शहरों में गोआ की गिनती पहले दर्जे में होती थी। आलबुकर्क और उसके कारोबार का इतिहास में नाम होने के लिये गोआ शहर कारण हुआ; केवल जिन हिन्दुओं ने पोर्तगीज़ राज्य स्थापित करने में मदद की उनका हाल कोई नहीं पूँछता॥

१०—मलाका का पराभव

(सन् १५११)

गोआ की व्यवस्था करने के पश्चात् होनावर के राजा के भाई मल्हारराव के प्रतिवर्ष तीन लाख रुपये वसूल करने के क़रार से आलबुकर्क ने गोआ द्वीप का कारबार उसे दे दिया; और मलाका द्वीपकल्प जीतने के इरादे से उसने अपने जङ्गी जहाज़ उधर बढ़ाये। गोआ के बाद आलबुकर्क की यह दूसरी कार्रवाई थी। मलाका मसालों के व्यापार का मुख्य नाका था। मसाले के द्वीपों का और चीन जापान का सारा व्यापार इसी द्वीपकल्प के द्वारा होता था। मलाका शहर एक मुसलमान सुलतान के अधिकार में था। वहां का बन्दर लासानी था, और मसालों के व्यापार से बहुत धनवान

हो गया था। वहां बहुत करके सब पूर्वी राष्ट्रों के व्यापारी रहते थे। व्यापारी झगड़ों का फैसला करने के लिये चार राष्ट्रों के चार प्रतिनिधियों की एक सभा नियुक्त थी। यूरोपियन लोग इस मलाका द्वीपकल्प को 'गोल्डन कर्सोनीस' कहा करते थे। सन् १६०८ ई० में सैक्वीरा नामक पोर्तगीज़ खलासी पाँच जहाज़ लेकर मलाका में आया। यहां यही यूरोपियन पहले पहल गया था। ज्योंहीं सैक्वीरा ने माल भरने का प्रयत्न किया त्योंहीं अरबी व्यापारियों ने उसके विरुद्ध कुचक्र चलाये। इसलिये सैक्वीरा को वहां से भाग आना पड़ा। किन्तु पीछे रह जाने से बीस पोर्तगीज़ लोग मलाका के अधिकारियों के हाथ पड़ गये। उनपर मुसलमान हो जाने के लिये जुल्म आरम्भ हुआ। इसके बाद निनाचतू (Ninachatu) नाम के एक हिन्दू व्यापारी ने भीतर ही भीतर गुपचुप उनकी मदद की, और उनके पत्र आलबुकर्क के पास पहुँचा दिये। तब अलबुकर्क अपना जङ्गी बेड़ा लेकर मलाका में आया। कुछ दिनों तक बातचीत होने के पीछे सब पोर्तगीज़ कैदी आलबुकर्क को सौंप दिये गये। तथापि उसने शहर पर दो हमले कर उसे अधिकृत किया। सुलतान भाग गया। शहर में जो जावा के हिन्दू निवासी थे उन्हें

तथा चीनी और ब्रह्मदेश के व्यापारियों को आल-बुकर्क ने आश्रय दिया, और उन के प्रतिनिधि नियुक्त कर दिये। निनाचतू पर विशेष कृपा कर उसे हिन्दुओं का अगुआ बनाया। आलबुकर्क को ख़बर लगी कि जावावाले लोगों का एक मुख्य अगुआ पोर्तगीज़ों के विरुद्ध कार्रवाई कर रहा है, इसलिये आलबुकर्क ने उसे तथा उसके कुटुम्ब और नातेदारों को क़त्ल किया। इस प्रकार के क्रूर कृत्यों से चारों ओर उसकी धाक बँध गई। जब मलाका पोर्तगीज़ों के हाथ चला गया तब अरबी व्यापारियों का व्यापार वहां नष्ट हुआ। यूरोप के पश्चिमी किनारे से चीन जापान तक कहीं भी उनकी पैठारी न होने लगी। इसके बाद सुमात्रा, पेगू, स्याम, कोचीन, चीन आदि स्थानों के अधि-कारियों के साथ आलबुकर्क ने मित्रता और स्नेह स्थापित किया। मलाका में एक मज़बूत क़िला बनाकर उसने वहां का बन्दोबस्त किया, और सन् १५१९ ई० में वह लौट आया। उसी समय उसे ख़बर लगी कि गोआ के चारों ओर घेरा पड़ा हुआ है और वह अब हाथ से जानाही चाहता है। ज्योंहीं बीजापुर वालों को मालूम हुआ कि आलबुकर्क दूर निकल गया है, त्योंहीं वहां के वज़ीर ने फ़ौलाद खां नामक सेनापति को

गोआ पर अधिकार करने के लिये भेजा। उसने तिमैया और मल्हारराव को हराकर गोआ का द्वीप ले लिया। तिमैया और मल्हारराव भाग कर विजयनगर चले गये। वहां तिमैया मारा गया, और मल्हारराव को होनावर की राज गद्दी मिली। इसके बाद गोआ के क़िले के पोर्तगीज़ अफ़सर ने फौलाद खां पर हमला किया; परन्तु उसमें उसीकी हार हुई, और वह मारा गया। इधर बीजापुर दरबार ने देखा कि फौलाद खां गोआ अधिकृत नहीं कर सकता इसलिये रसूल खां नामक दूसरा वीर सरदार गोआ को भेजा। इसलिये फौलाद खां और रसूल खां में जुत्थम जुत्था शुरू हो गया जिससे रसूल खां ने पोर्तगीज़ों की मदद से फौलाद खां को पीछे हटाया। फौलाद खां के चले जाने पर रसूल खां पोर्तगीज़ों के विरुद्ध खड़ा हुआ। जिस समय वह क़िले को घेरे हुए था उसी समय आलबुकर्क लौट आया। इसी बीच में पोर्तगाल से उसके पास अच्छी सहायता आ पहुँची। इससे अच्छा जमाव कर उसने रसूल खां से लड़ाई की और गोआ के द्वीप पर अधिकार कर लिया। रसूल खां सब जगह छोड़कर बीजापुर को लौट गया। गोआ के जो लोग रसूल खां में जा मिले थे उनकी आलबुकर्क ने बड़ी दुर्दशा की। यह घटना सन् १५१२ ई० की है॥

इस प्रकार गोआ के कारण पोर्तगीज़ों पर अनेक सङ्कट आते देख पोर्तगाल के राजा ने आलबुकर्क को लिख भेजा कि गोआ छोड़ दिया जाय, और केवल व्यापार का ही प्रबन्ध रक्खा जाय। इस पत्र का उसने जो उत्तर लिख भेजा उसमें इस चालबाज़ राजनीतिकुशल पुरुष की पॉलिसी अच्छी तरह प्रतिपादित है। उसका कथन था कि, "एक गोआ में विजय प्राप्त करने से पोर्तगालनरेश का शासन यहां जितना दृढ़ हुआ है उतना कितने ही जङ्गी बेड़े भेजने पर भी दृढ़ न होता। समुद्र पर पोर्तगीज़ लोगों की सरसता रहना आवश्यक है। यदि समुद्र में अपना पराभव हो तो हिन्दुस्थान में हमें कोई एक क्षण भी ठहरने नहीं देगा। आज गोआ अपने हाथ में रहने से मनमानी सत्ता अपने अधिकार में है। गोआ की रक्षा कर हम इतने दिनों तक दृढ़ रहे इसीसे लोगों को हमारे पौरुष और पानी का पता लगा है, और गुजरात, कालिकोट आदि स्थानों के राजा हमारी मित्रता सम्पादन करने के लिये उत्सुक हुए हैं। जबतक समुद्र के किनारे के मज़बूत क़िलों के स्थान हमारे हाथ में नहीं रहेंगे, तबतक केवल जङ्गी बेड़े से हमारी रक्षा नहीं हो सकेगी। गोआ के ही समान दीव और कालिकोट में भी क़िले बना

कर हमें अपनी मज़बूती कर लेनी चाहिये। यदि इतनी बातें समझने पर भी गोआ छोड़ देने की ईश्वर आपको बुद्धि दे तो मैं यही समझूंगा कि ईश्वर की यही इच्छा है कि इधर पोर्तगीज़ लोगों का राज्य न हो। जबतक मेरे जी में जी है तबतक मैं अपने देश के लिये लड़ने को तैयार हूं। केवल व्यर्थ के कुतर्क निकाल कर आप मेरा उत्साह भङ्ग न करें।" स्मरण रखना चाहिये कि आगे चल कर तीन सौ वर्षों के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी और क्लाइब, वेलसली सरीखे कर्मचारियों में भी ऐसी ही लिखा पढ़ी हुई थी॥

११—आलबुकर्क की मृत्यु और उसकी पॉलिसी

(सन् १५१५)

आलबुकर्क को एक यह भी बड़ा काम करना था कि एडन अपने अधिकार में कर समुद्र के मुसलमानी व्यापार के रास्ते हमेशा के लिये बन्द कर दिये जाँय; परन्तु इस काम को वह पूरा नहीं कर सका। गोआ, गोआ का द्वीप और पणजी इन सब स्थानों को मिला कर उसने एक मज़बूत तटबन्दी की। उधर कालिकोट का ज़ामोरिन मर गया, और उसके लड़के ने वहां पोर्तगीज़ों को क़िला

बनाने की आज्ञा दे दी। यह क़िला बहुत मज़बूत बना। सन् १५१४ ई० का साल आलबुकर्क ने भीतरी व्यवस्था करने में बिताया। सन् १५१५ ई० में आर्मेज़ पर चढ़ाई कर उसने वहां अधिकार जमाया। उसकी कार्रवाई का यही अन्तिम कार्य था। आर्मेज़ से लौटते समय उसकी प्रकृति बिगड़ गई, और गोआ बन्दर को आते समय सन् १५१५ ई० के दिसम्बर महिने में वह जहाज़ पर ही मर गया। उसकी लाश पहले गोआ में गाड़ी गई; पीछे बचा हुआ हिस्सा लिसबन में ले जाकर गाड़ा गया। मरने के समय उसकी उमर ६३ वर्ष की थी; जिसमें से ६ वर्ष तक उसने हिन्दुस्थान का कारबार किया। शूरता, राजनैतिक चतुराई और एकनिष्ठ स्वराष्ट्र-सेवा आदि गुणों के कारण पोर्तगीज़ इतिहास में आल-बुकर्क का नाम विशेष स्मरणीय हो गया है। पोर्तगीज़ों का सब से बड़ा अफ़सर यही था॥

हिन्दुस्थान में पोर्तगीज़ इतिहास के मुख्य तीन अङ्ग हैं; अर्थात् व्यापार-वृद्धि, राज्य-विस्तार और धर्म-प्रचार। इन तीन अङ्गों कि उत्पत्ति भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न प्रकार से हुई। व्यापार की कल्पना वास्को डि गामा और उसके बाद के खलासियों की थी; राज्य-विस्तार की कल्पना आलबुकर्क की थी, और धर्म-प्रचार की कल्पना

पीछे उत्पन्न हुई। इस धर्म-प्रचार के ही कारण खास कर पोर्तगीज़ों का इधर ह्रास हुआ। डच, अङ्गरेज़ आदि राष्ट्रों की अगली कल्पना में पहले दो अङ्ग थे। धर्म का महत्व उन्हें नहीं मालूम हुआ। आल्मीडा के समय तक केवल व्यापार और कोठियां बढ़ाने का प्रयत्न होता रहा। परन्तु आलबुकर्क के मन में यह कल्पना उत्पन्न हुई कि किनारे के नाकों को अपने अधिकार में रख वहां क़िले वग़ैरह बनाकर हिन्दुस्थान में पोर्तगीज़ राज्य क़ायम किये बिना अपना व्यापार ठीक ठीक नहीं चलेगा; इसलिये उसने राज्य की नींव जमाई। वह राज्य अनेक राज्यक्रान्ति होने पर भी अब तक टिका हुआ है। परन्तु इधर ईसाई धर्म का प्रचार करने की कल्पना केवल पोर्तगीज़ लोगों ही की थी। सोलहवीं सदी के अङ्गरेज़ और डच लोगों ने अपने अपने आगे के उद्योग में धर्म का समावेश नहीं किया। पहले पोर्तगीज़ों का भी ऐसा उद्देश नहीं था। यदि कालिकोट आदि स्थानों में उनके व्यापार में रुकावट न आती तो कदाचित उन्हें राज्य स्थापित करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु आलबु-कर्क को विश्वास हो गया कि व्यापार के लिये जो स्थान योग्य हैं वे जब तक अपने अधिकार में नहीं रहेंगे तब तक अपना व्यापार नहीं चल सकेगा। अपना

व्यापार बढ़ाने के लिये पोर्तगीज़ लोगों ने मुसलमानों का एकतन्त्री व्यापार डुबा दिया। पोर्तगीज़ लोगों की यह कार्रवाई बड़ी कठिन थी। क्योंकि उस समय की प्रवास-सामग्री एक प्रकार से टुटपुँजही थी, और उसी से हिन्दुस्थान आने का मार्ग ढूँढ निकालना तथा आफ्रिका से सुमात्रा तक के देशों में मुसलमानों की जड़ काट कर अपने व्यापार का मार्ग निष्कन्टक बनाना कोई सहज और छोटा काम नहीं था। पोर्तगाल के राजा ने स्वयं इस काम को अपने हाथ में लिया इसीलिये वह सिद्ध हुआ। डच और अङ्गरेज़ लोगों ने आगे चल कर जो काम किया वह उद्योग केवल व्यक्तिविषयक अर्थात् खानगी कम्पनियों का था। उसमें राजा अथवा सारा देश शामिल नहीं था। परन्तु पोर्तगीज़ राजा इमेन्युअल के ध्यान में सच्ची दशा अच्छी तरह समझ पड़ी। मुसलमानों का व्यापार बन्द करने के लिये एडन, सोकोट्रा, आर्मज़, गोआ, सीलोन, मलाका आदि स्थानों में अपना अधिकार जमाने का उसने आग्रह किया। उसके भाग्य से उस समय के पराक्रमी मुसलमान नरेश, रूमस्याम का सुलतान पहला सलीम, मिस्र का सुलतान और ईरान का शाह इस्माईल आपस में लड़ रहे थे। यदि वे एकमत से

काम करते होते तो पोर्तगीज़ों की जय न हुई होती। मुसलमान भी पोर्तगीज़ों से एक पद्धति का वर्ताव कभी नहीं करते थे। आलबुकर्क के चरित्र लेखकों का कथन है कि इसीलिये उसने अनेक मौक़ों में उन लोगों के साथ क्रूरता का वर्ताव किया। मुसलमानों का व्यापार डुबाने के लिये पोर्तगीज़ों ने समय समय पर अनेक युक्तियां लड़ाईं। पहले कुछ दिनों तक उन्होंने यह क्रम जारी रक्खा कि पोर्तगीज़ अफ़सरों का लिखा हुआ परवाना लिये बिना जो जहाज़ लाल समुद्र में व्यापार के लिये आते जाते दिखाई दें वे एकदम पकड़ कर लूट लिये जावें, अथवा जला दिये जावें। अन्त में उन्होंने यह मार्ग निश्चित किया कि मुसलमानों को परवाना दिया ही न जावे। कुछ दिनों तक यही ढङ्ग चलता रहा कि परवाने के बिना जहाज़ घूमने न पावें, और उधर परवाने माँगने पर दिये ही न जावें। उनकी तीसरी युक्ति नाकों के स्थानों पर क़िले बनाने की थी। इस क्रम से उन्होंने मुसलमानों का व्यापार डुबा दिया। यहां तक राजा इमेन्युअल, अल्मीडा और आलबुकर्क की एक राय थी। परन्तु इसके बाद हिन्दुस्थान में अपना स्थायी शासन दृढ़ करने का आग्रह आलबुकर्क ने ही किया। इस शासन

को क़ायम करने के लिये उसने चार भिन्न भिन्न उपायों की योजना की। (१) एक नाके के स्थान जीत लेना; (२) दूसरा यहां की स्त्रियों से पोर्तगीज़ लोगों का विवाह कर कुछ निश्चित प्रदेशों में अपने लोगों की बस्ती क़ायम करना; (३) तीसरा क़िले बनाना और (४) चौथा कई राजाओं से सन्धि कर उन्हें पोर्तगाल के अधीन करना। इनमें से दूसरे उपाय को छोड़कर औरों का विवेचन पहले हो ही चुका है। दूसरा उपाय ज़रा थोड़ा विचित्र था, और उसका परिणाम भी इस समय वैसाही दिखाई पड़ रहा है। पोर्तगीज़ और हिन्दुस्थानी दो भिन्न राष्ट्रों में विवाह की चाल प्रचलित कर हाफकास्ट नामकी क्रिश्चियन संतति उत्पन्न करने का आरम्भ आलबुकर्क के द्वारा ही हुआ। इस प्रकार की सन्तान विशेष कर गोआ बम्बई की तरफ़ बहुत दिखाई पड़ती है। दूसरे किसी यूरोपियन राष्ट्र ने इधर यह काम नहीं किया। गोआ जीतने पर आल-बुकर्क ने मुसलमानों की जब क़त्ल की तब उनकी अनाथ विधवाओं के साथ उसने पोर्तगीज़ों का विवाह किया। ऐसे विवाहों में वह स्वयं उपस्थित होकर उपहार आदि देता था जिससे इस कार्य में लोगों को उत्तेजन मिले। आलबुकर्क ने अपने शासनकाल में

लगभग चार सौ ऐसे विवाह किये। इस प्रकार हिन्दुस्थान में रहनेवाली ईसाई सन्तान पैदा कर अपने धर्म का प्रचार करने का विशेष ढङ्ग उसने प्रचलित किया। परन्तु पीछे के अनेक अधिकारियों को यह बात पसन्द नहीं आई। आलबुकर्क ने ऐसे विवाह करनेवालों के लिये विशेष सुविधा कर दी और उन्हें जागीरें प्रदान कर दीं, तौ भी इस देश में ईसाई धर्म का जैसा चाहिये वैसा प्रचार नहीं हुआ; इससे हिन्दू धर्म की दृढ़ता अच्छी तरह व्यक्त होती है। इस देशवालों की चालाकी और तीव्र बुद्धि को उसी समय आलबुकर्क ने ताड़ लिया। इसलिये जिस समय उसने नई व्यवस्था की उस समय उसमें हिन्दुओं की विशेष भरती की। उनके लिये पाठशालाएं खोलीं। इस देशवालों की एक फ़ौज भी उसने तैयार की। उसने ऐसी व्यवस्था की कि जिसमें हिन्दुस्थान के राज्य कारबार का ख़र्च यहीं की आमदनी से चलता रहे। यहां की प्रचलित ग्राम-व्यवस्था उसने वैसी ही क़ायम रक्खी। गोआ और मलाका में टकसाल खोलकर पोर्तगीज़ राज्य के नाम से उसने नवीन सिक्के चलाये। यद्यपि ईसाई धर्म के प्रचार के लिये उसने बहुत प्रयत्न किये तथापि ज़ुल्म के साथ लोगों को ईसाई बनाने का जो क्रूर काम

पोर्तगीज़ शासन में पीछे से हुआ उसे आलबुकर्क ने आरम्भ नहीं किया। इस देश के राजा लोगों की आपस में एक दूसरे के साथ दुश्मनी, पोर्तगीज़ लोगों के बढ़िया जहाज़ और तोपें, उनकी अप्रतिम वीरता तथा सबसे बढ़कर आलबुकर्क की बुद्धिमानी—इन्हीं कारणों से हिन्दुस्थान में पोर्तगीज़ों का शासन प्रचलित हुआ॥

जिस समय आलबुकर्क मरा उस समय आर्मज़ से सीलोन तक सब जगह शान्ति थी। खम्भात, चौल, दाभोल, गोआ, होनावर, भटकल, कनानूर व कोचीन आदि स्थानों के राजा और ज़मींदार पोर्तगीज़ों के अधीन होकर अरब समुद्र में पोर्तगीज़ों के जहाज़ बेखटके आमदरफ्त करने लगे। सीलोन से मलाका तक के किनारे के बड़े बड़े राजाओं ने पोर्तगीज़ों से मित्रता पैदा करने वाली सन्धियां कीं। चीन, जावा व पेगू आदि के राजा भी उसके स्नेही हुए। सारांश, पोर्तगीज़ लोगों के राज्यकाल में एक आलबुकर्क ही बड़ा राजनीति-निपुण पुरुष हो गया है॥

पाँचवां प्रकरण ।

पोर्तगीज़-शासन

(सन् १५१०—१६१२)

१—आलबुकर्क के बाद के अधिकारी ।

(सन् १५१५ से १५२८)

जिस समय आलबुकर्क जीता था उसी समय उसकी जगह पर आलबर्गारिया नियुक्त होकर आगया था । यद्यपि वह ऊँचे कुल का था, तथापि स्वभाव में आलबुकर्क से बिलकुल विरुद्ध होने के कारण वह शीघ् ही सब लोगों में अप्रिय हो गया । वह आलबुकर्क की पद्धति नष्ट कर नई नीति चलाना चाहता था; परन्तु वैसा करना उसे आता न था । अन्त में राजा

इमेन्युअल को आलबुकर्क की ही नीति पसन्द पड़ी। राजा ने आलबर्गारिया को केवल इतना ही काम बतलाया कि वह लाल समुद्र में मुसलमानों के संचार को रोके। तदनुसार सन् १५१७ ई० में लगभग ४० जहाज़ और १००० फ़ौजी आदमी साथ लेकर वह एडन को गया। इसके पहले इतना बड़ा जङ्गी जहाज़ों का बेड़ा पोर्तगाल से बाहर कभी नहीं निकला था। परन्तु अलगरजीपने के कारण और निम्न कर्मचारियों की अप्रसन्नता के कारण इस चढ़ाई का कुछ उपयोग न हुआ; बल्कि झड़ी तूफ़ान आदि से बहुत हानि उठाकर बेड़े का पीछे लौट आना पड़ा। इसके बाद वह सीलोन को गया, और वहां के राजा से कर वसूल कर सन् १५१८ ई० में वहां उसने एक क़िला बनवाया। पोर्तगीज़ों के लिये सीलोन जीतने का यह आरम्भ था। सन् १५१८ ई० के अन्त में लोपेज़ सेक्वीरा गवर्नर की जगह पर नियुक्त हुआ और आलबर्गारिया यूरोप को लौट गया। सेक्वीरा ने तीन वर्षों तक काम किया। उसके बाद मेनेज़ीस की नियुक्ति हुई, (सन् १५२१ से १५२४)। इन दोनों के शासन-काल में कोई महत्व की घटना नहीं हुई। केवल यूरोप में राजा इमेन्युअल सन् १५२१ ई० में मर गया। हिन्दुस्थान में पोर्तगीज़ों का अधिकार

ज़माने में इस राजा की चतुराई का बड़ा उपयोग हुआ। विशेषकर योग्य पुरुषों को चुनकर उनकी अड़चनों को दूर करने तथा हाथ में लिये हुए काम को सिद्ध करने के लिये रुपये, मनुष्य और भरपूर जहाज़ों को भेजने आदि के काम में वह बड़ी चुस्ती दिखाता था। इसीसे इस उद्योग में बड़ी सफलता प्राप्त हुई। तथापि इस सफलता के यश का मुख्य श्रेय उसके पिता राजा जॉन को ही देना चाहिये। क्योंकि दूर के देशों को ढूँढ़ निकालने का कठिन काम उसी ने पूर्ण किया, और इस काम के योग्य उसने मनुष्य तैयार किये। इमेन्युअल पोर्तगाल देश में अधिक प्रिय नहीं था। वह शक्की, अनुपकारी और रुपये का लोभी था। हिन्दुस्थान के व्यापार से जो लाभ हुआ वह सब उसी ने हथिया लिया। इमेन्युअल के बाद उसका लड़का तीसरा जॉन गद्दी पर बैठा। वह इमेन्युअल की अपेक्षा बहुत अच्छा था। वह गुण-ग्राहक था, और गुण की क़द्र किये बिना नहीं रहता था। तथापि धर्म के कामों में वह दुराग्रही था। उसका केवल यही उद्देश नहीं था कि हिन्दुस्थान में राज्य स्थापित कर व्यापार और ऐहिक सम्पत्ति बढ़ाई जाय, बल्कि उसकी ज़बरदस्त इच्छा थी कि हिन्दुस्थानियों को ईसाइ बनाकर परलोक भी

सुधारा जाय। पोर्तगाल देश में 'पवित्र न्यायासन' (The Holy Inquisition) स्थापित कर उसके द्वारा उसने लोगों पर धर्म का दबाव डाला जिससे राष्ट्र का उत्साह और लोगों की बुद्धिमानी मारी गई। इधर हिन्दुस्थान में लोगों को धर्म-भ्रष्ट कर ईसाइ बनाने का दुष्ट कार्य उसने आरम्भ कर दिया जिससे उसके राज्य की नींव बहुत कमज़ोर हो गई॥

इस तीसरे जॉन ने प्रसिद्ध नाविक वास्को डि गामा को वाइसराय नियुक्त कर सन् १५२४ ई० में हिन्दुस्थान भेजा। वाइसराय नियुक्त होने से उसका अधिकार भी ज़बरदस्त था। इसके पहले ही गामा को यह गौरव मिलना चाहिये था; परन्तु इमेन्युअल राजा उससे प्रसन्न नहीं था। हिन्दुस्थान के पोर्तगीज़ अधिकारी बड़े ही स्वेच्छाचारी हो गये थे और अपने ऊँचे अफ़-सरों की आज्ञा की परवाह नहीं करते थे। उनमें घूँसखोरी की आदत पड़ गई थी जिससे वे अपना काम ठीक ठीक रीति से नहीं कर सकते थे। राजा ने इनका बन्दोबस्त करने के लिये गामा को ताक़ीद कर दी थी। वह यहां आते ही चौल का क़िला देखकर गोआ को गया। गोआ के अफ़सर पेस्ताना के विरुद्ध बड़ी बड़ी शिकायतें सुनी गई थीं, इसलिये गामा ने उसे

एकदम नौकरी से निकाल दिया। इसके बाद कोचीन में जाकर वहां के पोर्तगीज़ अधिकारियों से उसने नौकरी का इस्तीफ़ा लिया। इससे गामा की खूब ही धाक बैठ गई। परन्तु इस प्रकार का राज्य-प्रबन्ध करने के लिये वह बहुत दिनों तक जीता न रहा। वह बहुत बूढ़ा हो गया था, व सन् १५२४ ई० के दिसम्बर महिने में वह परलोक-वासी हुआ। वह कोचीन में दफ़न किया गया, परन्तु पीछे सन् १५३८ ई० में उसकी अस्थि पोर्तगाल देश में पहुँचाई गई॥

गामा के पीछे दो वर्षों तक डॉम हेनरी डि मेनेज़ीस ने गवर्नर का काम किया। वह सन् १५२६ ई० में मर गया। इसके बाद लोपोवाज़ डि साम्पेयो नियुक्त हुआ। परन्तु साम्पेयो के विरुद्ध बहुत से लोगों की शिकायतें थीं। क़िले आदि की व्यवस्था ठीक नहीं थी। इसके सिवाय तुर्कस्थान का पराक्रमी बादशाह सुलेमान हिन्दुस्थान पर चढ़ाई करने के लिये बड़ा ज़बरदस्त जङ्गी बेड़ा तैयार कर रहा था। उसकी वेनिसवालों के साथ मित्रता थी। जब से पोर्तगीज़ लोगों का समुद्र-मार्ग से हिन्दु-स्थान में आना जाना शुरू हुआ तब से वेनिस के व्यापारियों का रोज़गार साफ़ डूब गया। इसलिये मुसल-

मानों से मित्रता कर पोर्तगीज़ लोगों को मात करने का उन्हों ने उपक्रम चलाया। यह बात पहले ही होती, परन्तु तुर्क लोगों का मिसरवालों से युद्ध चल रहा था। यह युद्ध सन् १५१७ ई० में खतम हुआ, और मिसर का मुल्क तुर्कस्थान के अधीन हुआ। इसी तरह सीरिया और अरब का मुल्क भी तुर्कों के ताबे हुआ। तुर्कों का सुलतान सलीम सन् १५२० ई० में मर गया, और उसका लड़का सुलेमान तख़्तनशीन हुआ। वह इस बात को बख़ूबी समझ चुका था कि हिन्दुस्थान के कारण पोर्तगीज़ों का प्रभाव किस प्रकार बढ़ गया है। इसलिये उनका प्रतिकार करने के लिये उसने स्वेज़ में ऐक बड़ा बेड़ा तैयार किया। उस पर सुलेमान पाशा की नियुक्ति हुई। इस बेड़े में वेनिस के ईसाई खलासी और टर्की तथा मिसर के खलासी रखे गये थे॥

२—न्यूनो डा कुन्हा।

(सन् १५२९—१५३८)

पोर्तगाल के राजा तीसरे जॉन ने सोचा कि ऐसे विकट प्रसङ्ग में हिन्दुस्थान में कोई होशियार मनुष्य

रखना चाहिये। इसलिये उसने न्यूनो डा कुन्हा को १५२८ ई० में गवर्नर बनाकर यहां भेजा। आलबुकर्क के बाद यही विशेष पराक्रमी पुरुष हिन्दुस्थान में आया। उसने पूर्व में अनेक सामुद्रिक पराक्रम के काम किये थे। सन् १५२५ ई० में मोम्बासा के राजा को जीतकर आर्मेज़ के राजा से उसने कर वसूल किया था। डा कुन्हा सन् १५२९ ई० में यहां आया, और तुरन्त साम्पेयो को क़ैद कर उसने पोर्तगाल देश को भेज दिया। यहां से लौट जाने पर साम्पेयो कुछ दिनों तक क़ैद रहा और अन्त में उसका देशनिकाला किया गया। डा कुन्हा ने सब जगहों, क़िलों और कोठियों की जाँच की, और अफ़सरों की बदमाशियां ढूँढ़ खोज कर उन्हें सज़ा दी। इसके सिवाय व्यापार और राज्य बढ़ाने के लिये भी उसने बहुत से प्रयत्न किये। कारोमण्डल किनारे से सेण्ट टॉमस के आगे पोर्तगीज़ व्यापार जारी नहीं था; परन्तु डा कुन्हा ने बङ्गाल के मुसलमान अधिकारियों से सम्बन्ध जोड़ कर बङ्गाल प्रान्त के साथ व्यापार करना आरम्भ कर दिया। गोआ के समान बङ्गाल के किनारे पर भी अपना बन्दर बनाने की डा कुन्हा की इच्छा थी, परन्तु वह इच्छा पूरी नहीं हो सकी। गुजरात के किनारे पर पोर्तगीज़ों का बन्दर नहीं था। उनका उत्तर की ओर बहुत दूरी पर चौल नाम का

स्थान था। डा कुन्हा ने विचार किया कि यदि तुर्कस्थान से सुलेमान का बेड़ा गुजरात के किनारे पर आवे तो वहां के मुसल्मान राजाओं से उसे मदद मिलेगी; ऐसी हालत में पोर्तगीज़ों को उससे लड़ना कठिन होगा। इसलिये कुन्हा ने गुजरात में कोई बन्दर अधिकृत करने का प्रयत्न आरम्भ किया। उस समय गुजरात के सुलतान बहादुर शाह और दिल्ली के मुगल बादशाह हुमायूं में युद्ध छिड़ा हुआ था। इस कार्य में बहादुर शाह ने पोर्तगीज़ों से सहायता माँगी; और इसके बदले में बसई का द्वीप उसने पोर्तगीज़ों को देने का क़रार किया। उसे अपने अधिकार में कर पोर्तगीज़ों ने वहां पर अपना एक मज़बूत क़िला बनाया, (सन् १५३४)। तब से बसई पोर्तगीज़ों का उत्तर की ओर का प्रधान अड्डा हुआ, और गोआ के समान उसकी भी अच्छी उन्नति हुई। इसी प्रकार दमन, थाना, तारापुर, बाँदरा, माहीम व बम्बई आदि स्थानों में भी उन्होंने अधिकार जमा लिया। सन् १५३५ ई० में बहादुर शाह ने मदद करने के कारण पोर्तगीज़ो को दीव द्वीप दे दिया। यह द्वीप काठियावाड़ के दक्षिण में है। वहां पर भी उन्होंने शीघ्र ही एक मज़बूत क़िला बनवाया, (१५३५)। बहादुर शाह और डा कुन्हा में सन्धि हुई थी, परन्तु एक

दिन बहादुर शाह डा कुन्हा से मुलाकात कर जहाज़ से लौट रहा था कि रास्ते में उसका खून हो गया। उसके भतीजे तीसरे मुहम्मद शाह ने तुर्कस्थान के सुलतान सुलेमान से मित्रता कर पोर्तगीज़ों के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण किये। मुहम्मद शाह ने ज़मीन की ओर से और सुलेमान ने समुद्र की ओर से दीव के द्वीप को घेर लिया। इसके पहले ही क़िले की तैयारी हो चुकी थी; इसलिये वह पोर्तगीज़ों के लिये बड़ा उपयोगी हुआ॥

सिल०हेरा नामक पोर्तगीज़ अफ़सर ने दीव की रक्षा बहुत अच्छी तरह से की। घेरा बहुत दिनों तक पड़ा रहा, और अन्त में मुसलमानों के आपसी कलह के कारण उठ गया। इस प्रकार दीव द्वीप मुसलमानों को नहीं मिल सका। इधर डा कुन्हा की जगह पर गार्शिया डि नोरोन्हा की नियुक्ति हुई, (सन् (१५३८)। डा कुन्हा ने कड़ाई का वर्ताव किया इसलिये उसके अनेक शत्रु हो गये, और उसके विरुद्ध राजा से न जानें कितनी चुगली की गई। इसलिये हुक्म हुआ कि उसे क़ैद कर यहां भेजा जाय। क़ैद होकर वह पोर्तगाल को जा रहा था कि रास्ते में ही सन् १५३९ ई० में वह मर गया। उसके

शासनकाल की बड़ी बात दीव पर अधिकार जमाना था। वह आलबुकर्क के समान ही होशियार था॥

३-जॉन कॅस्ट्रो और दीव का घेरा।

(सन् १५४६)

गार्शिया नोरोन्हा सन् १५४० ई० में गोआ में मर गया। इसके बाद वास्को डि गामा का दूसरा लड़का स्टीफो डि गामा गवर्नर हुआ। उसने लाल समुद्र में एक प्रवास किया। सन् १५४२ ई० में उसकी जगह पर अलफॉन्ज़ो डि सोज़ा की नियुक्ति हुई। उसने बीजापुर के आदिल शाह से सन्धि कर गोआ के आस पास का प्रदेश प्राप्त किया। सन् १५४५ ई० में डॉम जॉन डि कॅस्ट्रो गवर्नर नियुक्त होकर आया। इसे सभ्य और प्रामाणिक सज्जन समझ कर राजा ने यहां भेजा था। इस समय हिन्दुस्थान में आने वाले पोर्तगीज़ अफ़सर जैसे हो तैसे अपनी ही थैली भरते थे। सरकारी काम में घूँस-खोरी और खानगी वर्ताव में जुआ आदि दुर्व्यसनों के कारण जहां तहां गड़बड़ और अन्याय मच रहा था। इन सब गड़बड़ों को मिटाने के

उद्देश से कॅस्ट्रो बड़ी तैयारी के साथ यहां आया। कॅस्ट्रो ने भीतरी व्यवस्था सुधारने का भी बड़ा प्रयत्न किया। पोर्तगाल के राजा ने हिन्दुस्थान आने वाले पोर्तगीज़ों को प्रथम ही से ऐसी इजाज़त दे रक्खी थी कि हिन्दुस्थान में नौ वर्ष तक फ़ौजी नौकरी कर जो चाहे वह मनमाना रोज़गार कर सकता है; इसलिये व्यापार के लालच से बहुत से लोग यहां आते थे। अर्थात् खानगी व्यापार की स्वतन्त्रता देना अन्याय बढ़ाने का कारण था। कॅस्ट्रो ने अफ़सरों की तनख़्वाह नियुक्त कर ऊपर का अन्याय कम करने का प्रयत्न किया। परन्तु इस कार्य में उसे विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई॥

जिस समय कॅस्ट्रो आया उस समय सब मुसलमान पोर्तगीज़ों के विरुद्ध शस्त्र-बद्ध हो रहे थे। खम्भात का सुलतान महमूद और उसका मुख्य अफ़सर खोजा जाफ़र दीव छीन लेने के प्रयत्न में लगे हुए थे। खोजा जाफ़र बहुत ही अभिमानी और चतुर पुरुष था। उसने बाहर बाहर पोर्तगीज़ों से स्नेह रखकर भीतर ही भीतर दीव छीन लेने के लिये सम्पूर्ण मुसलमानों की एक जुट की थी। एक पोर्तगीज़ मनुष्य को बहका कर उसके द्वारा दीव में पीने का सब पानी ज़हरीला कर देने

की उसने तजवीज़ की, परन्तु यह कुचक्र एक मुसलमान स्त्री के द्वारा पोर्तगीज़ों को मालूम हो गया, इसलिये उन्होंने पहले से ही उसका बन्दोबस्त कर लिया। दीव के प्रधान अफ़सर का नाम मास्करीन्हा था। उसने भी लड़ने की सारी तैयारी की। उसने प्रत्येक बुर्ज पर अपने विश्वास का एक एक मनुष्य नियुक्त कर उसके अधीन तीस तीस जवान नियुक्त किये। खोजा जाफर ने पहले समुद्र की ओर से दीव पर हमला किया। परन्तु उसने आगे जो तीन जहाज़ भेजे थे उन्हें पोर्तगीज़ों ने पकड़ कर तोड़ दिया। उनमें उन्हें बहुत सी अन्न सामग्री प्राप्त हुई। तब ज़मीन की ओर से खोजा जाफ़र ने सामने की तरफ़ एक ऊँची दीवाल बना कर वहां से क़िले पर तोपों की मार करना आरम्भ किया। इस मार से क़िले के पोर्तगीज़ों की बड़ी हानि हुई। परन्तु वे बड़ी दृढ़ता से लड़ते रहे। लड़के बच्चे भी मरने के लिये तैयार होकर युद्ध में योग दे रहे थे। दिनभर मुसलमानों की मार से जो हिस्सा टूटता था रात को वे उसे तैयार कर लिया करते थे। जब जाफ़र ने देखा कि अपनी मार का कुछ फल नहीं होता तब उसने एक और ऊँची दीवाल बनाई। उसी पर से वह मार कर रहा था। एक दिन जाफ़र को क़िले में एक छेद

दिखाई पड़ा। उसकी वह जाँच कर रहा था; उसी समय अकस्मात पोर्तगीज़ सेना से एक तोप का गोला वहां आ गिरा जिससे वह वीर पुरुष वहीं मर कर ढेर हो गया, (तारीख २६ जून सन् १५५६)। जाफर का लड़का रूमीखां भी बाप के समान ही वीर था। इसलिये बाप के मरने पर घेरे का काम उसने अपने ऊपर लिया। दोनों ओर के वीर जान लड़ाकर लड़ रहे थे। एक एक हज़ार लोगों की टुकड़ी लेकर रूमी खां बुर्ज़ों पर धावा करता था और वहां के वीर ज़ोश के साथ लड़ कर उन्हें वहां से भगा देते थे। परन्तु क़िले के भीतर की रसद घट जाने के कारण क़िले वाले बड़ी भयानक स्थिति में पड़े। ऐसी दशा में लड़ते लड़ते अनेक बार क़िला गिरने का मौक़ा आया। मुसलमानों ने तोपों की मार और सुरङ्गों के मारे हैरान कर दिया। पोर्तगीज़ों के कुल चार सौ मनुष्य क़िले में थे उनमें से दो सौ पहले ही मर चुके थे। बाकी दो सौ में से बहुत से घायल हो चुके थे। इधर मुसलमानों के पाँच हज़ार से अधिक मनुष्य मारे गये थे। इसके बाद ऐन मौक़े पर पोर्तगीज़ों को चार सौ मनुष्यों की मदद प्राप्त हो गई, और रसद से भरे हुए कुछ मुसलमानी जहाज़ भी उन्होंने पकड़े। इसलिये पोर्त-

शहर जला दिये, और सूरत शहर को लूट लिया, तथा निरपराध प्रजा को क़तल कर अपनी क्रूरता का अन्त कर दिया ॥

कॅस्ट्रो ने बीजापुर के आदिलशाह से भी युद्ध आरम्भ किया था; उसमें आदिलशाह को हराकर पोर्तगीज़ों ने दाभोल बन्दर पर कब्ज़ा कर लिया। इसके बाद दोनों की सन्धि स्थिर हुई (सन् १५४७)। दीव के विजय की ख़बर यूरोप पहुँची। राजा ने कॅस्ट्रो की बड़ी प्रशंसा की, और उसे वाइसराय का पद दिया। इधर जो पोर्तगीज़ अफ़सर आते थे उनमें से कई गवर्नर बनाकर भेजे जाते थे, और कई वाइसराय बनाकर भेजे जाते थे; और दोनों के अधिकार भी भिन्न भिन्न होते थे। कॅस्ट्रो सन् १५४८ ई० में मर गया। आलबुकर्क के बाद बड़ा गवर्नर यही हुआ। जिस प्रकार आलबुकर्क ने गोआ अधिकृत कर पोर्तगीज़ इतिहास में अपनी कीर्ति स्थिर की उसी तरह दीव अधिकृत कर और उसकी रक्षा कर कॅस्ट्रो ने अपनी कीर्ति क़ायम की ॥

४—सन् १५४८ से १५८० तक के अफ़सर।

कॅस्ट्रो के बाद गर्वनर का पद गार्शिया डि सा को मिला। उसने गुजरात के सुलतान तीसरे मुहम्मदशाह से

सन्धि कर दीव का क़िला सदा के लिये पोर्तगीज़ों का कर लिया। केवल क़िले के बाहर का सब प्रान्त सुलतान का निश्चित हुआ। गार्शिया डि सा सन् १५४९ ई० में मर गया। इस के बाद वसई के अधिकारी जार्ज काब्राल को थोड़े दिनों के लिये गवर्नर की जगह मिली। किन्तु पीछे पोर्तगाल से अफ़ान्ज़ो डि नोरोन्हा वाइसराय नियुक्त हो कर आया। उसने सन् १५५४ ई० तक काम कर सीलोन द्वीप में पोर्तगीज़ों का अधिकार बढ़ाया। इसके बाद फ्रांसिस्को बारेटो गवर्नर नियुक्त हुआ। उसने सब पोर्तगीज़ क़िलों की जाँच कर उनका बन्दोबस्त किया, और पोर्तगीज़ों की धाक क़ायम रक्खी। इसके शासनकाल में प्रसिद्ध पोर्तगीज़ कवि कमोंस (Comoens) ने गोआ के पोर्तगीज़ अधिकारियों की उन्मत्तता पर आलोचनापूर्ण कविता लिखी। इसके लिये उस कवि को देश निकाला कर मकाव नामक स्थान में वह भेजा गया। उधर यूरोप में राजा तीसरे जॉन की मृत्यु हो गई, और उसका दुर्दैवी अल्प-वयस्क नाती सबाश्चन गद्दी पर बैठा। परन्तु राज्य-कारबार मृत राजा की रानी केथरीन देखती थी। उसने सन् १५५८ में कांस्टाण्टिनो डि ब्रागांज़ा को वाइसराय नियुक्त कर गोआ भेजा। इसने दमन पर अधिकार कर वहां एक मज़बूत क़िला बनवाया।

इसी तरह मलाका, ऑर्मज़ तथा सीलोन आदि स्थानों में जहाज़ भेज कर अपना अधिकार दृढ़ किया। सीलोन में स्वयं जाकर जाफ़नापट्टन नामक स्थान उसने लिया। यही सीलोन में पोर्तगीज़ों का मुख्य अड्डा था। उसने निम्न अधिकारियों के अंधाधुंध वर्तावों को बन्द करने का भी बहुत प्रयत्न किया। सन् १५६१ ई० में फ्रांसिस्को कूटिन्हो वाइसराय हुआ। उसने तीन वर्ष तक कारबार चलाया। उसके बाद एण्टो डि नोरोन्हा वाइसराय हुआ (१५६४)। इधर सब मुसलमान राजा विजयनगर का राज्य जीतने में लगे हुए थे। इसलिये पोर्तगीज़ लोग निश्चिन्त होकर अपना काम करने में समर्थ हुए। उन्हों ने सारा सीलोन द्वीप अपने अधिकार में कर लिया, और अन्य छोटे छोटे स्थानों में भी अपनी सत्ता क़ायम की। मुसलमानों ने तालिकोट के संग्राम में विजयनगर के राजा नरसिंहराय को जीता (सन् १५६४), यह घटना पोर्तगीज़ लोग दूर से ही शान्ति के साथ देख रहे थे। ऐसे मौक़े पर यदि आलबुकर्क होता तो हिन्दू राजा की उसने मदद की होती, और मुसलमानों को ज़िरजोर न होने दिया होता। आलबुकर्क समझता था कि हिन्दू राजाओं की रक्षा करना आवश्यक है। यदि आलबुकर्क के समान पीछे के पोर्तगीज़ अधिकारी भी सारे देश में अपना राज्य

स्थापित करने की इच्छा रखते तो वे मुसलमानों को प्रबल न होने देते। विजयनगर के राजा ने एकबार पूर्व किनारे के सेण्ट टामस् नामक पोर्तगीज़ स्थान पर हमला किया था; तब से पोर्तगीज़ लोगों के मन में उस राजा के प्रति स्नेहभाव नहीं था, इसलिये उन्हों ने उसकी मदद नहीं की॥

सन् १५६८ ई० में लुई अथेड (Athaide) वाइसराय होकर आया। उसके आते ही तालिकोट की लड़ाई का पहला परिणाम उसे सहन करना पड़ा। अर्थात् बीजापुर के आदिलशाह ने गोआ पर चढ़ाई की। उसके साथ एक लाख फ़ौज और दो हज़ार हाँथी थे। इस समय कई मुसलमान नरेशों ने जुट कर पोर्तगीज़ों को यहां से निकाल भगाने का विचार किया था। सन् १५७० ई० में गोआ घेर लिया गया। उस समय गोआ के भीतर केवल ७०० लड़ने वाले मनुष्य थे। ऐसी स्थिति में आथेड ने पादरियों और इस देश के लोगों को भी सेना में मदद के लिये शामिल कर सब मिला कर दो हज़ार लोगों की फ़ौज तैयार की। इन लोगों ने दश महिनों तक आदिल-शाह की दाल नहीं गलने दी। इससे मालूम पड़ता है कि पोर्तगीज़ लोग कैसे वीर और दृढ़निश्चयी थे।

अन्त में आदिलशाह की बहुत ही ख़राबी हुई, और उसे घेरा उठाकर लौट जाना पड़ा। इसी समय मलाका, चौल और कालिकोट के पास शाले नामक स्थान में पोर्तगीज़ों ने अपने शत्रुओं से लड़कर उन्हें पीछे हटाया। इसके बाद अथेड ने मलबार किनारे से चढ़ाई कर सब शत्रुओं को खूब हराया। होनावर का राजा गोआ के घेरे के समय आदिलशाह के साथ मिला हुआ था इसलिये अथेड ने उस शहर को जलाकर वहां भयानक क़हर बरसाया। सन् १५७१ ई० में आराटोनियो डि नोरोन्हा वाइसराय हो कर आया। यह पहले के अधिकारियों के समान विशेष बुद्धिमान नहीं था। आफ़्रिका के किनारे से मलाका तक के सम्पूर्ण मुल्क को एक ही अफ़सर के अधीन रखने में अड़चन पड़ने लगी, इसलिये पोर्तगाल दरबार ने इधर के अधिकार को तीन हिस्सों में बाँटा। एडन से सीलोन तक का बिचला मुख्य भाग गोआ के अधिकार में देकर वहां के अधिकारी को वाइसराय की पदवी दी गई। सीलोन से मलाका तक का पूर्वी भाग एक अलग अधिकारी के अधिकार में दिया गया। इसी तरह आफ़्रिका के सम्पूर्ण पूर्वी किनारे पर एक तीसरे अधिकारी की व्यवस्था की गई। दूसरे भाग का मुख्य नगर (राजधानी) मलाका और तीसरे का मोज़ाम्बिक थे। मोज़ाम्बिक

के अधिकारी ने आफ्रिका के पूर्व के बहुत से मुल्क की देख भाल कर नया शोध किया। सन् १५७३ ई० में आण्टोनियो बारेटो गोआ का अधिकारी हुआ। इसके बाद सन् १५७६ से १५७८ तक डिओगो डि मेनेज़ीस गवर्नर रहा, और सन् १५७८ से १५८१ तक डॉम अथेड ने दुबारा इस पद पर काम किया। अथेड सन् १५८१ ई० में गोआ में मर गया। सन् १५८० ई० में यूरोप में पोर्तगाल और स्पेन देश कुटुम्बकीय सम्बन्ध के कारण एक ही राजा के अधिकार में आये। तब से हिन्दुस्थान के पोर्तगीज़ कारबार का झुकाव दूसरे ढङ्ग का हो गया, और उनके यहां के इतिहास का पहला भाग समाप्त हुआ॥

५—सन् १५८० से १६१२ तक की दशा।

इन संयुक्त देशों का पहला राजा दूसरा फिलिप हुआ। यह वही राजा है जिसने सन् १५८८ ई० में इङ्गलेण्ड में बड़ा भारी जङ्गी जहाज़ों का बेड़ा भेज कर एलिज़ाबेथ रानी से युद्ध किया था। उसने हिन्दुस्थान के सम्पूर्ण पोर्तगीज़ अधिकारियों से अपने राज्य-पद की स्वीकारता की क़सम खिलाई। मास्करीन्हा को उसने गोआ का वाइसराय नियुक्त किया। इसी ने चौल की रक्षा की

थी। मास्करीन्हा ने १५८१ से १५८४ तक गोआ का कारबार चलाया। इस कार्यकाल में तथा इसके बाद भी हिन्दुस्थान सम्बन्धी महत्व की बातें बहुत थोड़ी हुई हैं। दमन, दीव, तथा वसई आदि किनारे के बन्दरों की रक्षा करने, और सीलोन, मलाका आदि की ओर पोर्तगीज़ बस्तियों को मदद पहुँचाने आदि में ही अधिकारियों का समय बहुत करके व्यतीत हो जाता था। इसी बीच डच व्यापारियों की सरसता हुई, और इसलिये पोर्तगीज़ों का व्यापार पीछे पड़ गया। सारांश, युद्ध के झगड़ों की अपेक्षा दूसरे ऐतिहासिक महत्व के कार्य आगे विशेष नहीं हुए। जब १५६४ ई० में आण्टोनियो नोरोन्हा वाइसराय होकर आया तब से इस देश के लोगों को जुल्म के साथ ईसाइ बनाने का काम आरम्भ हुआ। गोआ से जेसुइट पादरी साष्टी द्वीप में गये। उन्होंने फ़ौजी मदद लेकर हिन्दुओं के मन्दिरों का विध्वंस किया। तब लोग भी हथियार लेकर उनके विरुद्ध उठे; और उन्होंने भी ईसाइ गिरजों को नष्ट किया। कितने ही लोगों ने क्रिश्चियन उपदेशकों पर हमला कर उन्हें मार डाला। इसका बदला लेने के लिये नोरोन्हा ने साष्टी में फ़ौज भेजी, और वहां के सब लोगों को क़तल कर और उनके घर द्वारों को जला कर सम्पूर्ण देव मन्दिर ज़मीनदोज़ कर दिये।

इससे जहां तहां पोर्तगीज़ों की धाक जम गई। उन्होंने सब प्रान्तों में अपने गिरजे स्थापित किये, और प्रत्येक पहाड़ी-टेकड़ी पर अपना क्रूस खड़ा किया। सन् १५८४ ई० में डॉम ड्यूआर्ट डि मेनेज़ीस की वाइसराय की जगह पर नियुक्ति हुई। इसका सम्पूर्ण कार्यकाल लड़ने में ही बीता। तुर्क लोग अपने नष्ट हुए व्यापार को लौटा पाने का प्रयत्न कर रहे थे। उनके पोर्तगीज़ों के साथ अनेक झगड़े हुए। मेनेज़ीस ने सन् १५८८ ई० तक कारबार सँभाला। उसके कार्यकाल में इङ्गलेण्ड और स्पेन में अनबनाव हो गया, और दोनों में एक भारी जहाज़ी युद्ध हुआ। सन् १५८८ ई० में बढ़िया माल से लदा यूरोप को जाता हुआ एक पोर्तगीज़ जहाज़ सहजही प्रसिद्ध अंग्रेज़ खलासी ड्रेक के हाथ में पड़ गया। इस से अङ्गरेज़ों ने समझ लिया कि पोर्तगीज़ जहाज़ों में कुछ विशेष दम नहीं है, और हिन्दुस्थान में पोर्तगीज़ों की जैसी प्रबलता समझी जाती है यथार्थ में वैसी नहीं है। इसी प्रकार हिन्दुस्थान की अपार सम्पत्ति का भी उन्हों ने अन्दाज़ कर लिया। इसी प्रकार की हलचल सन् १५८९ ई० में हुई। उस समय भी पोर्तगीज़ों का एक जहाज़ अङ्गरेज़ों के हाथ लगा। उसका माल इङ्गलेण्ड ले जाकर बेचने से डेढ़ लाख रुपये की आमदनी हुई। इसके सिवाय जहाज़ पर जो कीमती

जवाहिर थे उनकी इसमें गिनती ही नहीं है। इन उदाहरणों ही से अङ्गरेजों के मुँह में पानी छूटा। डयूआर्ट सन् १५८८ ई० में मर गया॥

सन् १५८९ ई० में डीसोजा कूटीनो गवर्नर हुआ। उसने सन् १५९१ ई० तक कारबार किया। उसके बाद सन् १५९७ ई० तक माथियास डि आलबुकर्क पद पर रहा। सन् १५९७ ई० में फ्रांसिस्को डि गामा वाइसराय हो कर आया। यह सब लोगों से बड़ी ही उद्दण्डता के साथ वर्ताव किया करता था। इसके सिवाय अपने नीचे की नौकरियां उसने अपने जान पहचानवालों को दीं, इसलिये उसके विरुद्ध बहुत ही कानाफूसी और कहासुनी हुई। उसके समय में मलाका के पास डच और पोर्तगीज़ों से एक लड़ाई हो गई। उसमें डच लोगों की हार हुई। सन् १६०० ई० में सालढाना नामका मनुष्य पोर्तगाल से वाइसराय होकर आया। तब डि गामा काम छोड़कर वापिस चला गया। लौटते समय गोआ निवासियों ने उसका बड़ा अपमान किया। वापिस लौटने में उसे पाँच महिने लगे। तौभी उस समय यही समझा जाता था कि यह प्रवास थोड़े ही समय में हुआ॥

सालढाना के शासन-काल की मुख्य घटना यहां से चीन को ईसाइ धर्म फैलाने के लिये पादरियों का भेजा जाना

यही है। पादरियों की यह मण्डली ख़ैबर घाटी से मध्य एशिया के रास्ते से होकर अनेक सङ्कट सहन कर पेकिन पहुँची थी। यूरोपियन लोगों को उसी समय से चीन देश की सच्ची हक़ीक़त मालूम हुई। सालढाना के बाद सन् १६०० में अलफांजो कॅस्ट्रो वाइसराय हुआ। उस समय डच लोग बहुत प्रबल हो गये थे। मलाका के पास समुद्र में उनसे और पोर्तगीज़ों से लड़ाइयां हुईं जिनमें पोर्तगीज़ लोगों की हार हुई। कॅस्ट्रो मलाका में सन् १६०६ ई० में मर गया। इसके बाद गोआ के आर्चबिशप मेनजिस ने दो वर्षों तक गवर्नर का काम किया। उसके समय में मोज़ाम्बिक के पास डच और पोर्तगीज़ों की लड़ाई हुई। सन् १६०९ ई० से मेंडोसा ने कुछ वर्षों तक गवर्नरी की। इसके बाद ताह्वोरा नामका गवर्नर आया। इसके शासन-काल में अङ्गरेज़ और पोर्तगीज़ों से सूरत के बन्दर में लड़ाई हुई। इस लड़ाई का वर्णन अङ्गरेज़ों के प्रकरण में किया जायगा॥

६—सन् १६१२-१६४० तक, उतरती कला।

सन् १६१२ ई० में आज०ह्वीडो वाइसराय हुआ। इसके समय में मक्के को जाने वाला मुग़ल बादशाह का एक

जहाज़ पोर्तगीज़ लोगों ने सूरत के बन्दर में पकड़ लिया। इसलिये बादशाह ने दमन को घेर कर उसे बहुत तहस नहस किया। इसी तरह उसने वसई को भी घेर लिया। तब सन् १६१५ ई० में पोर्तगीज़ों ने बादशाह के साथ सन्धि की। इस सन्धि में इस बात का क़रार किया गया था कि बादशाह अङ्गरेज़ और डच लोगों को न रहने दे। परन्तु यह क़रार टिक नहीं सका॥

इस समय पोर्तगीज़ शासन की बहुत ही निकृष्टावस्था हुई। चारों ओर उसके शत्रु उत्पन्न हो गये। उनकी भीतरी व्यवस्था भी बिल्कुल बिगड़ गई थी। व्यापारी माल ख़रीदने के लिये यूरोप से जो पैसा आता था उसे ये अधिकारी राज्य के काम में ख़र्च कर डाला करते थे। इधर कितने ही अधिकारी सरकार के कर्ज़दार रहा करते थे। खज़ाने में रुपये का बिल्कुल अभाव था। गिरजों की सारी सम्पत्ति भी सरकारी काम में ख़र्च की जाती थी। इसी समय लड़ाई का अधिक ज़ोर दिखाई पड़ा। इसलिये सन् १६१४ ई० में यूरोप से हुक्म आया कि बड़े बड़े ओहदों की सब जगहें नीलाम के द्वारा बेच दी जावें, और जो प्राप्ति हो उसी से ख़र्च चलाया जाय। इस आज्ञा के अनुसार पुराने नौकर एकदम निकाल दिये गये और वे नौकरियां

उन्हें दी गई जिन्होंने उनके लिये अधिक दाम दिया। क़िले के प्रधान अफ़सरों की जगहें भी इसी तरह बेची जाने लगीं। सारांश, पोर्तगीज़ों की उन्नति का समय जाता रहा। सन् १६१८ ई० में जॉन कूटिनो वाइसराय नियुक्त होकर आया और अज़०हीडो लौट गया। अज०हीडो बहुत ही दुष्ट था। लौटने पर पोर्तगीज़ सरकार ने उसे क़ैद कर कालकोठरी में बन्द कर दिया। कुछ दिनों के बाद उसकी जाँच हुई; परन्तु मुक़द्मे के बाद उसकी और भी अधिक दुर्दशा हुई। हिन्दुस्थान में उसने जो दुष्टता की वह तर्क से बाहर है। सीलोन में विजय प्राप्त करने के पश्चात् उसने लड़कों को चक्की में पिसवा दिया था, और उन्हीं की माताओं से उन्हें पिसवाया था। सिपाहियों को उसने हुक्म दिया था कि कुछ लड़कों को भालों की नोकों पर नचाओ। इस क्रूर तमाशे को देखकर उसे बड़ा आनन्द हुआ करता था। कितने ही लोगों को मगरों से नोचवाने के लिये वह समुद्र में फिकवा देता था॥

कूटिनो के समय ईरान और चीन में बहुत घटनायें हुईं। सन् १६१९ से १६२२ ई० तक आलबुकर्क ने गवर्नर का काम किया। उसके बाद १६२२ से १६२७ तक फ्रांसिस्को डि गामा वाइसराय के पद पर रहा। सन् १६२१ में तीसरा

फिलिप मर गया, और चौथा फिलिप गद्दी पर बैठा। इसी समय से स्पेन देश की भी उतरती कला शुरू हुई। पोर्तगीज़ों का भाग्य ऐसा मन्द हुआ कि उसी समय इधर उनके कई जहाज़, मनुष्य और बहुत सा माल तूफ़ान में फँस कर नष्ट हुआ। गामा ने सब बातों की जाँच कर सच्ची हक़ीक़त यूरोप में भेजी। परन्तु फिर उन्नति करने का मार्ग किसी को नहीं मिला। गोआ और अन्य स्थानों में साधारण लोगों की अपेक्षा धर्माधिकारी पादरियों की संख्या दूनी थी। इसलिये आज्ञा हुई कि अब आगे नये गिरजे न बनाये जाँयं। डच और अङ्गरेज़ लोग तो उनके बिल्कुल पीछे पड़े हुए थे। आर्मेज़ बन्दर उनके हाथों से निकल गया। इस स्थान में उनकी आमदनी सबसे अधिक थी। ऐसे कठिन मौक़े पर भी पोर्तगीज़ सरकार के नौकरों में जो खानगी व्यापार करने की आदत समाई हुई थी वह जारी ही रही। लिस्बन से लड़कियां भेजी जाती थीं और इस बात का क़रार किया जाता था कि उनके पतियों को सरकारी नौकरियां दी जावेंगीं। यह निश्चित रहा करता था कि अमुक लड़की के पति को अमुक स्थान की गवर्नरी दी जावेगी, इसलिये उसका विवाह करने के लिये अथवा उस जगह की नौकरी के लिये अनेकों उड़ान लगाया

करते थे। पोर्तगीज़ सरकार का उद्देश था कि इस साधन से पोर्तगीज़ प्रजा बढ़ाई जाय ॥

सन् १६२८ ई० में कूटिनो चला गया, और उसकी जगह का काम कुछ दिनों तक कोचीन का बिशप ब्रिटो देखता रहा। इसके बाद माइकेल नोरोन्हा उस जगह पर नियुक्त हुआ। उस समय डच और अङ्गरेज़ों के इधर आजाने से पोर्तगीज़ व्यापार एकदम बैठ गया था। बैठे हुए व्यापार को बढ़ाने के उद्देश से राजा ने एक कम्पनी खड़ी की। उस कम्पनी में स्वयं राजा ने बहुत सी रक़म देकर हिस्सा लिया, और बड़े बड़े लोगों से आग्रह कर उन्हें उसमें शामिल कराया। हिन्दुस्थान के गोआ आदि स्थानों के निवासियों को भी कम्पनी के हिस्से ख़रीदने का उसने हुक्म दिया। परन्तु यहां वालों ने कम्पनी में अपनी रक़म नहीं फँसाई। वह कम्पनी शीघ्र ही डूब गई। नोरोन्हा के प्रयत्न से अङ्गरेज़ और पोर्तगीज़ों में बहुत मित्रता रही, किन्तु डच लोगों से उतना स्नेहभाव नहीं रहा। नोरोन्हा बहुत होशियार था। वह इस बात को अच्छी तरह समझ गया था कि बाहरी शत्रुओं की अपेक्षा अपने लोगों से ही अपना अधिक नाश हो रहा है। इसलिये अपने राजा को भी वह ऐसी ही बातें लिख भेजता था। विशेषकर धर्म

खाते के जेसुइट और अन्य लोगों ने उसे बहुत त्रास दिया। वे उसका हुक्म नहीं मानते थे। वे सरकारी पैसा ख़र्च कर डालते, और शत्रुओं से भीतरी षड्यन्त्र रचते थे। यही नहीं बल्कि खुल्लम खुल्ला वे कहा करते थे कि पोर्तगाल के राजा के हम अधीन नहीं हैं। यहां आने पर बहुत से पोर्तगीज़ लोग साधु होकर रहते थे। इससे जो चाहते सो खराब काम वे कर सकते थे। सन् १६३३ ई० में फँरासीसी लोग व्यापार के लिये इधर आये। इस से पोर्तगीज़ों के अधिकार में बहुत धक्का बैठा। उसी समय मुग़ल बादशाह शाहजहां ने उनपर शस्त्र उठाया। बादशाह आदिलशाह से लड़ रहा था। उसमें पोर्तगीज़ों ने आदिलशाह की मदद की। इससे बादशाह बहुत क्रुद्ध हुआ, और एक बहुत बड़ी फ़ौज भेज कर बङ्गाल प्रान्त से सम्पूर्ण पोर्तगीज़ों को मार भगाया॥

सन् १६३५ ई० में अङ्गरेज़ों के लन्दन नामक जहाज़ को किराये पर लेकर पोर्तगीज़ों ने चीन देश का सफ़र किया। इसमें उनका यही मतलब था कि अङ्गरेज़ों के नाम से व्यापार अच्छा चलेगा। परन्तु चीन देश में अङ्ग-रेज़ों ने ही अनायास अपनी कोठी क़ायम की। इससे ऊपर के उपाय से अङ्गरेज़ों को उलटी मदद पहुँची॥

सन् १६३५ ई० में नोरोन्हा काम छोड़कर चला गया,

और उसकी जगह पर पेड्रो डि सिल्वा की नियुक्ति हुई। उस समय खजाने में पैसा न होने के कारण राज्य पर बड़ा संकट आया था ॥

उस समय सारा व्यापार डच लोगों के हाथ चला गया था, और अनेक प्रकार की अड़चनें आ पड़ी थीं। उन अड़चनों से पार पाने की योग्यता सिल्वा में नहीं थी, क्योंकि वह बहुत ग़रीब और सीधा साधा मनुष्य था। उसके हाथ से कुछ बन्दोबस्त न हो सका। डच तथा अङ्गरेज़ों का अधिकार बढ़ता ही गया। सन् १६३९ ई० में सिल्वा मर गया, और जॉन मेंज़िस लिस्बन से गवर्नर होकर आया ॥

सन् १६४० ई० के दिसम्बर महिने में पोर्तगीज़ लोगों ने स्पेन के विरुद्ध बलवा कर फिर स्वतंत्रता प्राप्त की। ब्रेगेंज़ा का ड्यूक चौथे जॉन के नाम से पोर्तगाल का राजा हुआ। पोर्तगाल के स्वतंत्र हो जाने पर वहां के राजा ने डच लोगों से मित्रता कर अपनी प्रधानता क़ायम रखने का प्रयत्न किया, परन्तु इस कार्य में उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई, उलटा पहले का सारा वैभव नष्ट हुआ। सीलोन, मलाका और मकाव स्थान भी पोर्तगीज़ों के हाथ से निकल गये। इसके आगे पोर्तगीज़ों का अलग वर्णन करना आवश्यक नहीं है। ज़रूरी बातें अङ्गरेज़ों के प्रकरण में आ जावेंगी ॥

छठवां प्रकरण ।

पोर्तगीज़ राज्य की गुणदोषचर्चा ।

१-पोर्तगीज़ शासन की नीति ।

चौथे प्रकरण में हमने यह बात दिखलाई है कि पोर्तगीज़ राज्य की स्थापना किन कारणों से होती गई; और पांचवें प्रकरण में दिखलाया है कि हिन्दुस्थान में कैसे पोर्तगीज़ अफ़सर नियुक्त होकर आये, और यहां आकर उन्होंने कैसी कैसी भारी करतूतें कीं। यह वर्णन केवल युद्ध की चर्चा से भरा हुआ है इससे कदाचित पाठकों को रुचिकर न हो किन्तु तो भी आगे का सन्दर्भ समझने के लिये इस वर्णन की आवश्यकता थी। अब इस प्रकरण में पिछली बातों पर आलोचनापूर्ण विवेचन करना है॥

पहले पहल पोर्तगीज़ों ने अनेक सङ्कट सहन किये, और अनेक विजय सम्पादन किये। इसलिये उनका व्यापार बढ़ा, और उन्हें बहुत कुछ मुनाफ़ा भी होने लगा। जहाज़ों का नियमित प्रवास, कहां कौन चीज़ मिलती है इसका निश्चय और पोर्तगीज़ हथियारों की बेलाग ताक़त आदि कारणों से थोड़े दिनों में ही लिस्बन शहर और पोर्तगाल देश बहुत धनवान हो गया। सन् १५९५ ई० में डच लोगों ने यहां व्यापार आरम्भ किया। जब तक डच लोग नहीं आये तब तक पोर्तगाल की अनन्यविभक्त उन्नति क़ायम रही। जब व्यापार और पैसे की ओर राष्ट्र का ध्यान लगा तब राज्यशासन की ओर दुर्लक्ष होने लगा। धन के लोभ में फँस कर राज्य-विस्तार का मनोरथ ढीला पड़ गया॥

पोर्तगाल के हाथ में एशिया का व्यापार जाने का कारण उसका जहाज़ी बेड़ा है। सन् १४९७ ई० से १६१२ ई० तक हिन्दुस्थान में व्यापार के लिये उनके कुल ८०६ जहाज़ व्यवहार में आये। इनमें से १५८० से १६१२ तक १०६ जहाज़ आये। कुल आनेवाले जहाज़ों में से ४२५ जहाज़ यूरोप को लौट गये; २८५ इधर भिन्न भिन्न स्थानों में रहे तथा ९६ जहाज़ टूट अथवा डूब जाने के कारण नष्ट हुए। उनका आकार

अनुमान १०० टन से ५५० टन तक था। उन पर तोपें भी रहती थीं। तोपों का उपयोग युद्ध करने तथा जहाज़ों में वज़न बनाये रखने के लिये होता था। पोर्तगाल के कारीगर अपनी कुशलता दिखाने के लिये बड़े भारी जहाज़ तैयार करते थे, परन्तु वे इधर की मुसाफ़री में टिकते नहीं थे। १५९१ तक बारह वर्षों में बड़े भयानक असली २२ जहाज़ डूब कर नष्ट हो गये। इन जहाज़ों के सिवाय गोआ और दमन आदि स्थानों में वे लोग उत्तम सागोन के जहाज़ बनाया करते थे। उन्होंने जो जहाज़ यहां बनवाये उनमें से कॉन्सटांटिना नाम का एक जहाज़ १५५० ई० में बनवाया था। उसने आफ़्रिका का चक्कर लगा कर हिन्दुस्थान से १७ बार यूरोप की सफ़र की, और वह २५ वर्ष तक क़ायम रहा॥

इतने से जहाज़ी बेड़े के द्वारा पोर्तगीज़ लोग पन्द्रह हज़ार मील का किनारा किस प्रकार अपने अधिकार में रखते थे यह एक बड़ा प्रश्न है। इसका यही उत्तर है कि वे लोग सुविधा देखकर ही और अपनी सुविधा की जगह पर मौक़ा साधकर ही अपने सम्पूर्ण जहाज़ी बेड़े से हमला किया करते थे। यदि वे जीतते थे तो वहां अधिकार जमा कर अपनी फ़ौज रखते थे, और यदि हार गये तो क्रूरता के साथ अपनी धाक बैठाकर उसी दम समुद्र में भाग

जाते थे, और वहां जाकर अदृश्य हो जाते थे। एशिया के किनारे वाले लोगों को इस बात का बड़ा आश्चर्य मालूम होता था कि ये शत्रु समुद्र से छिपे छिपे कब आ जाते हैं और कब अदृश्य हो जाते हैं। वे उनके आने जाने का पता नहीं पा सकते थे। इस प्रकार भयानक बदला लेने वाले और बहादुर दुश्मन से एशिया वालों को कभी सामना नहीं करना पड़ा था। उन्हों ने किनारे किनारे ही अपने अड्डे स्थापित किये थे। इसलिये पोर्तगाल का ह्रास हो जाने पर भी राज्य की रक्षा करने के लिये यह थोड़ी सी तैयारी काफ़ी थी। जब तक उन्हीं की बराबरी का दूसरे राष्ट्र का जहाज़ी बेड़ा इधर आने जाने नहीं लगा तब तक उनकी प्रधानता बनी रही। ज्योंहीं दूसरे यूरोपियन राष्ट्र इधर आने लगे त्योंहीं पोर्तगीज़ों की सत्ता नष्ट होने लगी। परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी वीरता और कुशलता कम दर्जे की थी। सन् १५१४ ई० में इमेन्युअल राजा ने लाल समुद्र और ईरान की खाड़ी के बन्दरों, उनका अन्तर और लङ्गर की जगहों की जाँच करने का हुक्म दिया। तब से सामुद्रिक शोध आरम्भ हुआ, व आगे के सौ वर्षों में पोर्तगीज़ लोगों ने भूगोल सम्बन्धी तथा समुद्र की

स्थिति के विषय में बहुत सी जानकारी प्राप्त की। यह जानकारी युद्ध के काम में उन्हें बहुत उपयोगी हुई। लाल समुद्र के नाके, सीलोन का किनारा और मलाका के मुहाने में मज़बूती कर लेने से वे सम्पूर्ण किनारे की देख-रेख कर सकने लगे। एडन उनके अधिकार में नहीं आसकता था इसलिये उन्होंने दीव द्वीप पर कब्ज़ा किया। यह दीव उनके लिये बड़ा उपयोगी हुआ, क्योंकि लाल समुद्र और ईरान की खाड़ी से यदि कोई जहाज़ हिन्दुस्थान की ओर आ रहा हो तो दीव से उस पर देखरेख रखने का काम ठीक हो सकता था। इस प्रकार दीव, सीलोन और मलाका इन तीन स्थानों में अधिकार जम जाने से मसाले का सारा व्यापार पोर्तगीज़ों की मुट्ठी में आ गया। इस कमाई के करने में पोर्तगीज़ वीरों ने बहुत शूरता दिखलाई थी इसलिये उनके अनेक शूरवीर पुरुषों की युद्ध कुशलता किसी भी इतिहास में शोभा पाने योग्य है॥

परन्तु उनका दारमदार केवल शूरता पर ही नहीं था। किनारे के राजा आपस में लड़ते झगड़ते थे; पोर्तगीज़ लोग उनमें शामिल हो कर किसी से लड़ते थे, किसी को सहायता पहुँचाते थे और किसी से सन्धि कर अपना

मतलब गाठते थे। दूसरे के झगड़े में पड़कर अपना फ़ायदा निकाल लेने की युक्ति पीछे के आये हुए यूरोपियनों ने भी स्वीकार की। इतिहासकारों का कथन है कि यह युक्ति पहले पहल फ्रेंच गवर्नर डूप्ले को सूझी थी कि इस देश के लोगों की फ़ौज तैयार कर और इस देश के राजाओं के झगड़ों से लाभ उठा कर उद्योग करने से हिन्दुस्थान में हम अपना राज्य स्थापित कर सकेंगे। परन्तु डूप्ले से दो सौ वर्ष पहले पोर्तगीज़ लोगों ने इस युक्ति का प्रत्यक्ष प्रयोग कर देखा था। कहा जा सकता है कि यथार्थ में पहले पहल इसका प्रयोग प्रथम आलबुकर्क ने ही किया। परन्तु इस गुरुमन्त्र के ढूँढ़ने का प्रयोजन ही नहीं था। एशिया खण्ड में पैर रखतेही यूरोपियनों के लिये ऐसा करना अपरिहार्य ही था। हिन्दुस्थान में एकछत्र शासन केवल मुग़ल लोगों का हुआ। मुग़लों के पचास वर्ष पहले पोर्तगीज़ लोग हिन्दुस्थान में आये; उस समय देश में जहां तहां अन्धाधुन्धी मची थी, इसलिये उनसे टक्कर झेलने के लिये कोई सामर्थ्यवान सत्ताधारी नहीं था। इसलिये पोर्तगीज़ों की बन आई। इसके बाद दो सौ वर्षों तक मुग़लों का राज्य रहा। ज्योंहीं मुग़लों की सत्ता क्षीण होने लगी त्योंहीं अङ्गरेज़ लोग

राज्यप्राप्ति के उद्योग में लगे। उस समय अङ्गरेज़ भी पोर्तगीज़ों के समान विजयी होते गये। इससे मालूम पड़ता है कि किसी भी राष्ट्र को स्थायी राज्य-व्यवस्था की कैसी आवश्यकता है॥

२—व्यापार बढ़ाने की युक्ति, अरबों का पतन।

जिस समय पोर्तगीज़ लोग हिन्दुस्थान में आये वह समय उनके लिये बहुत लाभदायक था। उस समय हिन्दुस्थान में मुग़लों का प्रबल राज्य स्थापित नहीं हुआ था। इसके सिवाय जहां तहां बेचैनी और दङ्गे बखेड़े मचे हुए थे। तिस पर भी जिस मलबार किनारे पर वे आकर उतरे वह जगह भी उनके लिये अधिक सुविधाजनक थी। वह प्रदेश बिलकुल अलग है इसलिये अन्य भागों से उसे सहायता नहीं मिल सकती थी; किसी को इस बात की परवाह भी नहीं थी कि वहां क्या हो रहा है। वहां पर हज़ारों वर्ष से विदेशी व्यापारियों का आवागमन हो रहा था। आपस का देन लेन और व्यापार जारी था इसलिये वहां के लोग नहीं समझ सके कि ये नये आये हुए पोर्तगीज़ व्यापारी वहां राज्य की जड़ जमाने और अपना धर्म फैलाने का

प्रयत्न करेंगे। वहां के लोग समझते थे कि क्रिश्चियन, यहूदी, मुसलमान तथा अन्य विदेशी व्यापारियों को यहां आने देने में हमारा फ़ायदा ही होगा। इस समझ से पोर्तगीज़ों ने खूब फ़ायदा उठाया। मलबार किनारे के सब राजा विदेशियों के साथ बड़ी ममता का वर्ताव रखते थे। उनके धर्माचार में किसी प्रकार हस्तक्षेप न कर उन्हें स्वतन्त्रता के साथ धर्माचार का पालन करने देते थे। ईसा की तीसरी सदी में दो रोमन एलची मलबार में नियुक्त किये गये थे॥

सेण्ट टॉमस नाम का एक ईसाइ साधु सारे हिन्दुस्थान में ईसाइ धर्म सिखाता फिरता था। अन्त में सन् ६८ ई० में मद्रास के निकट वह मारा गया। परन्तु पूर्वी और पश्चिमी किनारे में उसके अनुयाइयों की संख्या बहुत हो गई थी। वहां के राजाओं ने इन क्रिश्चियन लोगों को राजकीय हक़ों की सनदें दी थीं। मलबार के नायर लोगों के समान ही इन सेंट टॉमस क्रिश्चियनों का आदर था; फौजों में भी इन लोगों की अच्छी संख्या थी। विजय नगर की नौकरी में उनकी बड़ी भर्ती थी। सन् १४४२ ई० में विजय नगर के राजा का प्रधानमंत्री इन्हीं में का एक क्रिश्चियन था। पहले यह

बात लिखी जा चुकी है कि क्रिश्चियनों के समान ही मलबार में मुसलमानों का भी प्रभाव था॥

इन सब कारणों से मलबार में पोर्तगीज़ लोगों का सहज ही प्रवेश हुआ, और व्यापार में उनकी अच्छी उन्नति हुई। पहली ही खेप में जो माल हिन्दुस्थान से वे यूरोप को लेगये उसमें उन्हें लागत से साठ गुना अधिक फ़ायदा हुआ। इससे पोर्तगाल के राजा और वहां के निवासियों का इस प्रकार भाग्य चमक उठने से यूरोप के अन्य राष्ट्र अचम्भे में आ गये। यद्यपि पोर्तगीज़ सरकार ने इस व्यापार को अपनी ही मुट्ठी में रक्खा था तथापि कुछ शर्तों पर अन्य ईसाई राज्यों को भी लिस्बन में अपने जहाज़ भेज कर व्यापार करने की वह सुविधा देती थी। पहले पचास वर्षों तक इस सुविधा से अङ्गरेज़ व्यापारियों ने अच्छा फ़ायदा उठाया। पोर्तगाल के राजा ने दो चार बार हिन्दुस्थान को अपना जहाज़ी बेड़ा भेजा तब उसे विश्वास हुआ कि मलबार किनारे पर पाँच छ बन्दरों में माल भर कर यूरोप लाया जाय तो अपना व्यापार शान्ति के साथ चल सकेगा। किन्तु यदि ऐसा न किया जाय और मुख्य बन्दर कालिकोट के द्वारा ही व्यापार करना हो तो अरब लोगों के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण कर उनकी प्रबलता

नष्ट करनी होगी। इन दो उपायों में से इमेन्युअल राजा ने दूसरे मार्ग का अवलम्बन किया। पोर्तगीज़ सरदार काब्राल ने कोचीन में पहली कोठी क़ायम की। उसकी रक्षा करने के लिये वास्को डि गामा के अधिकार में राजा ने एक जहाज़ी बेड़ा भेजा। वास्को डि गामा की पहली मुसाफ़री केवल नया देश ढूँढ़ निकालने के लिये थी। परन्तु इस दूसरी मुसाफ़री में उसे मलबार किनारे पर अपने व्यापार का स्थायी प्रबन्ध करना था। इन दोनों कामों को उसने पूर्ण रूप से सिद्ध किया। सन् १५०२ ई० में कालिकोट को पराजित कर उसने अरबव लों का एक जहाजी बेड़ा नष्ट किया; और कोचीन, कनानूर, कोलम और भटकल नामक चार बन्दरों में अपना व्यापार शुरू कर दो स्थानों में उसने अपनी कोठियां क़ायम कीं। उन कोठियों की रक्षा के लिये उसने कुछ जहाज़ नियुक्त कर दिये। कनानूर की कोठी में उसने कुछ तोपें और बारूद गोले रख दिये थे। परन्तु इस विजय की खूबी उसकी दुष्टता और क्रूरता के कामों से एकदम ढँक गई। इसके बाद दो तीन वर्षों में खुल्लमखुल्ला युद्ध की तैयारी कर पोर्तगीज़ों ने अरबवालों की प्रधानता नष्ट की, और मलबार किनारे पर अपना बन्दोबस्त किया॥

इस प्रकार थोड़े समय में किसी राष्ट्र के इस प्रकार प्रचण्ड विजय प्राप्त करने के उदाहरण इतिहास में अधिक नहीं हैं। नया देश ढूँढ़ निकालने का जो आनन्द हुआ उसके जोश में पोर्तगीज़ राष्ट्र की विलक्षण शक्ति संसार के देखने में आई। पोर्तगीज़ों के इस उद्योग से केवल अरबवालों का ही व्यापार नहीं डूबा, बल्कि वेनिस, जिनोआ आदि भूमध्य समुद्र के राष्ट्रों का व्यापार भी डूब गया। हिन्दुस्थान में पोर्तगीज़ों का राज्य स्थापित होने से इमेन्युअल राजा पर एक नई जवाबदारी आ पड़ी। राजा ने समझा कि यदि हिन्दुस्थान का राज्य क़ायम रखना हो तो वहां की राज्य-व्यवस्था हर एक गवर्नर की इच्छा के अनुसार पलटाते रहना उपयोगी नहीं है, बल्कि उसका स्थायी प्रबन्ध कर देना चाहिये। इसलिये राजा ने आलमीडा को गवर्नर नियुक्त कर भेजा, और उसे तीन काम सौंपे गये कि (१) आफ्रिका के किनारे पर अपने मज़बूत थाने बना कर वहां अपनी जड़ पक्की की जाय, (२) मलबार किनारे के बन्दर अपने अधिकार में कर वहां मज़बूत कोठियां रक्खी जाँय और (३) अरबवालों का समुद्री अधिकार लाल समुद्र में ही नष्ट कर दिया जाय। उस समय तक हिन्दुस्थान के व्यापार के लिये यूरोपियन राष्ट्रों ने जो प्रयत्न किये उनमें लाल

समुद्र और उसके दोनों किनारों के प्रदेश पर मुसलमानों की ही प्रधानता बनी रही। परन्तु समुद्र में अन्त में स्पेन और पोर्तगाल को सफलता प्राप्त हुई। इसके बाद अरब समुद्र में यह झगड़ा होने वाला था। पोप और कितने ही यूरोपियन राष्ट्रों की समझ थी कि इस झगड़े में हम टिक नहीं सकेंगे; परन्तु इमेन्युअल राजा ने इस बात की परवाह नहीं की। उसने साहस और ढिठाई के साथ अपना प्रयत्न आरम्भ किया, और अन्त में उसे सफ़लता भी प्राप्त हुई। आलमीडा और उसके पराक्रमी लड़के ने अरब समुद्र पर मुसलमानों का अच्छा पराभव किया, और आगे चल कर सौ वर्षों तक वह समुद्र पोर्तगीज़ों के ही अधिकार में रहा। मुसलमान मिसर जीतने के काम में लगे हुए थे इसलिये अरब समुद्र की ओर उनका आना नहीं हो सका॥

इतने से ही इमेन्युअल राजा को सन्तोष नहीं हुआ। इस काम में उसने विलक्षण चाल बाज़ी दिखलाई। सौभाग्य से उसका शासन बहुत दिनों तक स्थायी रहा। सन् १५०० ई० से १५०५ ई० तक पाँच वर्ष में मलबार किनारे का व्यापार उसके अधिकार में आगया। अगले पाँच वर्षों में अरब समुद्र पर उसकी सत्ता क़ायम हुई,

और इससे भी आगे पाँच वर्षों में आलबुकर्क के हाथों भारत के पश्चिमी किनारे पर उसका राज्य स्थापित हुआ।

आलबुकर्क ने सन् १५०३-०४ ई० में हिन्दुस्थान का पहला प्रवास किया; और यहां की स्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण कर वह देश लौट गया। वहां जा कर राजा से उसने सारी हक़ीक़त कह सुनाई। इसके बाद १५०७ ई० में वह एक जहाज़ी बेड़ा लेकर लाल समुद्र के मुसलमानी नाकों पर अधिकार जमाने के लिये आया। सबसे पहले उसने सकोट्रा पर अधिकार जमाया। वहां मुसलमानों की मुख्य बस्ती थी, और हिन्दुस्थान के अनुसार थोड़े से क्रिश्चियन भी थे। उस द्वीप पर अधिकार जमा कर उसने मुसलमानों की सब ज़मीन छीन ली और उसे क्रिश्चियन निवासियों में बाँट दिया। उन लोगों को रोमन कैथलिक पन्थ की दीक्षा दी। इसके बाद आर्मज़ में अपना प्रभाव जमाकर वह मलबार किनारे पर आया। वहां १५०९ ई० में आलमीडा से उसे गवर्नर की जगह मिली। इस कारबार को उसने छः वर्षों तक किया। इन छः वर्षों में मलबार किनारे पर पोर्तगीज़ शासन की जड़ जम गई। यथार्थ में आलबुकर्क का झगड़ा केवल मलबार किनारे के प्रान्तों के ही लिये नहीं था बल्कि

सारे मुसलमानों के विरुद्ध उसका प्रयत्न था। जेरूसलम के लिये ईसाइ और मुसलमानी धर्मों में पहले जो झगड़ा हुआ था वैसा ही यह झगड़ा उन्हीं दोनों राष्ट्रों में व्यापार प्राप्ति के लिये हुआ। इस झगड़े की कल्पना आलबुकर्क के मनमें इतनी जम गई थी कि ऐसी विलक्षण पागलपन की कल्पना भी उसके मनमें घूम रही थी कि मिसर के सुलतान का देश ऊसर बनाने के लिये नील नदी का प्रवाह उलटा कर लाल समुद्र में लाया जाय, और मक्के से मुहम्मद की क़बर खोद कर मुसलमानों का पाया नष्ट कर दिया जाय। परन्तु हिन्दुस्थान के कारबार के विषय में उसकी कल्पना योग्य और सम्भव थी। लाल समुद्र और ईरान की खाड़ी के व्यापारी नाके पोर्तगाल के अधिकार में लाना और मलबार किनारे तथा पूर्व समुद्र का मुसलमानी व्यापार बन्द करना, येही उसे मुख्य काम करने थे। गोआ पर अधिकार जमाकर उसने अरब समुद्र में मुसलमानों का आना जाना बन्द कर दिया। इसी तरह आर्मज़ और मलाका अधिकृत करने से इधर मुसलमानों के आने की बातही न रह गई। पोर्तगाल सरीखे लगभग दश लाख बस्ती के छोटे ईसाइ राष्ट्र के लिये आफ्रिका से मलाका तक सात आठ हज़ार कोस की लम्बाई और आफ्रिका के दक्षिणी सिरे से लाल

समुद्र तक दो हज़ार कोस की चौड़ाई का किनारा अपने अधिकार में कर सौ वर्ष तक सारे मुसलमानों से टक्कर झेलते रहना कोई छोटी बात नहीं है ॥

यह झगड़ा दो धर्मों के बीच का था। आलबुकर्क के मन में तो बराबर यह विचार घूम रहा था कि मुसलमानी धर्म नष्ट कर कैथलिक धर्म की वृद्धि की जाय। मुसलमानों के मन में भी ऐसा ही विचार था। हिन्दुस्थान के मुसलमान, मिसर के मुसलमान और अन्त में तुर्क लोग इस बड़े झगड़े में शामिल हुए थे। आलबुकर्क के मर जाने पर कितने ही वर्षों तक तुर्क लोगों ने पोर्तगीज़ों से खूब बदला लिया। दीव, मस्कत, मलाका आदि स्थानों में तुर्की बेड़ा पूर्व समुद्र में पोर्तगीज़ों से बराबर लड़ता रहा। अरबवालों को वेनिसवाले मदद पहुँचाते थे। क्योंकि कायरों में अरबवालों का व्यापार बन्द हो जाने से वेनिसवालों का बड़ा नुक़सान हुआ। इसलिये मुसलमानों को सहायता पहुँचा कर वे पोर्तगीजों को सताना चाहते थे। यह इस विषय का एक उदाहरण है कि जब स्वार्थ की बात आ पड़ती है तब स्वजाति और स्वधर्म किस प्रकार एक ओर ही पड़े रह जाते हैं। सन् १५८० ई० में स्पेन और पोर्तगाल देश एक हो

गये; उस समय क्रिश्चियन लोगों की सरसता हुई। सारांश, यह झगड़ा सौ वर्ष तक जारी रहा। यूरोप में जो क्रिश्चियन और मुसलमानों का झगड़ा हो रहा था, हिन्दमहासागर में यह उसी की आवृत्ति थी। बाइबल में एक वाक्य है कि "मुझ से माँगो तो मैं तुम्हें सम्पूर्ण भिन्न धर्मी लोग और पृथ्वी के दूर दूर के देश तुम्हारे अधिकार में कर दूँगा"। सोलहवीं सदी के लोगों ने समझा कि यह वाक्य अब सत्य हुआ है। मुसलमानों के इतिहास से हमें मालूम हो रहा है कि हिन्दुस्थान में मुसलमानों का राज्य स्थापित हुआ उस समय पहले वे अपना धर्म स्थापित करने के लिये आये थे, और उन्होंने यहां नाना प्रकार के जुल्म किये थे। किन्तु यदि कोई ऐसा समझता हो कि क्रिश्चियन लोग उतने करारे नहीं हैं, और धर्म के विषय में वे लोगों पर जुल्म नहीं करते तो कहना पड़ेगा कि उस समय का इतिहास हमारी समझ में नहीं आया। क्रिश्चियन राष्ट्रों के मन में बीच में धर्म का पर्दा रखकर व्यापार और सम्पत्ति प्राप्त करने का उद्देश था। सन् १५०० ई० में काब्राल के जङ्गी बेड़े के साथ इमेन्युअल राजा ने कई पादरी इधर भेजे थे और उन्हें निम्न लिखित ताकीद की थी:—"मुसलमानों तथा दूसरे अन्य धर्मावलम्बियों

पर तलवार का हमला करने के पहले ये पादरी उनपर अपने धर्म की गोली चलाकर देखें। अर्थात् वे उन्हें बाइबल का उपदेश करके उन्हें ईसाइ धर्म ग्रहण करने के लिये कहें। यदि वे इस बात को अस्वीकार करें और व्यापार का उलट फेर करने को तैयार न हों तो उनपर तलवार और बन्दूक की गोली का प्रयोग कर उन्हें नीचा दिखाया जाय"। हण्टर सरीखे इतिहासकारों ने भी क़बूल किया है कि यूरोपियन राष्ट्र धर्म और सभ्यता का नाम आगे कर सारी पृथ्वी का दिग्विजय करते फिरते हैं, परन्तु मूल में केवल उनका स्वार्थ है॥

सम्पूर्ण व्यापार को अपने ही अधिकार में रखने की पोर्तगीज़ लोगों की पद्धति निम्न लिखित अनुसार थी। किसी राजा अथवा अधिकारी को जीतने पर पोर्तगीज़ लोग साधारणतः उससे ऐसी सन्धि करते थे कि वह पोर्तगाल नरेश की शरण में आवे, पोर्तगीज़ों को अपने राज्य में व्यापारी कोठी और क़िले बनाने की जगह देवे तथा सालाना कर देकर फ़ौज़ रखने का ख़र्च देवे। लाल समुद्र से लेकर मलक्का तक के किनारे के सब अधिकारियों से उन्होंने ऐसी ही सन्धि की थी। इन

सन्धियों का यह परिणाम होता था कि बन्दरों पर आने वाले पोर्तगीज़ जहाज़ों को कर नहीं देना पड़ता था, और वहां जो ज़कात (महसूल) वसूल की जाती थी उसकी आमदनी पोर्तगाल के राजा को मिलती थी। यह सामान्य प्रकार था, मौक़े मौक़े पर इसके अनेक अपवाद भी होते थे। कालिकोट का सामुरी प्रबल था, इसलिये उसे क़ब्ज़े में लाने के लिये बहुत समय लगा। कोचीन के राजा को पहले मीठी मीठी बातें कह कर अन्त में उन्होंने उसे मुँह के बल गिराया। कोलम में उन्हें बिलकुल परिश्रम नहीं करना पड़ा। इसी तरह ईरान की खाड़ी का आर्मज़ स्थान भी उनके अधिकार में आ गया। एडन पर भी थोड़ा बहुत प्रभाव जम गया, और यह स्थान अनेक बार कभी पोर्तगीज़ों और कभी मुसलमानों के हाथ गया। इस तरह पश्चिम की ओर मुसलमानों की थोड़ी बहुत प्रबलता थी, परन्तु पूर्व की ओर पोर्तगीज़ व्यापार बहुत अच्छा चला। मलबार किनारे की सब मिर्च और सोंठ उन्हें मिलने लगी। सीलोन की दालचीनी व पूर्व ओर के प्रायद्वीपों की लौंग और जायपत्री उनके अधिकार में आ गई। सन् १५६४ में मलक्का का सब प्रान्त पोर्तगीज़ राज्य के अधिकार में आ गया॥

पोर्तगीज़ों ने यहां के राजाओं से जो सन्धियां की थीं वे आगे चलकर ईस्टइण्डिया कम्पनी को बहुत अखरीं। क्योंकि पोर्तगीज़ों का मन दुखाये बिना कम्पनी अपना व्यवहार पूर्ण नहीं कर सकती थी। पोर्तगीज़ों का सारा दारमदार जङ्गी बेड़े पर था; इसलिये उनकी सन्धि में एक यह भी शर्त सदा रहती थी कि इधर के राजा जङ्गी जहाज़ और बारूद गोले न रक्खें॥

३–पोर्तगीज़ व्यापार की किफ़ायत।

हिन्दुस्थान में राज्य स्थापित कर उसे बनाये रखने के कामों में जो ख़र्च लगे उसे पूर्ण करने की ताकत पोर्तगीज़ राष्ट्र में नहीं थी। परन्तु व्यापार में पोर्तगीज़ों को बचत ख़ूब होती थी इसलिये इस काम को भी करने में वे समर्थ हो सके। इस बचत का अन्दाज़ा बाँधना कठिन काम है। जङ्गी बेड़े का ख़र्च भी ज़बरदस्त था। सौ वर्ष में ८०६ जहाज़ इस काम में लगते थे। एक जहाज़ बनवाने और उसपर कप्तान व ख़लासी आदि रखकर प्रवास करने का ख़र्च ४०७६ पौण्ड अर्थात् पचास हज़ार रुपये लगता था। ऊपर की संख्या में

उन जहाज़ों का समावेश नहीं है जो हिन्दुस्थान में बनाये गये अथवा शत्रुओं से छीने गये। यदि उनकी संख्या भी शामिल करें तो कहना पड़ेगा कि सौ वर्ष में पोर्तगीज़ व्यापार में एक हज़ार जहाज़ लगते थे। प्रति वर्ष बीस जहाज़ों में माल भरकर पोर्तगाल देश को भेजा जाया करता था। यह लिखा ही जा चुका है कि वास्को डि गामा की पहली मुसाफ़िरी में ही लागत से साठ गुनी अधिक आमदनी हुई थी। सन् १५०१ ई० में काब्राल मसाले, सुगन्धी द्रव्य, चीनी के बर्तन, मोती और ज़वाहिरात भरकर ले गया था। इस बात की गिनती नहीं हो सकती कि इस प्रकार का क़ीमती माल हर बार कितना जाता था। प्रत्येक मुसाफ़िरी के वर्णन में इस विषय का थोड़ा बहुत हाल लिखा गया है। इसके सिवाय एक बन्दर से दूसरे बन्दर में जो व्यापार हुआ करता था उसका हिसाब अलग ही है। इस व्यापार में मुनाफ़े की मुख्य वस्तु अफ़ीम रहती थी। एक जहाज़ में जो माल यूरोप को जाता था उसका मुनाफ़ा क़रीब एक लाख पौण्ड अर्थात् पन्द्रह लाख रुपये होता था। इस क़ीमत में मोती और ज़वाहिरातों का मूल्य शामिल नहीं है। क्योंकि असली फ़िहरिस्त के बिना ज़वाहिरात की क़ीमत आँकना

सम्भव नहीं है। इसी तरह गोआ से चीन जापान तक एक जहाज़ माल ले जाने का भाड़ा साढ़े बाईस हज़ार पौंड अर्थात् सवा दो लाख रुपये होता था। इसके सिवाय जो खानगी व्यापार होता था वह अलग ही है। गोआ से मोज़ाम्बिक तक का भाड़ा ५४ हज़ार रुपये आता था। इसके सिवाय खानगी व्यापार की रक़म अलग ही रहती थी। लूटमार तथा दूसरों के पकड़े हुए जहाज़ों का माल नीलाम करने से जो रक़म आती थी उसका अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। परन्तु दो वर्ष में ११ लाख रुपये ऐसे ही व्यवसाय में कमाने का एक कप्तान का उदाहरण इतिहास में पाया जाता है। किनारे के राजाओं के कर और गोआ दीव और मलाका की ज़कात की रक़म प्रति वर्ष १२ लाख रुपये होती थी। अधीनस्थ राजाओं के कर, ज़कात, और सरकारी जहाज़ों को मिली हुई लूट में से प्रति वर्ष साढ़े बाईस लाख ($२२\frac{१}{२}$) रुपये पोर्तगाल के राजा को हिस्सा मिलता था। इससे भी अधिक की प्राप्ति होनी चाहिये थी, परन्तु अधिकारी लोग बीच में ही हाथ साफ़ कर लिया करते थे। इसके सिवाय पोर्तगाल के राजा को हिन्दुस्थान से प्रति वर्ष साढ़े पन्द्रह लाख

रुपये मालगुज़ारी आदि से मिलते थे*। इससे भी अधिक रक़म पोर्तगीज़ सरकार को मिलती; परन्तु यह काम अनेक लोगों के हाथों होता था इसलिये उसमें हर एक का हिस्सा रहता था। इसके सिवाय पोर्तगीज़ सरकार की भी यह इच्छा थी कि हमारे लोग व्यापार करके ख़ुद भी फ़ायदा उठावें। परन्तु ऐसे व्यापार में अनेक सङ्कट हैं इसलिये सरकार की सहायता के बिना किसी नई जगह में खानगी व्यापार आरम्भ करना सम्भव नहीं था। प्रति वर्ष साढ़े चार लाख रुपये लेने के क़रार पर मसाले के व्यापार का ठेका दे दिया गया था, और अन्य व्यापार का भी १५ लाख रुपये में व्यापारियों के हाथ राजा ने ठेका दे रक्खा था। यदि ऊपर की साढ़े बाईस लाख रुपये की आमदनी में यह १२½ लाख की रक़म मिलाई जाय तो राजा की सालाना आमदनी ४२ लाख रुपये होती है। यह सब आमदनी फ़ौज के काम में ख़र्च की जाती थी। इसके सिवाय खानगी व्यापार के लिये सरकार से उत्तेजन मिलता था, और उनपर सरकार की दृष्टि नहीं रहती थी इसलिये अपने फ़ायदे के लिये वे सरकार और

* इस पुस्तक में एक पौण्ड का मूल्य १०) रुपये के हिसाब से लेखा गया है।

लोगों को जैसा चाहते वैसा नुक़सान पहुँचाते थे। हर एक बन्दर में सरकार के लिये जो माल ख़रीदा जाता था उसे वे खूब महँगा लेते थे, परन्तु अपने लिये जो माल लेते उसे लोगों पर ज़ुल्म कर सस्ता ख़रीदते थे। यहां से पोर्तगाल के राजा के पास बारम्बार इस आशय के पत्र जाते थे कि 'जब तक कप्तान और अन्य अफ़सरों को खानगी व्यापार करने की स्वतन्त्रता है तब तक राजा के फ़ायदे की ओर कोई ध्यान नहीं देवेगा'। यदि किसी दरबार में पोर्तगीज़ एलची रक्खा जाता था तो वह अपनी ही थैली भरने की चिन्ता में रहता था। इससे पोर्तगीज़ सरकार का प्रभाव जैसा चाहिये वैसा नहीं रहता था। जहाज़ के अधिकारी पहले अपना माल बेंच कर तब सरकारी माल की व्यवस्था करते थे। सन् १५३० ई० में एक कप्तान ने मलबार से बङ्गाल तक की मुसाफ़िरी की; उसमें उसकी खानगी आमदनी साढ़े चौबीस हज़ार रुपये और सरकार की आमदनी केवल ७८०) रुपये हुई थी। ऐसे उदाहरण एक दो नहीं, सैकड़ों हैं। कभी कभी सहज ही किसी मुसाफ़िरी में किसी एक को नसीब के खेल से इतना फ़ायदा होता था कि उसके सारे जन्म की दरिद्रता दूर हो जाती थी। कभी कभी किसी अपराध के कारण

यदि किसी की तनख़्वाह रोक ली जाती थी तो उसकी कसर निकालने के लिये आगे की मुसाफ़िरी में वह ऐसी युक्ति करता था कि तनख़्वाह से कई गुना अधिक धन पा जाता था जिससे उसे तनख़्वाह की परवाह नहीं रहती थी। कोई झगड़ालू नातेदार अथवा रक्खी औरतें राजा से कई तरह की चीज़ें माँगा करती थीं; उनका मुँह बन्द करने के लिये ही ऐसी एकआध मुसाफ़िरी की आमदनी समाप्त हो जाती थी। ऐसी बातों से राज्य का शीघ्रही नाश हुआ। सब के मन में यह विचार आया कि व्यापार में तो रुपया मिलता है, किन्तु लड़ाई में व्यर्थ प्राणनाश होता है, इसलिये शत्रु के आने पर राज्य का प्रबन्ध करने के लिये कोई तैयार नहीं होता था। ऐसी दशा में पहले का टीम टाम ख़तम हो जाने पर गवर्नर का काम करने के लिये भी किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी। खानगी व्यापार बन्द करने के लिये पोर्तगीज़ सरकार ने बहुत प्रयत्न किये; परन्तु वही कहावत हुई कि बालू के बाँध का एक छेद बन्द करें तो दूसरा हो जाता है। ख़ास लिस्बन की इण्डियन कचहरी में जो अन्याय होता था उसे भी पोर्तगीज़ सरकार बन्द नहीं कर सकी, फिर हिन्दुस्थान का अन्याय दूर करना तो दूर की बात थी॥

स्पेन और पोर्तगाल देश जबसे एक हुए, अर्थात् सन् १५४८ ई० में जब डॉम कॅस्ट्रो की मृत्यु हुई, तब से हिन्दुस्थान के पोर्तगीज़ लोगों की उन्नति रुक गई। आलबुकर्क के समान राजनीति-कुशल और पराक्रमी पुरुष इधर कोई नहीं आया, अर्थात् उसकी भव्य कल्पना कार्य में परिणत कर उसकी डाली हुई नींव पर अच्छी इमारत बनाने का काम किसी ने भी नहीं किया। सन् १५९५ तक व्यापार में उनकी सरसता रही। परन्तु सन् १५९५ में डच लोग उनके बीच में आये, और पोप ने पोर्तगीज़ लोगों के लिये जो सीमा नियुक्त करदी थी उसे उन्होंने भङ्ग किया। तबसे व्यापार में भी उनकी अधोगति आरम्भ हुई॥

पोर्तगीज़ों का व्यापार नष्ट होने के अनेक कारण हैं। पहला कारण स्पेन और पोर्तगाल देशों का सन् १५८० में एक राजा के अधीन होना है। एक होने पर भी यह निश्चित हुआ था कि दोनों का राज्य कारबार बिलकुल अलग अलग चले। सन् १६०४ ई० में इङ्गलेण्ड और फ्रांस की सन्धि हुई, और हालेण्ड तथा स्पेन में युद्ध छिड़ गया। इस समय हिन्दुस्थान के व्यापार से पोर्तगाल

को जो आमदनी होती थी वह सब स्पेन के युद्ध में ख़र्च होने लगी और माल ख़रीदने के लिये धन का अभाव होने लगा। दूसरा कारण डच और अङ्गरेज़ों का इधर आने जाने का आरम्भ है। पूर्व समुद्र में इनका सञ्चार शुरू होने से पोर्तगीज़ों को बड़ी हानि होने लगी। उस हानि को रोकने के लिये पोर्तगीज़ों ने भी सन् १६३० ई० में कम्पनी स्थापित करने का प्रयत्न किया, परन्तु इसमें सफलता नहीं हुई। सन् १६३५ ई० में फिर ऐसा ही एक प्रयत्न निष्फल हुआ। इस प्रकार जब सरकार के प्रयत्न निष्फल होने लगे तब सरकार ने सोचा कि साधारण लोग ही व्यापार बढ़ाकर माला-माल हों, इसलिये सन् १६४२ ई० में उसने आज्ञा दी कि दालचीनी को छोड़ अन्य वस्तुओं का व्यापार सब लोग कर सकते हैं, ऐसी भी आज्ञा दी गई कि यदि धर्म के सम्बन्ध में किसी व्यापारी पर जुल्म हो तो उसकी मिलकियत ज़ब्त न की जाय। परन्तु इन युक्तियों का कुछ उपयोग नहीं हुआ। सन् १६५३ के एक लेख से मालूम पड़ता है कि गोआ में ज़कात की आमदनी कुछ भी नहीं थी॥

इसके बाद सन् १६९९ ई० में गोआ में एक कम्पनी स्थापित की गई, परन्तु सन् १७०१ ई० में मोम्बासा

पोर्तगीज़ लोगों के हाथ से निकल गया, इसलिये वह कम्पनी भी टूट गई। इस तरह और भी कुछ प्रयत्न हुए। सन् १७५६ से १७६७ तक काउण्ट एगा हिन्दुस्थान का पोर्तगीज़ वाइसराय था। उसने व्यापार की घटी रोकने का बहुत प्रयत्न किया॥

४—पोर्तगीज़ों का ऐश आराम।

पोर्तगीज़ों का हिन्दुस्थान का वैभव क्षणभङ्गुर होने के अनेक कारण हैं। उनका समझ रखना आवश्यक है। इस बात के लिये यह जानना भी आवश्यक है कि गोआ और अन्य स्थानों में उनके रहन सहन की व्यवस्था कैसी थी॥

पोर्तगीज़ लोगों के समय गोआ जैसा वैभवशाली था वैसा अब नहीं है। इस समय का गोआ शहर नया बसा हुआ है। उसी को ही पणजी कहते हैं। इस नये शहर में गवर्नर की बस्ती सन् १७५९ ई० में हुई। पुराने शहर का बन्दर नदी की खाल से भरजाने के कारण यह नया शहर बसाया गया है। पोर्तगीज़ों के आगमन काल के आरम्भ में पुराने गोआ का वैभव अप्रतिम था। एलिज़ाबेथ रानी के समय में इङ्गलैण्ड के व्यापारी

उसे 'सोने का गोआ' कहकर जानते पहचानते थे। पोर्तगीज़ भाषा में कहावत है कि "जिसने गोआ देखा उसे लिस्बन देखने की ज़रूरत नहीं है"। पहले तो वह व्यापार से धनाढ्य हो गया था, फिर फ़ौजी ठसक और पादरियों के आडम्बर से उसकी चमक दमक बहुत बढ़ी हुई थी। लोग सब अपने काम गुलामों से कराते थे। किसी पोर्तगीज़ गृहस्थ के लिये कोई काम करना प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा जाता था; उनकी घर की औरतों के लिये भी सभ्यता की रूह से घर का काम काज करना मना था। फ़ौजी काम, धर्म खाता, सरकारी नौकरी और थोड़ा बहुत समुद्री व्यापार करने के सिवाय पोर्तगीज़ लोग खुद कोई भी काम नहीं करते थे। फ़ौजी टीमटाम के जोश में वे लोग अनेक उपयोगी धन्धों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि वे आलसी और व्यसनों के अधीन हो गये। आलसी लोगों के झुण्ड रास्तों और जुओं के अड्डों में घूमते हुए दिखाई पड़ते थे। आलसी औरतों का समाज भीतर बैठकर आरामतलब हो गया था। जुओं के अड्डों से सरकार का कर मिलता था, और वहां सब तरह का ऐश आराम उड़ा करता था। नाच, गान, नट, जादूगर और मसखरे लोगों की वहां

खूब रेलपेल रहती थी। औरतों को पुरुषों में जाने की मनाही थी इसलिये वे परदे में बैठकर गाने, बजाने, खेलने, लड़ने, गप्प हाँकने, ठट्ठा मसखरी करने और गुलामों के साथ दिल्लगी करने तथा अन्य ऐश आराम में अपना समय व्यतीत किया करती थीं तथा असह्न गर्मी की तेज़ी के कारण आधी नङ्गी दशा में रहा करती थीं। अर्थात् सुलतानी ज़नानखाने के समान यूरोपियन ज़नानखाना ही वहां तैयार हो गया था। वे स्त्रियां कपट विद्या में चतुर हो गईं। पति से कपट व्यवहार कर अथवा उसे गूँगे होने की दवा खिलाकर मनमाना अपना प्रीति-व्यवहार जारी रखने की मात्रा इतनी बढ़ गई कि अब भी उधर महाराष्ट्र देश में 'गोवेकरीण-गोवेवाली' कहने से विषयलम्पट, आलसी, दुर्व्यसनी आदि बीभत्सअर्थ का बोध होता है। प्रार्थना के लिये जब गिरजा में इन औरतों को जाना होता था तब ये बड़ा ठाट बाट किया करती थीं। उनके पोशाक जड़ाऊ और कामदार होते थे। उनमें हीरे, मोती, माणिक आदि जड़े रहते थे। सिरमें, भुजा, हाथ और कमर में नाना प्रकार के क़ीमती गहने रहते थे, और सिरसे पैर तक वे बहुत ही बारीक बुर्का डालती थीं। इस प्रकार के ठाटबाट से जड़ाऊ मियाने

में बैठकर और साथ में पहरा लेकर वे गिरजे को जाती थीं। पैरों में मोजे न पहन कर मोतियों से टँके हुए स्लीपर्स पहनती थीं। उनकी माँग की सँवार लगभग छः इंच ऊँची रहती थी। वे गाल में रङ्ग लगाती थीं। गिरजे के पास पहुँचने पर दो एक नौकर उन्हें सम्हाल कर भीतर ले जाते थे; क्योंकि जड़ाऊ गहने कपड़ों के बोझ से वे चल फिर नहीं सकती थीं। इस प्रकार गिरजे की दस बीस सीढ़ी चढ़ने में उन्हें कमसे कम पन्द्रह मिनिट लग जाते थे। इस प्रकार मन्दगति से चलना बड़ी सभ्यता का चिन्ह समझा जाता था॥

पुरुषों का ठाटबाट भी कुछ विलक्षण रहता था। उनके गले में रुद्राक्ष या किसी अन्य चीज़ की माला रहती थी। बढ़िया चटक मटक पोशाक पहने हुए गुलामों का झुण्ड छत्र और हथियार लिये हुए उनके साथ चलता था। उनके घोड़े के साज सामान में सोने चाँदी से जड़ी हुई काठी, हीरों से जड़ी हुई चाँदी की लगाम, घंटा, चित्र विचित्र रङ्गीन रक़ाब आदि चीज़ें रहती थीं। ग़रीब लोग भी अनेक युक्तियां लड़ाकर अमीरों के समान ठाट बाट बनाने का प्रयत्न

किया करते थे। यदि कई ग़रीब एक साथ रहते हों तो सब की एक सामान्य ऊँची पोशाक रहती थी। मौक़े मौक़े पर उस पोशाक को वे पाली पाली से पहना करते थे। रास्ते में जाते समय छाता लेकर चलने के लिये मज़दूरी देकर एक नौकर अवश्य रखते थे॥

इस प्रकार ऐश आराम बढ़ जाने से गोआ की उतरती कला आरम्भ हुई। ऐसी दशा उपस्थित होने पर वहां के निवासियों की जो दुर्दशा होने लगी वह लिखी नहीं जा सकती। टॅव्हर्नियर सन् १६४८ ई० में लिखता है कि "पहले के धनवान लोग अब भीख माँगने लगे हैं, तौ भी अपना ठाट उन्होंने नहीं छोड़ा है। पोर्तगीज़ औरतें पालकियों में बैठकर भीख माँगने निकलती हैं, और उनके साथ नौकर भीतर जाकर भीख इकट्ठा किया करते हैं"। जहां जहां पोर्तगीज़ लोगों ने राज्य स्थापित किया वहां वहां सर्वत्र ऐसा ही ठाट उत्पन्न हुआ; और उसका परिणाम भी ऐसा ही हुआ। पोर्तगीज़ राष्ट्र छोटा होने के कारण वहां से भरपूर लोग यहां नहीं आते थे। पहले सौ दो सौ वर्षों में अधिक से अधिक आठ हज़ार पोर्तगीज़ यहां आये होंगे। इतने आदमियों के लिये यहां रहकर

अपना राष्ट्रीय बाना क़ायम रखना सम्भव नहीं था। उनको पहले ही इस देश के निवासियों को फ़ौज में रखने की ज़रूरत समझ पड़ने लगी। इन लोगों को वे थोड़ी बहुत क़वायद सिखाकर तैयार किया करते थे। पहले की बड़ी बड़ी लड़ाइयों में इस देश की फ़ौज हज़ार दो हज़ार से अधिक कभी नहीं थी। धीरे धीरे इस संख्या को उन्होंने बढ़ाया। घुड़सवार सेना में यूरोपियन लोग रहते थे; किन्तु पैदल सेना बहुत करके इसी देश की रहती थी। उस समय गुलामों की क़ीमत बहुत थोड़ी पड़ती थी। बङ्गाल में एक पुरुष का दाम ७) सात रुपये (१४ शिलिङ्ग) लगता था; यदि स्त्री जवान और सुन्दर हो तो इससे दूनी क़ीमत देनी पड़ती थी। क्या मनुष्य की क़ीमत इतनी थोड़ी होना काफ़ी है? न्यूनो डि कुन्हा ने सन् १५३० ई० में एडन पर चढ़ाई की उस समय उसके पास ४०० जहाज़ थे। वे प्रायः छोटे थे, और हिन्दुस्थान में ही तैयार हुए थे। जहाज़ों के सिवाय उसमें ३६०० पोर्तगीज़ सिपाही, १४६० पोर्तगीज़ खलासी, २००० इस देश के सिपाही, ५००० इस देश के खलासी और ८००० गुलामों की फ़ौज थी। इतनी अधिक पोर्तगीज़ फ़ौज इसके पहले कभी बाहर नहीं निकली थी। पोर्तगीज़ लोग पैदल सेना में नौकरी

करने के लिये राज़ी नहीं होते थे, इसलिये अपने विश्वास के मनुष्यों की संख्या बढ़ाने के लिये आलबुकर्क ने इस देश की स्त्रियों के साथ यूरोपियन पुरुषों का विवाह करने की युक्ति निकाली। ऐसा विवाह करने-वालों को इनाम मिलता था, और पुरुषों को नौकरी मिलती थी। इस उपाय से हाफ़कास्ट अर्थात् अध-गोरी सन्तान बहुत बढ़ गई, परन्तु इससे आमदनी की अपेक्षा ख़र्च अधिक बढ़ा। तौ भी इस व्यवस्था को क़ायम रखने के लिये धर्माधिकारियों का बहुत आग्रह रहता था। ये अधगोरे लोग अकारण घमंडी और आलसी होते थे, और उन्हें नौकरी देकर पालने का बोझ सरकार पर पड़ता था। आगे चलकर सरकारी ख़ज़ाने में रुपये पैसे की कमी होने लगी, और पोर्तगीज़ लोग तथा उनकी अधगोरी प्रजा एक प्रकार से बलवाई फ़ौज ही हो गई। वे अपनी बन्दूक़ें राजा लोगों के हाथ बेंच दिया करते थे, और पेट भरने के लिये ऐसा कोई नीच काम नहीं जिसे वे न कर सकते रहे हों। सन् १५[illegible] ई० में गोआ की सरकार की ओर से पोर्तगीज़ राजा के पास इस प्रकार का सिफ़ारशी पत्र गया था कि "ये लोग रातदिन दरवाज़े पर आकर भीख माँगते हैं; यदि इतना ही

होता तो कोई हानि नहीं थी, परन्तु ये हमारे दरवाज़े पर न आकर मुसलमानों के दरवाज़े जाकर भीख माँगते हैं; इसलिये किसी भी उपाय से इन्हें फ़ौजी नौकर समझ कर इनकी तनख़्वाह जारी कर देनी चाहिये।" परन्तु उनके हाथों ज्योंहीं पैसे पड़ते थे त्योंहीं वे जुए में उड़ा डालते थे। फ़ौज के अफ़सर पोर्तगीज़ होते थे, परन्तु इस देश के क्रिश्चियनों को भी फ़ौज में बड़ी जगहें मिल सकती थीं। उस समय क़वायद और शस्त्र अस्त्र में इस देश के लोग यूरोपियनों से किसी बात में कम नहीं थे॥

ये सब बातें सन् १५८० के पहले की हैं। उसी वर्ष स्पेन और पोर्तगाल के राज्य एक हुए। इसका परिणाम पोर्तगीज़ राज्य के लिये बाधक हुआ। स्पेन यूरोप के झगड़े में पड़ गया, इसलिये इधर हिन्दुस्थान के पोर्तगीज़ राज्य की व्यवस्था अच्छी नहीं रही। आफ़्रिका से गुलाम लाकर देश में भरने की चाल प्रचलित होने से सब प्रकार का दारमदार गुलामों पर ही रहने लगा। पोर्तगीज़ लोग स्वयं कोई काम करने में अयोग्य हुए, और राज्य के प्रबन्ध का सारा बोझ इस देश के सिपाहियों पर आ पड़ा। लिस्बन और गोआ के फ़ौजी खाते के अफ़सर कागज़ पत्रों में

सत्रह हज़ार फ़ौज का ख़र्च दिखाकर प्रत्यक्ष फ़ौज सिर्फ़ चार हज़ार ही रखते थे। इस प्रकार की अव्यवस्था का ठिकाना नहीं था। इसलिये इस देश के सिपाहियों ही के हाथों सब सत्ता चली गई। वह सत्ता उनके हाथों से निकाल लेने के काम में बड़ा प्रयास पड़ने लगा॥

५–पोर्तगीज़ों की क्रूरता।

दूसरे धर्म वालों के साथ मनमानी क्रूरता करने में पोर्तगीज़ों का जी नहीं हिचकिचाता था। इसके लिये वे यह सबब बताते कि 'हमारा तुम्हारा ऐसा क़रार कब हुआ है कि हम तुमसे क्रूरता का वर्ताव नहीं करेंगे!' चाहे किसी कारण से हो, परन्तु ऐसी क्रूरता करना क्या कभी न्यायानुमोदित हो सकता है? परन्तु वे कहा करते थे कि पोर्तगीज़ राष्ट्र छोटा है, हमारी संख्या थोड़ी है, तब यदि हम क्रूरता से अपनी धाक लोगों पर न बैठावें तो क्या करें? वास्को डि गामा की दूसरी मुसाफ़िरी से लोगों के साथ क्रूरता का वर्ताव करना उनकी राज्य-पद्धति का एक अङ्ग ही हो गया। दीव की लड़ाई के पश्चात् पकड़े हुए क़ैदियों को आल्मीडा ने दुर्दशा कर मार डाला। दूसरे एक अफ़सर

ने एक अरबी जहाज़ के खलासियों को पाल में सीकर समुद्र में डुबा दिया। उन लोगों के पास पोर्तगीज़ों का पास था, और पोर्तगीज़ जहाज़ मिलने पर अपनी रक्षा के लिये उन्होंने हाथ भी नहीं उठाया था। कनानूर के बन्दर में जो क़ैदी पकड़े गये थे उन्हें आल्मीडा ने तोप के मुँह से ज़मीन पर उड़वा दिया था। एक दूसरे मौक़े पर औरतों के गहने उतार लेने के लिये पोर्तगीज़ सिपाहियों ने उनके हाथ और कान काट लिये थे। यह बात नहीं कि ऐसे काम उन्होंने किसी ख़ास समय में किये हों; एशियावालों से बर्ताव करते समय यह उनकी हमेशा ही की रीति थी। यदि प्रत्येक प्रसङ्ग का वर्णन करने बैठें तो पुनरुक्ति ही होगी। ये भयानक करतूतें उन्होंने बदला लेने के लिये ही नहीं कीं थीं, बल्कि पोर्तगीज़ अफ़सर समझते थे कि राज्य-पद्धति के लिये ऐसा करना ज़रूरी है। आलबुकर्क कहा करता था कि परधर्मवालों को दयामाया न दिखलाना ही ईसामसीह को प्रिय है, अतएव उनके साथ क्रूरता का बर्ताव करना अंत में उनपर उपकार करने ही के समान है। पकड़े हुए लोगों के नाक कान काटना, मरने के लिये समुद्र में कूद पड़े हुए ग़रीब लोगों के भी पीछे लगकर पानी में ही उनके टुकड़े टुकड़े कर

डालना और अधिकार में आये हुए शहरों के औरत-बच्चों की क़तल करना—इस प्रकार के क्रूर कृत्यों का करनेवाला आलबुकर्क लोगों के सामने दया का पुतला समझा जाता था; क्योंकि उसके पश्चात् के अधिकारियों ने जो क्रूरता की है उसका वर्णन शब्दों से नहीं हो सकता। हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्म के लोग आलबुकर्क की क़बर के सामने जाकर ईश्वर से प्रार्थना करते, और उससे दयाभिक्षा माँगते थे कि ऐसे अधिकारियों के ज़ुल्म से, हे ईश्वर, हमारा छुटकारा कर। पोर्तगीज़ों को अपना राज्य बढ़ाना था। इस काम में जितनी फ़ौज और धन की आवश्यकता है वह उनके पास नहीं थे। इसलिये इस कमी की कसर निकालने के लिये वे ऐसी क्रूरता का सहारा लिया करते थे॥

६—धर्ममतसंशोधकपद्धति।

स्पेन और पोर्तगाल देश में भयानक धर्म-संताप जारी था। धर्म के विषय में लोगों के विश्वास क्या हैं इस बात की जाँच कर उन्हें शासन करने के लिये एक अलग मण्डली ही क़ायम थी। इस मण्डली को 'इंक्वि-

ज़िशन' (Inquisition) कहते थे। सोलहवीं सदी में सारे यूरोप में धर्म का सुधार आरम्भ हुआ जिससे रोमन कैथलिक सम्प्रदाय पीछे पड़ने लग गई। उस समय राजा और धर्माधिकारी रोमन कैथलिक सम्प्रदाय के थे, इस-लिये नये पंथ का उच्छेद करने के लिये यह न्याय-मण्डली स्थापित की गई थी। यथार्थ में इसका मूल उद्देश विधर्मी लोगों को दण्डित करने का था। परन्तु यूरोप में उसका प्रयोग भिन्न पंथ के लोगों पर हुआ। इसी शासन मण्डली की संस्था पोर्तगीज़ों ने हिन्दुस्थान में अपने राज्य में क़ायम की इससे यहां कितनेही घोर अनर्थ उत्पन्न हुए। इस बात को समझने के लिये संक्षेप में इस विषय का वर्णन करना ज़रूरी है कि यूरोप में इस मण्डली का बर्ताव कैसा था। इस अपूर्व न्यायासन के ऊपर किसी के पास अपील नहीं हो सकती थी। उसके जासूस गुप्त रूप से प्रत्येक कुटुम्ब में रहते, और इस बात की ख़बर लेते रहते थे कि किसका धार्मिक मत कैसा है। इस विषय की ख़बर मिलने पर न्यायाधीश मण्डली लोगों को उनके मत के लिये सज़ा दिया करती थी। इस मण्डली ने क़ायदे के इस मुख्य उद्देश पर पानीही फेर दिया था कि प्रत्यक्ष कार्य के लिये सज़ा देनी चाहिये, मत के लिये नहीं। केवल संशय होने से ही

चाहे जिसे पकड़ कर, जब तक वह अपना धर्म स्वीकार न करे तब तक, नाना प्रकार से उसे वे सताते, और कभी कभी जीताही जला देते थे। चाहे जैसे हो, केवल दो गवाह मिलजाने से चाहे जिसे काल-कोठरी, भूखों मरना, आदि प्रकार की सज़ा देने में आगा पीछा नहीं देखा जाता था। यदि यातना सहन करने पर मनुष्य उनका धर्म स्वीकार कर लेने पर तैयार हो तो उसकी सारी मिलकियत छीन कर, शरीर में केवल कफनी चढ़ाकर, वह छोड़ दिया जाता था। काल-कोठरी का यदि उस पर कुछ असर न होता तो वह अग्नि-कुंड में डाला जाता था। यदि एकही गवाह मिलता तो उसके पैरों में बेड़ी डाली जाती थी। इसका प्रयोग आधीरात के समय काल-कोठरी में होता था। अभियुक्त वक़ील नहीं कर सकता था, और न उसके सामने गवाह का इज़हार लिया जाता था। स्त्री हो, पुरुष हो अथवा कुमारी हो, अभियुक्त बिना विचार सब नङ्गे किये जाते, लकड़ी के मचान पर लिटाये जाते, और पानी, आग, काँटे, कीलें तथा अनेक प्रकार के यन्त्र आदि से उनकी नसें जहां तक तन सकतीं वहां तक तानी जातीं, हड्डियां कुचली जातीं और इस ढंग से उनके शरीर को यातना दी जाती कि जिससे केवल प्राण न निकलने पावे।

लगातार पन्द्रह वर्षों तक ऐसी यातना देने के पश्चात् अन्त में अग्नि-कुण्ड में उनकी आहुती देने के उदाहरण हैं। अनेक अवसरों पर सज़ा पाये हुए अनेक क़ैदी भूखे प्यासे तथा मचान से कसे हुए बहुत दिनों तक रक्खे जाते, और फिर वैसी ही दशा में उनका जलूस निकाला जाता; इस प्रकार की दुर्दशा करने के बाद वे अग्नि-कुंड में अर्पण कर दिये जाते थे। ऐसे मौक़ों पर राजा, सरदार, धर्माधिकारी आदि लोग यह दिखाव देखने के लिये उपस्थित रहा करते थे। अनेक अवसरों पर अभियुक्त की जीभ और मुँह इस तरह बाँध देते थे कि वे उघड़ न सकें; बाद भूख से फटफटाते हुए उस अभियुक्त के सामने बढ़िया मीठे पकवान लाकर रख दिये जाते थे; वह उन्हें देखता और फटफटाता था; इस दशा को देखकर उपस्थित अफ़सर बड़े आनन्दित होते थे। स्पेन देश में जो ऐसी मण्डली थी उसके पहले अध्यक्ष अकेले टार्क्विमाडा ने अपनी १८ वर्ष की कार्यवाही में १ लाख १४ हज़ार ४०१ मनुष्यों को अनेक प्रकार की सज़ा देकर इतने कुटुम्बों का सत्यनाश किया था। इतिहास में यह उदाहरण स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। हिन्दुस्थान के लोगों को अपने धर्म में मिलाने के लिये

पोर्तगीज़ लोगों ने यही पद्धति यहां भी अपने राज्य में जारी की थी ॥

७—क्रिश्चियन धर्म फैलाने का प्रयत्न ।

जिस समय वास्को डि गामा हिन्दुस्थान आया उस समय पोर्तगीज़ों को बड़ी आशा थी कि हम हिन्दुस्थानियों को क्रिश्चियन बनावेंगे । पहले वे लोग समझते थे कि हिन्दुस्थान के लोग क़रीब क़रीब क्रिश्चियन ही हैं । मलबार किनारे पर नेस्टोरियन क्रिश्चियन बहुत वर्ष पहले से आकर बसे थे । (देखो पृष्ठ १३६) । उनके बाद पोर्तगीज़ आये । उस समय उन्होंने यहां के सब ईसाइयों को कैथलिक सम्प्रदाय की दीक्षा देने का निश्चय किया । सन् १५४२ ई० में सर फ्रांसिस ज़ेवियर यहां आया; उसने जेसुइट पंथ की स्थापना की । सन् १५६० ई० में इंक्विज़िशन अर्थात् धर्ममतसंशोधकपद्धति गोआ में जारी की गई । उसके द्वारा नाना प्रकार की क्रूरता और जुल्म के काम हुए । उस जुल्म के द्वारा पोर्तगीज़ों के पहले जो यहां सेण्ट टॉमस् और नेस्टोरियन पंथ के क्रिश्चियन थे वे सब नाम-शेष कर दिये गये ॥

पोर्तगीज़ लोगों ने बम्बई, बसई आदि स्थान अधिकृत किये उस समय यहां के अनेक लोगों को उन्होंने ईसाइ बनाया। ख़ासकर ब्राह्मण, परभू (कायस्थ) आदि ऊँची जाति के लोगों पर ज़ुल्म का क़हर बरसाया गया। इस धर्म-छल के अनेक कारण थे। उनका सब से बड़ा उद्देश हिन्दुस्थान में क्रिश्चियन धर्म की स्थापना करना था। इस बात का मूल उत्पादक राजकुमार हेनरी था। वास्को डि गामा अपनी पहली और दूसरी मुसाफ़िरी में अपने साथ कुछ पादरी लेते आया था। परन्तु सन् १५०१ ई० में जब काब्राल यहां आया तब वह और भी आठ पादरी लेकर आया। उनके द्वारा हिन्दुस्थान के लोगों को एकदम ईसाइ बनाने का उसका विचार था। ये पादरी फ्रांसिस्कन पंथ के थे। उनका प्रधान आचार्य स्यूटा का बिशप कोइम्ब्रा था। इनमें से सात पादरी शीघ्र ही मर गये। इसके बाद आलबुकर्क के साथ पाँच पादरी और आये। सन् १५०३ ई० में कोचीन का क़िला बनवाया गया तब से तथा गोआ अधिकृत करने के बाद से धर्म-प्रचार का काम ज़ोर शोर से आरम्भ हुआ। गोआ में जो मस्जिदें थीं उनके उन्होंने गिरजे बनवाये। सन् १५१७ ई० में लोरो नाम का पादरी यहां आया। उसने एक नया मठ (गिरजा) बन-

वाया। सन् १५३४ ई० में पोप ने गोआ में एक धर्माधिकारी बिशप नियुक्त किया। इसके पहले हिन्दुस्थान की ईसाइमण्डली मदिरा द्वीप के बिशप के अधीन थी। गोआ में बिशप की नियुक्ति होने पर उत्तमाशान्तरीप से चीन तक का विस्तृत भूभाग उसके अधिकार में आया। इससे गोआ के बिशप का महत्व बहुत बढ़ गया। इसलिये सन् १५५७ में सबॅशन राजा ने गोआ में आर्चबिशप (प्रधान पादरी) की नियुक्ति की। उस आर्चबिशप के अधीन तीन पादरी गोआ, मलाका और कोचीन में नियुक्त कर दिये गये। सन् १६०६ ई० में इस आर्चबिशप ने 'पूर्व की ओर का प्रायमेट' नामक पद धारण किया। इसके सिवाय और भी अनेक फेरफार हुए, किन्तु यहां उनका वर्णन करना आवश्यक नहीं है॥

भूगोल-शास्त्र और व्यापार के विषय में पोर्तगीज़ों के उद्योग जितने महत्व के थे उससे अधिक महत्व के उद्योग उन्होंने धर्म विषय में किये हैं। इनमें पर-धर्मियों को बिटाल कर क्रिश्चियन बनाने में उन्होंने कमाल कर दिया। जब बम्बई द्वीप पोर्तगीज़ों के अधिकार में आया तब फ्रांसिस्कन मिशनरियों ने वहां

के सब योगी और बैरागियों को बिटाल कर क्रिश्चियन बनाया। इसी तरह बम्बई के पास कनेरी और मण्डपेश्वर में जो बौद्धों की गुफ़ाएं थीं, वहां भी ईसाइ प्रार्थना शुरू की गई। इस काम को करनेवाला मुख्य पादरी एँटोनियो पोर्टो था। अकेले बसई परगने में दो वर्षों में उसने हज़ारों लोगों को ईसाइ बनाया। अब तक वहां के लोगों को इस पोर्टो की अच्छी याद आती होगी॥

एँटोनियो ने कनेरी की गुफ़ा में जो बैरागी और साधु मिले उन्हें ईसाइ बनाकर, वहां ईसाइ बन्दना आरम्भ की। इस काम में उसे पोर्तगीज़ सरकार और फ़ौज का सहारा था। इसलिये यदि कोई उसके आड़े आता था तो फ़ौज उसका कचूमर निकाल डालती थी। इस गुफ़ा-समूह में जहां पर मुख्य चैत्य है वहां सेण्ट माइकेल का मठ स्थापित किया गया। इस समय इन गुफ़ाओं में ईसाइ धर्म का कुछ भी चिन्ह नहीं रहा है। जब मराठों ने बसई पर अधिकार किया तब उन्होंने उस गुफ़ा में व उसके आसपास जो ईसाइ धर्म के चिन्ह थे उन्हें नष्ट कर दिया। ईसाइयों ने अपने आगमनकाल में जो मूर्तियां तोड़ दी थीं उनका शेष

भाग अब तक वहां दिखाई पड़ता है। फ़ादर पोर्टो जब मण्डपेश्वर में आया उस समय वहां क़रीब पचास योगी थे; वे एकदम भाग गये। बाद में पोर्टो ने देवालय में जाकर वहां ईसाई गिरजा बनवाया। इसके बाद पोर्तगीज़ राजा तीसरे जॉन ने नये बने हुए ईसाइयों के लड़कों के लिये वहां एक पाठशाला खोली, और उसके ख़र्च के लिये वह सब जागीर लगादी जो प्राचीन हिन्दू मन्दिर में लगी थी। इस मन्दिर का मझला कमरा बहुत बड़ा अर्थात् १०० हाथ लम्बा और तीस हाथ चौड़ा था। वहां पाँच क्रिश्चियन धर्म-गुरु रहते थे, और उनके लिये सालाना डेढ़ सौ खण्डी (बीस मन की एक खण्डी) चाँवल नियुक्त थे। इसमें से बहुतसा अनाज वे ग़रीबों को बाँटा करते थे। पीछे मराठों ने उस कॉलेज को नष्ट कर वहां की इमारत की लकड़ियां थाने को पहुँचाई, व पहले की जिन हिन्दू देवमूर्त्तियों को ईसाइयों ने प्लास्टर से बन्द कर दिया था उन्हें खोलकर फिर देवताओं की पूजा पहले के समान जारी की॥

परन्तु इस धर्म-प्रसार के काम में विशेष अगुआ होकर काम करने वाला पहला बिशप जॉन आलबुकर्क

सन् १५३८ ई० में यहां आया । उसके साथही बार्बो और लागोस नाम के दो फ़्रांसिस्कन पादरी यहां आये । इन पादरियों ही ने यहां के लोगों के साथ पहले पहल धर्म-छल आरम्भ किया । यह आलबुकर्क यहां पन्द्रह वर्षों तक काम करता रहा, (सन् १५३८ से १५५२ तक) । इस अवधि में अकेले गोआ शहर में १५ गिरजे स्थापित हुए । आदिलशाह की मसजिद में उसने अपना मुख्य गिरजा बनवाया । अन्य स्थानों की भी ऐसीही हक़ीक़त है । सन् १५४२ ई० में फ़्रांसिस्को नामक एक जेसुइट पादरी अपने पंथ के बहुत से अनुयाइयों को लेकर गोआ में आया । पीछे से वही सेण्ट फ़्रांसिस ज़ेवियर के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसके बाद अनेक पंथों के ईसाइ गोआ में आये, परन्तु वहां पर अधिकता फ़्रांसिस्कन पंथ की ही थी ॥

पोर्तगीज़ों के मन में धर्म-शिक्षा के मुख्य तीन उद्देश थे,—ईसाइ धर्म बढ़ाना, मूर्ति-पूजकों का उच्छेद करना और बनाये हुए ईसाइयों का उत्कर्ष करना । इन उद्देशों में कई लोगों की कड़ाई और अतिरिक्त धर्मश्रद्धा की बाढ़ लगने से लोगों पर बड़ा क़हर बरसा और मुख्य धर्मोद्देश भी सिद्ध नहीं हुआ । उक्त उद्देशों

को सिद्ध करने के लिये आवश्यक सामग्री भी तैयार थी। इमारतों की कोई चिन्ता न थी क्योंकि मनमाने हिन्दुओं के देव मन्दिर तैयार थे। उनके ख़र्च के लिये जो जागीर और आमदनी लगी रहती थी वही उलट कर उधर लगा दी गई कि ख़र्च भी पूरा होता था। यदि घटी पड़े तो हिन्दुओं का धन लूट लेने में अड़चन ही कौन थी? इस प्रकार सेण्ट पॉल कॉलेज नाम की पहली संस्था सन् १५४१ ई० में स्थापित हुई। उसमें कानड़ी, दक्षिणी, मलयाली, सिंहली, बङ्गाली, पेगू, चीनी, जापानी आदि सब जातियों के विद्यार्थी थे। ऐसे लोगों की भरती आरम्भ में तीन हज़ार थी। इस कॉलेज में सन् १५४८ ई० में कामार्ट की नियुक्ति हुई। उसके मन में ऐसी हवस पैदा हुई कि सारे हिन्दुस्थान को एकदम खा जाऊं या निगल जाऊं। परन्तु परधर्मी लोगों पर एकदम भारी ज़ुल्म करने की राजा की आज्ञा नहीं थी। इसलिये राजा से ऐसी आज्ञा माँगने के लिये कॉलेज के व्यवस्थापकों ने खास एक आदमी को यूरोप भेजा। उसने राजा से इस काम के लिये जितने अधिकार चाहिये थे उतने प्राप्त कर लिये। इस अधिकार का तात्पर्य यह था कि यदि लोग राज़ीख़ुशी से ईसाई न हों तो ज़बरदस्ती और ज़ुल्म के साथ क्रिश्चियन बनाये

जाँय। इस उद्योग की ख़बर गोआ में फैलते ही बहुत से हिन्दू लोग शहर छोड़कर भाग गये। इसलिये पादरियों के इस व्यवहार से गोआ के पोर्तगीज़ व्यापारियों को बहुत बुरा मालूम हुआ; क्योंकि हिन्दुओं के भाग जाने से उनका व्यापार बैठ गया। उस समय गोआ की सेनेट अर्थात् म्युनिसिपल कमेटी ने सन् १५४६ ई० में वाइसराय को एक पत्र लिखा। उसमें इस आशय का मज़मून था: "हम क्षमा माँगकर सूचित करना चाहते हैं कि परधर्मी व्यापारी और ग्राम निवासी आदि सब लोगों ने यह कर्ज़ दिया है; परन्तु आप के पास जो बहुत सी फ़ुजूल धार्मिक मण्डली है उसने, हिन्दुस्थान के लोग बेकाम हैं, उन्हें अपने राज्य में रहने देना उचित नहीं है, उन्हें देश से निकाल देना चाहिये, इस तरह महाराज को सुझा दिया है, इससे बड़ी भारी हानि होने की सम्भावना है।" किन्तु पादरियों के आग्रह के कारण इस विषय में खुद वाइसराय की भी कुछ नहीं चलती थी। राजा के पास से जो हुक्म आया था वह उसे प्रसिद्ध करना पड़ा। उस हुक्म का तात्पर्य (पत्र की नक़ल, तारीख़ ८ मार्च सन् १५४६) यों था:—

१—अपने राज्य में मूर्ति-पूजा बन्द करना ईसाई राजा का कर्तव्य है।

२–यह बात जान कर हमें बड़ा खेद होता है कि हमारे राज्य में मूर्ति-पूजकों को इच्छानुसार धर्माचार करने की पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त है।

३–हमारी आज्ञा है कि सब मूर्तियां तोड़ दी जावें और मूर्ति बनानेवाले कारीगरों को सज़ा दी जावे।

४–जिन लोगों ने ईसाइ धर्म स्वीकार कर लिया है उन्हें विशेष अधिकार दिये जावें और उनसे बेगार आदि न ली जावे।

५–ज़कात की आमदनी का कुछ हिस्सा ईसाइ हुए लोगों में चाँवल बाँटने में ख़र्च किया जाय।

६–परधर्मी लोग क्राइस्ट की मूर्ति बनावें तो उन्हें सज़ा दी जाय।

७–ईसाइ बने हुए लोगों को धर्म सम्बन्धी तथा अन्य शिक्षा देने के लिये कॉलेज खोले जावें, और उनमें विधर्मी लोगों को भी ईसाइ धर्म की शिक्षा दी जाय।

८–ईसाइ बने हुए लोगों की हम पर भक्ति हो इस-लिये उनके साथ दया का वर्ताव किया जाय।

इस आज्ञा से बिशप का काम बहुत ही सुगम हो गया। इस आज्ञा के अनुसार काम होने के लिये उसने अपने राज्य में सब जगह हुक्म भिजवा दिये।

उस ने हिन्दुओं के मन्दिर गिराना आरम्भ किया। ब्राह्मण लोग इस काम में अड़ङ्ग डालते थे इसलिये वे देश से निकाल दिये गये। राजा, बिशप और वाइसराय इस त्रिवर्ग ने धर्म-प्रचार के काम में लिखा हुआ हुक्म दे दिया था, इसलिये पहले जो काम कोई मनुष्य व्यक्तिगतरूप से करता था वह अब राजा की मुख्य कार्यवाही होगई। बिशप ने जो हुक्म भिजवाया था उसका आशय इस प्रकार है: "राजा का हुक्म साथ में शामिल कर धर्मखाते के सब अधिकारियों को आज्ञा दी जाती है कि हिन्दुओं के जो मन्दिर पहले से तैयार हों अथवा इस समय तैयार हो रहे हों उन सबों को गिरा देने का तुम्हें पूरा अधिकार और फ़र्ज़ है। परमेश्वर के नाम से मेरी आज्ञा है कि इसके बाद जो अधिकारी आवें उन्हें भी इस आज्ञा का पालन करना चाहिये।" पादरी पोर्टो बड़ा विलक्षण पुरुष था। वह फ़ौजी पेशे का था, और कट्टर धर्माभिमानी था। दीव के घेरे के समय हाथ में क्रूस लेकर वह अपने सिपाहियों को लड़ने के लिये उत्तेजन देता फिरता था॥

बम्बई में फ्रांसिस्कन पादरियों की ही सदा प्रधानता थी। बम्बई से बसई तक इन लोगों ने अनेक

गिरजे स्थापित किये थे । चैाल, साष्टी और थाने में भी पोर्तगीज़ पादरियों ने अपनी संस्थायें क़ायम कीं । गिरजे बनाना, उनके लिये जागीर नियुक्त कर देना और उन जागीरों की आमदनी से मन्दिर और ईसाइ बनाये हुए लोगों का ख़र्च चलाना,—यह उनकी संस्था की योजना का तत्व था । इसी प्रकार छोटे छोटे ग़रीब बालकों के पालन-पोषण के लिये भी धर्मादाय विभाग था । इस संस्था के द्वारा हज़ारों बालक अपने धर्म से भ्रष्ट कर ईसाइ बनाये जाते थे । जब कभी अकाल पड़ता था, अथवा अन्य सङ्कट के समय, वे लोगों के ग़रीब लड़के मोल ले लिया करते थे । इस प्रकार की बिक्री की क़ीमत बालकों की उम्र के अनुसार होती थी । एक वर्ष के भीतर के लड़के की क़ीमत पोर्तगाल में एक बकरे के बच्चे के बराबर होती थी । इस काम के लिये गाँव गाँव में घूमने वाले पादरी रहते थे । अकेले एक थाने शहर में तीन वर्ष के भीतर इस प्रकार के दश हज़ार बालक मोल लेने का उदाहरण मिलता है । एक बार गोकुल-अष्टमी के दिन (अगस्त सन् १५६४) बसई की खाड़ी में हिन्दू लोग स्नान के लिये गये थे, उनपर जेसुइट पादरियों ने हमला कर मार पीट की । ऐसी घटनाएं

बारबार हुआ करती थीं; इसलिये हिन्दुओं को अपने आचार का पालन करना बड़ा कठिन हो गया था। इधर ये क्रिश्चियन पादरी ऐश आराम और चैन में मस्त होकर रहते थे, और उन्हें किसी बात की परवाह नहीं रहती थी। इस उद्योग का परिणाम इसके सिवा और दूसरा क्या हो सकता था? कितने ही धनवान पोर्तगीज़ पुरुष और स्त्रियां मरने के समय अपनी दौलत किसी गिरजा घर में लगा जाते थे॥

उस समय के ब्राह्मणों ने धर्म-भ्रष्ट हुए हिन्दुओं को दुबारा हिन्दू धर्म में लाने के लिये अनेक प्रयत्न किये। ऐसे लोगों को अपने वंशपरम्परागत धर्म में लौट आने के लिये वे उपदेश करते थे; यही नहीं, बल्कि गोकुलअष्टमी अथवा अन्य किसी मेले के समय ऐसे लोगों को समुद्रस्नान अथवा गङ्गास्नान करा कर वे शुद्ध कर लिया करते थे। ऐसे पवित्र पर्वों के समय गङ्गास्नान से सम्पूर्ण पाप जिस प्रकार नष्ट होते हैं ईसाई धर्म स्वीकार करने से उस प्रकार समस्त पापों का नाश नहीं हो सकता, इस प्रकार का शास्त्राधार वे सब लोगों को बताते रहते थे। ब्राह्मणों की यह युक्ति देख

कर पादरियों का क्रोध भड़क उठता था, व ब्राह्मणों का प्रयत्न बंद करने के लिये थाना, बसई, बम्बई आदि स्थानों की खाड़ियों और समुद्रों के किनारे उन्होंने जहां तहां खम्भों में क्रूस लगा रक्खे थे। ऐसा होने से ब्राह्मण लोग उन जगहों में जाकर अपने मेले लगाया करते थे जहां ईसाइयों के क्रूस नहीं लगे रहते थे। अन्त में ईसाइयों की तकलीफ़ों से तङ्ग आकर उन्होंने बसई के पास जङ्गल में एक तालाब ढूंढ़ निकाला। वहां कुछ दिनों तक गुप्तरूप से ब्राह्मणों का शुद्धि-कार्य चलता रहा। जब उसकी भी ख़बर पोर्तगीज़ों को लग गई तब पोर्तगीज़ सिपाहियों ने ब्राह्मणों पर हमला कर उन्हें मार भगाया। उस समय एक बैरागी निडर होकर फ़ौज के सामने अकेले खड़ा रह गया। यह बैरागी पहले ईसाइ होकर फिर हिन्दू बना था। इस घटना को देख कर ईसाइयों का गुस्सा और भी भड़का, और उन्होंने उस जगह को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। यही नहीं, बल्कि वहां पर गाय मार कर उसका रक्त और मांस तालाब में तथा आस पास की ज़मीन पर छिड़क कर वहां की जगह अपवित्र कर दी, (अगस्त सन् १५६४)। सन् १५७८ ई० में जेसुइट लोगों ने साष्टी द्वीप के दो समूचे गाँव के निवासियों को धर्म-भ्रष्ट कर

ईसाइ बनाया। इनकी संख्या क़रीब दश हज़ार के थी। दूसरे वर्ष बांद्रा में (बम्बई के पास) दो हज़ार मल्लाह (मछली मारने वाले जो उधर कोली कहलाते हैं) धर्म-भ्रष्ट किये गये। यदि इस प्रकार प्रतिवर्ष की संख्या लिखने लगें तो पूरा नहीं पड़ेगा। आश्चर्य तो इसी बात का है कि इतनी ज़बरदस्त संख्या हिन्दुओं से निकल गई तिस पर भी हिन्दू धर्म जीता जागता हुआ मौजूद है। इन ईसाइयों के डॉमिनिकन फ्रांसिस्कन, ज़ेसुइट और सैण्ट ऑगस्टाइन, ये मुख्य चार पंथ थे। इसी विषय में प्रयत्न करने के लिये कामोंस (Comoens) नाम का सुप्रसिद्ध पोर्तगीज़ कवि सन् १५५३ ई० में हिन्दुस्थान आया था। गोआ में कुछ दिनों तक आराम से रह कर वह चीन के मकाव नामक स्थान में गया। वहां से १५८१ ई० में वह फिर गोआ को लौट आया। इसके बाद चौल में वह पब्लिकवर्क्सडिपार्टमेण्ट का मुख्य अफ़सर था। इस प्रकार १६ वर्ष यहां रह कर वह स्वदेश को लौट गया। इस कामोंस ने जो बढ़िया ग्रंथ लिखे वे इस समय जगद्विख्यात हैं॥

८—पोर्तगीज़ों की भूलों से दूसरों का फ़ायदा उठाना।

पोर्तगीज़ लोगों की विशेष उन्नति सोलहवीं सदी के पहले पचास वर्षों में थी। आफ़्रिका के दक्षिणी किनारे से जापान तक का सारा किनारा उनके अधिकार में था। उनका यथार्थ अधिकार व्यापार पर था, भूप्रदेश पर नहीं। विस्तृत भूप्रदेश अधिकार में रखने की उनमें शक्ति नहीं थी, और व्यापार को अधिकार में रखने की उनमें योग्यता नहीं थी। उनमें धर्म का विशेष जोश था। इसी जोश में वे मनमाना साहस कर सकते थे। सभी परधर्मवालों को वे अपना शत्रु समझते थे। उनमें धर्मान्धता, क्रूरता और धर्म-भ्रष्टता के दुर्गुण कल्पना से अधिक थे। हिन्दुओं से मीठा व्यवहार करने का प्रयत्न केवल आलबुकर्क ने कुछ किया। गामा, सोरेज़, सेक्वेरा और मेञ्ज़िस के क्रूर कृत्यों से सब लोग पागल हो उठे, और सन् १५६७ ई० में पोर्तगीज़ लोगों के विरुद्ध सम्पूर्ण राजाओं का एक ज़बरदस्त षड्यन्त्र हुआ। यदि उनमें वीरता न होती तो उसी समय उनका सत्यानाश होगया होता। उनमें यदि तारीफ़ करने लायक़ कोई गुण दिखाई पड़ता है तो वह केवल उनकी शूरता ही थी। सन् १५५८ ई० में पोर्तगाल

का राजा तीसरा जॉन मर गया और सेबॅशन गद्दी पर बैठा। इस सेबॅशन ने अपना वैभव पुनः प्राप्त करने के लिये ब्रेगेञ्ज़ा को अपने पूरे अधिकार देकर हिन्दुस्थान भेजा। परन्तु उससे अधिक काम नहीं हो सके। यदि एक मनुष्य अच्छा काम करता था तो उसके बाद पाँच ख़राब आदमी आकर सब काम गड़बड़ कर डालते थे। चौबीसवें गवर्नर आथेड ने (सन् १५६७—१५७१) बहुत अच्छा कारबार चलाया; परन्तु पिछले पाँच वर्षों में पाँच नालायक़ अफ़सर आये। उस समय ऐसा भय हुआ कि सारा राज्य मानों अभी डूबा जाता है; इसलिये सन् १५७९ ई० में राजा ने आथेड को फिर यहां भेजा। वह एक वर्ष के बाद यहीं मर गया। राजा सेबॅशन सन् १५७८ में मर गया, और पोर्तगाल का राज्य स्पेन के राजा दूसरे फिलिप के अधिकार में आया, (सन् १५८० ई०)। इस घटना का यह परिणाम हुआ कि पोर्तगाल की भलाई बुराई की किसी को परवाह नहीं रही, और स्पेन का ही प्रभाव सर्वोपरि रहा। सन् १६४० ई० में यद्यपि पोर्तगाल देश स्वतन्त्र हो गया, परन्तु उस समय डच और अङ्गरेज़ लोग उनके प्रतिस्पर्धी हो जाने से उनकी स्पर्धा करने ही में पोर्तगीज़ों का राज्य नष्ट हो गया॥

सन् १५९० ई० से १६१० ई० तक बीस वर्ष में पोर्तगीज़ों के व्यापार की ख़ूब उन्नति रही। उस समय प्रत्येक मुसाफ़िरी में उनके डेढ़ सौ से लेकर ढाई सौ तक जहाज़ निकला करते थे। परन्तु इस समय लिस्बन से गोआ तक प्रतिवर्ष एक जहाज़ की एक सफ़र हुआ करती है, और उत्तमाशान्तरीप से जापान तक के सुविस्तृत राज्य में से गोआ, दमन और दीव केवल येही तीन स्थान उनके अधिकार में रह गये हैं। इससे इस विषय की कल्पना होगी कि उनके राज्य का कैसा ह्रास हुआ है॥

सन् १५८० ई० में स्पेन और पोर्तगाल एक हुए। उस समय इङ्गलेण्ड और स्पेन की शत्रुता थी, इसलिये आठ वर्षों में स्पेन के जङ्गी बेड़े का कचूमर निकल गया। इस प्रकार स्पेन के युद्ध में पोर्तगाल की सब आमदनी ख़र्च हो जाने से हिन्दुस्थान के व्यापार में लगाने के लिये पूँजी ही नहीं रह गई। सन् १५८७ ई० में पोर्तगाल के व्यापार का सम्पूर्ण हक़ एक कम्पनी के हाथ बेंच दिया गया, और उसकी भी सब आमदनी स्पेन के युद्ध में ख़र्च हुई। इस कम्पनी के साथ सब अफ़सरों ने शत्रुता की इसलिये इसका भी व्यापार ठीक नहीं चला। मात्र इस कम्पनी के व्यवहार से अङ्गरेज़ और

डच कम्पनियां शिक्षा ग्रहण कर अपना क्रम सुधार सकीं। पहले पोर्तगीज़ कर्मचारियों का वेतन बहुत थोड़ा होता था। वास्को डि गामा, आलबुकर्क आदि मनुष्य तो केवल नामवरी के लिये बाहर निकले थे, इसलिये उन्हें पैसे की परवाह नहीं थी। परन्तु यह कीर्ति की आशा शीघ्र ही नष्ट हुई। इसलिये पैसे पाये बिना कोई काम करने के लिये तैयार नहीं होता था। पहले पहल समुद्र में लूट कर, अथवा जीते हुए शहरों में लूट कर, अथवा इस देश के राजाओं से प्रसन्नता से अथवा ज़बरदस्ती से इनाम लेकर, वे अपने खीसे भरते थे। यथार्थ में इस प्रकार जो धन मिले उसपर राजा का अधिकार होना चाहिये; परन्तु राजा ने लोगों का वेतन बढ़ाना स्वीकार नहीं किया, इसलिये वह पैसा कर्मचारियों की ही मुट्ठी गरम करने लगा। पोर्तगीज़ सिपाहियों की तो अत्यंत दुर्दशा थी। उनके अफ़सर अर्थात् कप्तान को प्रति महिने १२ शिलिङ्ग अर्थात् छः रुपये तनख़्वाह मिलती थी, इसलिये सिपाहियों के हिस्से में केवल चाँवल और मछली के भोजन के सिवाय और अधिक नहीं आता था॥

परन्तु उस समय के पराक्रम का पुरस्कार भी वैसाही मिलता था। कितने ही नये प्रदेश और द्वीप ऊजड़

नहीं है। उनके हाथ जो लगता वही दबा लेते, और जो मन में आता वही अनाचार व क्रूरता का काम करते थे। सन् १५५० ई० के लगभग यह अनाचार अन्तिम सीमा को पहुँच गया था। उस समय पोर्तगाल के राजा के पास इस तरह के प्रार्थना पत्र भेजे जाने लगे कि "किसी तरह तो भी इनसे हमारा छुटकारा कीजिये, नहीं तो आगे हमारी रक्षा नहीं" ॥

आज तक हिन्दुस्थान में जिन यूरोपियनों ने राज्य स्थापित किये उनमें पोर्तगीज़ों का नाम पहला है। इतने दूर देश के लोग यहां आकर राज्य स्थापित करें यह बात आरम्भ में आश्चर्यजनक मालूम होती है। परन्तु यदि ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात समझ ली जाय कि यह बात किस प्रकार घटित हुई तो आश्चर्य मानने का कोई कारण नहीं रहता। राज्य स्थापन करना एक प्रकार का प्रयोग है; इसमें अनेक विधियों का समावेश होता है। इनमें से पोर्तगीज़ों को पहले जो विधि अच्छी मालूम हुई उसे उन्होंने अपनी शक्ति के अनुसार कर देखा। उसमें उनसे कई भूलें हुईं, और कई बातों में सफलता भी प्राप्त हुई। उनके बाद अङ्ग-रेज़ों ने जब अपना राज्य-स्थापन का प्रयोग करना

आरम्भ किया उस समय उन्हें पोर्तगीज़ों के अनुभव का बड़ा उपयोग हुआ। जो बातें इन्हें अयोग्य मालूम हुई उन्हें इन्होंने छोड़ दिया, और जो उत्तम मालूम हुई उन्हें इन्होंने स्वीकार किया। इन दोनों राष्ट्रों के प्रयोग में जो अन्तर है वह समझ रखने लायक़ है। इसलिये यहां पोर्तगीज़-राज्य-स्थापना की जो हक़ीक़त दी गई है उससे अङ्गरेज़ी-राज्य-स्थापना की तुलना कर देखने से ऐतिहासिक विवेचन में बड़ी मदद मिल सकती है। पोर्तगीज़ों के राज्य में धर्म की प्रबलता विशेष रूप से थी; इसलिये ही पोर्तगीज़ों का ह्रास हुआ, अतएव अङ्गरेज़ राज्यकर्ता धर्म के नाद में नहीं लगे। इसी तरह यूरोपियन पुरुषों की इस देश की स्त्रियों के साथ शादी कर अधगोरी प्रजा उत्पन्न करने से, व उन्हें नौकरियां देनी पड़ने से, पोर्तगीज़ों को कुछ भी लाभ न होकर हानि ही उठानी पड़ी, इसलिये अङ्गरेज़ों ने इस बात को भी बरकाया। अङ्गरेज़ों ने इधर का व्यापार एक कम्पनी को सौंप दिया, इससे इङ्गलैण्ड की अँगरेज़ी-राज्य-पद्धति का विशिष्ट परिणाम, पोर्तगीज़ों के समान, उनके शासन-काल में यहां की व्यवस्था पर घटित नहीं हुआ, तथा खानगी व्यापार की गड़बड़ भी उन्होंने शीघ्रही बन्द कर दी।

इसी तरह पोर्तगीज़ों केसे ऊपर कहे हुए ऐश आराम को अङ्गरेज़ों ने यहां कभी जगह नहीं दी। अपना काम करने के लिये गुलाम मिलने से पहले पहल पोर्तगीज़ों को बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने समझा कि हम बड़े फ़ायदे में रहे। परन्तु अन्त में इसका परिणाम यह हुआ कि वे किसी भी काम करने के योग्य न रहे। उन्हें दरिद्रता ने आकर इस प्रकार जकड़ा कि उनकी दुर्दशा किसी से देखी नहीं जाती थी। अङ्गरेज़ों के लिये भी ये सब बातें सम्भव थीं; तथापि उन्होंने इनका स्वीकार नहीं किया; इसलिये ऐसा कौन मनुष्य है जो यह बात स्वीकार नहीं करेगा कि उन्होंने अपने विषय में बड़ी ही चतुराई से काम लिया है॥

श्री हिन्दी-ग्रंथ-प्रसारक मण्डली, प्रयाग।

मण्डली द्वारा प्रकाशित अन्य पुस्तकों की सूची।

हिन्दी-नवरत्न

अर्थात्

हिन्दी भाषा के नौ सर्वोत्तम कवियों के आलोचना-पूर्ण चरित्र।

लेखकः

पं० गणेश बिहारी मिश्र,

पं० श्याम बिहारी मिश्र, एम०ए०,

पं० शुकदेव बिहारी मिश्र, बी०ए०

इस पुस्तक की प्रशंसा करना व्यर्थ है। इसके लेखकों के नाम ही इसकी उत्तमता के काफ़ी प्रमाण हैं। आज-तक हिंदी भाषा में ऐसी पुस्तक न प्रकाशित हुई थी। इसमें क्रम से तुलसीदास, सूरदास, देव, बिहारीलाल, भूषण, केशवदास, मतिराम, चन्दबरदाई और हरिश्चंद्र,

इन नौ कवियों के आलोचना-पूर्ण चरित्र दिये गये हैं। कवियों के चरित्रों के साथही साथ उनकी कविता की विद्वता पूर्ण समालोचना पढ़ने का लाभ पाठक इसके द्वारा उठा सकते हैं। साहित्य के प्रेमी तथा साधारण पाठकों के लिये यह पुस्तक समान लाभ-दायक है। पुस्तक जैसी उत्तम है वैसेही उसकी छपाई व जिल्द आदि भी बढ़िया है। पुस्तक तेरह सुंदर हाफ़टोन चित्रों से सज्जित की गई है। कपड़े की जिल्द तथा सुनहरी अक्षरों से उसकी शोभा और भी बढ़ गई है। बुकमार्कर तथा कव्हर इत्यादि सहित ४०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य भी केवल २॥) रक्खा गया है॥

सरस्वतीचंद्र।

स्वर्गवासी श्रीयुक्त गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी,
बी० ए०, एल्एल्० बी, कृत
प्रसिद्ध गुजराती उपन्यास
के प्रथम भाग के पूर्वार्ध का
हिन्दी अनुवाद।

इस उपन्यास की उत्तमता के संबन्ध में कुछ कहने की अवश्यकता नहीं। 'सरस्वती' में श्रीयुक्त शिवप्रसाद

दलपतराम पण्डित ने इसके संबन्ध में लिखा था: "इस समग्र पुस्तक के प्रकट होने में पंद्रह वर्ष लगे! 'सरस्वती चंद्र' ने गुजराती साहित्य पर अविरल प्रकाश डाला है। पुस्तक है तो उपन्यास, परन्तु उसे ज्ञान और अनुभव का सागर कहना चाहिए। कल्पना, रस, कला-विधान, भाषा-गौरव आदि का उन्नत स्वरूप इस ग्रन्थ में मिलता है। धर्म, समाज, राजनीति आदि अनेक गंभीर विषयों पर उसमें बड़ी ही योग्यता से चर्चा की गई है। फिर भी ख़ूबी यह है कि पुस्तक के स्वारस्य में कुछ भी बाधा नहीं आई। राजा से लेकर रंक तक, विद्वान् से मूर्ख तक, आबालवृद्ध, स्त्रीपुरुष सभी उसे पढ़ कर असाधारण लाभ उठाते हैं। गुजरातियों को इस ग्रन्थ ने रसज्ञ, विचारशील और कल्पना-प्रिय बना दिया है। इसने बहुतों के जीवन में उमंग और उत्साह भर दिया है; बहुतों के जीवन-क्षेत्र में उच्चाशय का बीज बो दिया है; बहुतों के अभिलाषों को ख़ूब उत्कट बना दिया है; कितने ही विपथ-गामियों को उन्नत पथ दिखाया है; बहुतों के शुष्क जीवन को रसाप्लुत किया है; बहुत कौन कहे, गुजरात के नवीन युग का यह महाभारत है। जब तक गुजराती भाषा का अस्तित्व रहेगा, तब तक 'सरस्वतीचंद्र' उपन्यास भी विद्यमान रहेगा इस में कुछ

भी सन्देह नहीं। इस ग्रन्थ ने इसके लेखक को अमर कर दिया"। इससे अधिक इसकी प्रशंसा में क्या कहा जा सकता है? यह ग्रन्थ अँगरेज़ी में युग-निर्माता (Epoch-making) कहा गया है। कहते हैं इसने गुजरात के जीवन को पलट दिया है। चार भागों में यह सम्पूर्ण किया गया है। एक से एक भाग उत्तम है। इसी के प्रथम भाग के पूर्वार्ध का यह हिन्दी अनुवाद है। मूल पुस्तक से इस में यह अधिकता है कि यह सचित्र है। सुन्दर काग़ज़ तथा सुन्दर जिल्द से सुशोभित। पृष्ठ-संख्या अनुमान दो सौ—मूल्य १॥)

समाज ।

श्रीयुत रवीन्द्रनाथ टगोर का नाम इस देश की पठित समाज में भली भाँति परिचित है। आप एक प्रसिद्ध विद्वान्, वक्ता तथा बँगला भाषा के एक मार्मिक उत्कृष्ट लेखक हैं। बँगला भाषा में आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। यह पुस्तक आप ही की 'समाज' नामक एक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। यह पुस्तक हिन्दी संसार में अपने ढँग की एक नई वस्तु है। समाज-सम्बन्धी अनेक विषयों पर इसमें वैज्ञानिक रीति

से महत्वपूर्ण निबन्ध लिखे गये हैं । पृष्ठ-संख्या १७५—मूल्य ॥)

ठोंक पीट कर वैद्यराज,

अथवा

विचित्र वैद्यराज ।

हिन्दी-साहित्य में ऐसी पुस्तकें प्रायः बहुत कम देखने में आती हैं जिनमें सभ्य रीति से हँसी व मज़ाक किया गया हो । साहित्य में हास्य रस का निर्माण इस अभिप्राय से न किया गया था कि लोग उसके द्वारा लाभ न उठाते हुए हानि सहें, किन्तु वह इस अभिप्राय से किया गया था कि लोग सभ्य, विनोद-पूर्ण साहित्य का अवलोकन कर अपना मानसिक क्लेश दूर करें । फ्रांस के प्रसिद्ध नाटककार **मोलियर** ने इस प्रकार के कई नाटक फ्रेंच भाषा में लिखे हैं। इनमें से 'दि डॉक्टर इन स्पाइट ऑफ़ हिमसेल्फ' (The Doctor in spite of Himself) नामक नाटक बहुत उत्तम समझा जाता है । इसी का अनुवाद श्रीयुत **हरिनारायण आपटे** ने मराठी भाषा में किया है। प्रस्तुत पुस्तक इसी पुस्तक के आधार पर लिखी

गई है। हम यह कहने का साहस करते हैं कि जो इस पुस्तक को पढ़ेंगे वे अवश्य कुछ समय के लिये अपने चिन्ता क्लेशादि को भूल कर मानसिक प्रसन्नता का सुखानुभव करेंगे। साथ ही में सामाजिक उपदेश भी प्राप्त होगा। पुस्तक में बहुत कुछ परिवर्तन करके इस प्रदेश की सामाजिक दशा के अनुकूल उसे बनाने का प्रयत्न किया गया है। पृष्ठ-संख्या १५०। पुस्तक की भाषा भी बहुत सरल रक्खी गई है—मूल्य ।=)